ॐ अर्ह

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २७

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति में आयोजित]

श्री श्यामार्यवाचकसंकलित चतुर्थ उपाङ्ग

प्रज्ञापनासूत्र

[तृतीय खण्ड, पद २३-३६]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

प्रेरणा ☐
(स्व) उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

आद्यसंयोजक तथा प्रधान सम्पादक ☐
(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—सम्पादक ☐
श्री ज्ञानमुनिजी महाराज
[स्व जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्रीआत्मारामजी म के सुशिष्य]

प्रकाशक ☐
श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

☐ निर्देशन
अध्यात्मयोगिनी महासती साध्वी श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

☐ द्वितीय संस्करण
वीरनिर्वाण संवत् २५२०
विक्रम संवत २०५१
फरवरी, १९९५

☐ प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन समिति,
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१
फोन ५००८७

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [illegible] 90/-

Published on the Holy Remembrance occasion
of
Rev Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Sixth Upanga

PANNAVANĀ SUTTAM

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc]

□
Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi (Late) Swami Shri Brijlalji Maharaj

□
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

□
Translator & Annotator
Shri Jnan Muni

□
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Direction
Sadhvi Shri Umravkunwarji 'Archana'

Board of Editors
Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Acharya Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni

Promotor
Munishri Vinayakumar 'Bhima'

Second Edition
Vir-Nirvana Samvat 2520
Vikram Samvat 2051,
Feb, 1995

Publisher
Shri Agam Prakashan Samiti,
Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj) [India]
Pin—305 901
Phone 50087

Printer
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

Price [illegible] 90/-

समर्पण

जिन्होने अर्द्धशताब्दी से भी अधिक काल तक
आदर्श सयम की आराधना कर
अपना जीवन साधक बनाया,
जो श्रुत की आराधना में निरन्तर निरत रहे
और अपनी अगाध तत्त्वजिज्ञासा की पूर्ति
के लिए सौराष्ट्र से राजस्थान तक पधारे,
जो सौराष्ट्र के जैन जनमानस में अद्यापि
बसे हुए हैं
जिन्होने जिनशासन की अपने उत्तम आचार
एव धर्मदेशना द्वारा बहुमूल्य सेवा की
उन

परमतपस्वी स्व. माणकचन्द्रजी स्वामी

के कर-कमलों में,
सादर सविनय समर्पित

[प्रथम संस्करण से]

दया में तो वे सागर ही थे। जब कभी रास्ते चलते कोई गरीब असहाय मिल जाता तो तत्काल उसके दु:ख दूर करने का प्रयास करते।

आपका विवाह संवत् १९९० की माघ शुक्ला सप्तमी को अपने बडे भाई की साली एवं श्रीमान् जगन्नाथसिंहजी एवं अनूपादेवी की सुपुत्री उमाजी (धनौल बाई) के साथ बहुत संघर्षों के बाद हुआ। बात की बात में डेढ वर्ष निकल गया। संवत् १९९२ चैत्र शुक्ला तृतीया को आपका आकस्मिक निधन हो गया।

आखिरी समय में न जाने किसकी प्रेरणा रही कि सात महिने पहले ही पाचो विग्रह का त्याग कर दिया था।

खुशबू हवाएं ले उडी, वक्त रंग ले गया।
दास्तां गुल ने कही, क्या से क्या यं हो गया॥

अन्त में इतना ही लिखना है कि जिस दिन आपका निधन हुआ उससे पूर्व रात को ग्यारह बजे तक गाना बजाना चलता रहा। क्योंकि दूसरे दिन मुकलावा (गौना) के लिए उमाजी (महासतीजी श्री उमराव-कुंवरजी म. सा. 'अर्चना") को लेने दादिया ग्राम जाना था किन्तु विधि की अमिट रेखा को कौन मिटा सका? ऐसा सोए कि फिर नहीं उठे।

खुशी के साथ दुनिया में हजारों गम भी होते हैं।
जहाँ बजती है शहनाइयां वहां मातम भी होते हैं॥

इस हादसे में उनके वियोग में पाच आदमी, पाँच गायें, दो भैंसें दो कुत्ते भी मृत्यु को प्राप्त हुए। परिणामस्वरूप सारे चौखले में हाहाकार मच गया। इस से सात महिने पहिले पीहर रहकर उमाजी (वर्तमान में श्री अर्चना जी म. सा.) को ससुराल लाया गया। जसे ही इस घटना को जाना तत्काल संयम लेने का संकल्प कर लिया और मिगसर शुक्ला ११ नोखा चादवतो में पू. प्रवर्तक श्री हजारीमलजी म. सा. के कर-कमलों द्वारा पिताश्री जगन्नाथ जी के साथ में दीक्षा ग्रहण की।

श्रमण संघ में श्रमणी वर्ग में आपश्री का नाम अग्रणी है। स्व. पं. युवाचार्य श्री मधुकर जी म. सा. की संस्थाओं का संचालन आपश्री के दिशानिर्देशन में सुचारुरूपेण चल रहा है। महासतीजी श्रीजी को इस बात का गर्व है कि संसार पक्ष के सभी सम्बन्धियों का स्नेह मिला, सत्य के पथ पर बढ़ने की प्रेरणा मिली। फिर पं. श्री हजारीमलजी म. सा., स्वामीजी श्री ब्रजलालजी म. सा. एवं पं. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म. सा. की अनंत कृपा प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप जो भी कुछ पारमार्थिक और साधना के क्षेत्र में कार्य हो रहे हैं यह सब गुरुजनों की कृपा, स्नेह एवं आत्मीयजन तथा गुरुभक्तों का ही सहयोग है।

उन्हीं की पुण्य स्मृति में प्रज्ञापना सूत्र का तृतीय भाग प्रकाशित होने जा रहा है।

महासतीजी की प्रेरणा से दानदाता—

उन्हीं के आत्मीय बन्धु

मोदी,

विषयानुक्रमणिका

तेईसवाँ कर्मप्रकृतिपद

प्रथम उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

चौबीसवाँ कर्मबन्धपद

पच्चीसवाँ कर्मबन्ध-वेदपद

छब्बीसवाँ कर्मवेद-बंधपद

सत्ताईसवाँ कर्मवेद-वेदपद

अट्ठाईसवाँ आहारपद

प्रथम उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

उनतीसवा उपयोगपद

तीसवा पश्यत्तापद

इकतीसवा सज्ञिपद

बत्तीसवां सयतपद

तेतीसवा अवधिपद

चौतीसवा परिचारणापद

पैंतीसवाँ वेदनापद

छत्तीसवाँ समुद्घातपद

सिरिसामज्जवायग-विरइय
चउत्थ उवंग

पण्णवणासुत्तं

[तइयखंडो]

श्रीमत्-श्यामार्यवाचक-विरचित
चतुर्थ उपाङ्ग

प्रज्ञापनासूत्र

[तृतीय खण्ड]

तेवीसइमाओ सत्तावीसइमपज्जंताइं पयाइं

तेईसवें पद से सत्ताईसवें पद पर्यन्त

प्राथमिक

- ये प्रज्ञापनासूत्र के तेईसवें से सत्ताईसवें पद तक पाच पद हैं। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं— (२३) कमप्रकृतिपद, (२४) कमबंधपद, (२५) कमबंध-वेदपद, (२६) कमवेद-बंधपद और (२७) कमवेद-वेदकपद।
- ये पाचो पद कमसिद्धान्त के प्रतिपादक है और एक-दूसरे से परस्पर सलग्न हैं।
- जैनदशन तार्किक और वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। जैनदशन में प्रत्येक आत्मा को निश्चयदृष्टि से परमात्मतुल्य माना गया है, फिर वह आत्मा पृथ्वी, जल या वनस्पतिगत हो या कीट-पतग-पशु-पक्षी-मानवादि रूप हो, तात्त्विक दृष्टि से समान है। प्रश्न हो सकता है, जब तत्त्वत सभी जीव (आत्मा) समान हैं, तब उनमे परस्पर वैषम्य क्यों? एक धनी, एक निधन, एक छोटा एक विशालकाय, एक बुद्धिमान् दूसरा मदबुद्धि, एक सुखी, एक दुःखी, इत्यादि विषमताएँ क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर मे कमसिद्धान्त का जन्म हुआ। कर्मों से होकर ही जीव विभिन्न प्रकार के शरीर, इन्द्रिय, गति, जाति, अगोपाग आदि की न्यूनाधिकता वाले हैं। आत्मगुणो के विकास की न्यूनाधिकता का कारण भी कम ही है।

कमसिद्धान्त से तीन प्रयोजन मुख्य रूप से फलित होते हैं—

(१) वैदिकधम की ईश्वर सम्बन्धी मान्यता के भ्रान्त अश को दूर करना।

(२) बौद्धधम के एकान्त क्षणिकवाद को युक्तिविहीन बताना।

(३) आत्मा को जडतत्त्व से भिन्न स्वतत्र चेतन के रूप मे प्रतिष्ठापित करना।

- भगवान् महावीरकालीन भारतवर्ष मे जैन, बौद्ध और वैदिक, ये तीन धम की मुख्य धाराएँ थीं। वेदानुगामी कतिपय दशनो मे ईश्वर को सवशक्तिमान् सवज्ञ मानते हुए भी जगत् का कर्त्ता-हर्ता धर्ता माना जाता था। कम जड होने से ईश्वर की प्रेरणा के बिना अपना फल भुगवा नही सकते, अत जीव को अच्छे-बुरे कर्मों का फल भुगवाने वाला ईश्वर है। और चाहे जितनी उच्चकोटि का हो, वह ईश्वर हो नही सकता। जीव जीव ही रहेगा, ईश्वर नहीं होगा। जीव का विकास ईश्वर की इच्छा या अनुग्रह के बिना नही हो सकता। इस प्रकार कई दशन तो जीव को ईश्वर के हाथ की कठपुतली मानने लगे थे।

इस प्रकार के भ्रान्तिपूर्ण विश्वास मे चार बडी भूले थी—(१) कृतकृत्य ईश्वर का निष्प्रयोजन सृष्टि के प्रपच मे पडना और रागद्वेषयुक्त बनना। (२) आत्मा की स्वतन्त्रता और शक्ति का दब जाना। (३) कम की शक्ति की अनभिज्ञता और (४) [illegible]

व्रतादि की साधना की व्यर्थता। इन भूलों का परिमार्जन करने और संसार को वस्तुस्थिति से अवगत कराने हेतु भगवान महावीर ने वाणी से ही नहीं अपने कर्म-क्षय के कार्यों से कर्म-सिद्धान्त की यथार्थता का प्रतिपादन किया।

- तथागत बुद्ध कर्म और उसके विपाक को मानते थे, किन्तु उनके क्षणिकवाद के सिद्धान्त से कर्मविपाक की उपपत्ति कथमपि नहीं हो सकती है। स्वकृत कर्म का स्वयं फलभोग तथा परकृत कर्म के फलभोग का स्व में अभाव तभी घटित हो सकता है, जबकि आत्मा को न तो एकान्त-नित्य माना जाए और न ही एकान्त-क्षणिक।

- कुछ नास्तिक दर्शनवादी पुनर्जन्म, परलोक को मानते ही नहीं थे। उनके मतानुसार शुभ तथा अशुभ कर्म का शुभ एवं अशुभ फल घटित ही नहीं होता। तब फिर अध्यात्मसाधना का अर्थ क्या है ? इस प्रश्न के यथार्थरूप से समाधान के लिए भगवान् महावीर ने कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन किया। क्योंकि कर्म न हो तो जन्म-जन्मान्तर तथा इहलोक-परलोक का सम्बन्ध घट ही नहीं सकता।

- जो लोग यह कहते हैं, जीव अज्ञानी है, वह स्वकृत कर्म के दुःखद फल को स्वयं भोगने में असमर्थ है, इसलिए कर्मफल भुगवाने वाला ईश्वर है, ऐसा मानना चाहिए। वे कर्म की विशिष्ट शक्ति से अनभिज्ञ हैं। यदि कर्मफलप्राप्ति में दूसरे को सहायक माना जाएगा तो स्वकृत कर्म निरर्थक हो जाएँगे तथा जीव के स्वकृत पुरुषार्थ की हानि भी होगी और उसमें सत्कार्यों में प्रवृत्ति, असत्कार्यों से निवृत्ति के लिए उत्साह नहीं जागेगा।

  यही कारण है कि भगवान् महावीर ने प्रस्तुत २३ वें कर्मप्रकृतिपद में ईश्वर या किसी भी शक्ति को सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति या विनाशकर्त्ता और कर्मफलप्रदाता के रूप में न मानकर स्वयं जीव को ही कर्मबन्ध करने, कर्मफल का वेदन करने तथा स्वकृतकर्मों तथा कर्म-क्षय का फल भोगने का अधिकारी बताया है। जीव अनादिकाल से स्वकृतकर्मों के वश होकर विविध गतियों, योनियों आदि में भ्रमण कर रहा है। जीव अपने ही शुभाशुभ कर्मों के साथ परभव में जाता है, स्वतः सुख-दुःख आदि पाता है।

- कुछ दार्शनिक कर्मसिद्धान्त पर एक आक्षेप यह करते हैं कि प्रस्तुत २३ वें पद के अनुसार समस्त जीवों के साथ कर्म सदा से लगे हुए हैं और कर्म एवं आत्मा का अनादि सम्बन्ध है, तो फिर कर्म का सर्वथा नाश कदापि नहीं हो सकेगा। लेकिन कर्मसिद्धान्त के बारे में ऐसा एकान्त सार्वकालिक नियम नहीं है। इसी कारण आगे चलकर २३ वें पद के दूसरे उद्देशक में स्पष्ट बताया गया है कि जितने भी कर्म हैं, सबकी एक कालमर्यादा है। वह काल परिपूर्ण होने पर उस कर्म का क्षय हो जाता है। स्वर्ण और मिट्टी का, दूध और घी का प्रवाहरूप से अनादि सम्बन्ध होते हुए भी प्रयत्न-विशेष से वे पृथक्-पृथक् होते देखे जाते हैं। उसी प्रकार आत्मा और कर्म का प्रवाहरूप से अनादि-सम्बन्ध होने पर भी, व्यक्तिशः अनादि-सम्बन्ध नहीं है। आत्मा और कर्म के अनादि-सम्बन्ध का भी अन्त होता है। पूर्वबद्ध कर्मस्थिति पूर्ण होने पर वह आत्मा से पृथक् हो जाता है। नवीन कर्मों का बन्ध होता रहता है। इस प्रकार प्रवाहरूप से कर्म के अनादि होने पर भी तप, संयम, व्रत आदि के द्वारा कर्मों का प्रवाह एक दिन नष्ट हो जाता है और आत्मा सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है।

पूवकथन से स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा का अस्तित्व अनादिकालीन है और कमवन्ध होता रहता है। ऐसी स्थिति मे सहज ही एक प्रश्न उठता है कि आत्मा पहले है या कम ? यदि आत्मा पहले है तो कम का बन्ध उसके साथ जबसे हुआ तबसे उसे 'सादि' मानना पडेगा। जनदशन का समाधान है कि कम व्यक्ति की अपेक्षा से सादि है और प्रवाह की अपेक्षा से अनादि है। परन्तु कम का प्रवाह कब तक चलेगा ? सवज्ञ के सिवाय कोई नही जानता और न ही बता सकता है, क्योंकि भूतकाल के समान भविष्यकाल भी अनन्त है।

कुछ व्यक्ति शका कर सकते हैं कि सभी जीव आत्मामय हैं और आत्मा का लक्षण ज्ञान है, तब फिर सभी जीवो को एक समान ज्ञान क्यो नही होता ? इसका उत्तर यही है कि आत्मा वस्तुत ज्ञानमय है, किन्तु उस पर कर्मों का आवरण पडा हुआ है और उस आवरण के कारण ही आत्मारूपी सूय का ज्ञानगुणरूप प्रकाश कमरूपी मेघो से ढँका हुआ है। बादल हटते ही जसे सूय का प्रकाश प्रकट हो जाता है, वैसे ही कर्मों का आवरण दूर होते ही आत्मा के ज्ञानादि गुण अधिकाधिक प्रकट होने लगते हैं।

इस पर से एक प्रश्न फिर समुद्भूत होता है कि कम बलवान् है या आत्मा ? बाह्यदृष्टि से कम शक्तिशाली प्रतीत होते हैं, क्योंकि कम के वशवर्ती होकर आत्मा नाना योनियो मे जन्म-मरण के चक्कर काटती रहती है, परन्तु अन्तदृष्टि से देखा जाए तो आत्मा की शक्ति असीम (अनन्त) है। वह जैसे अपनी परिणति से कर्मों का आस्रव एव बन्ध करती है, वैसे ही कर्मों को क्षय करने की क्षमता भी रखती है। कम चाहे जितने शक्तिशाली क्या न प्रतीत हो, लेकिन आत्मा उससे भी अधिक शक्तिसम्पन्न है। कठोरतम पाषाणो की चट्टानो को मुलायम पानी टुकडे-टुकडे कर देता है। वैसे ही आत्मा की अनन्त शक्ति कर्मों को चूर-चूर कर देती है।

इसके लिए कम और आत्मा की पृथक् पृथक् शक्तियो को पहिचानने के लिए दोनो के लक्षणो को जान लेना आवश्यक है। आत्मा अपने आप मे शुद्ध (निश्चय) रूप मे ज्ञान, दशन, आनन्द एव शक्तिमय (वीयमय) है। कर्मों के आवरण के कारण उसके ये गुण दबे हुए हैं। कर्मों का आवरण सवथा हटते ही चेतना पूणरूप से प्रकट हो जाती है, आत्मा परमात्मा बन जाती है।

कम का लक्षण है—मिथ्यात्व आदि पाच कारणो से जीव के द्वारा जो किया जाता है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, इन पाचो मे से किसी के भी निमित्त से आत्मा मे एक प्रकार का अचेतन द्रव्य आता है, जिसे अन्य दर्शनो मे अदृश्य, अविद्या, माया, प्रकृति, सस्कार आदि विविध नामो से पुकारा जाता है, अत वह कर्म ही है, जो राग-द्वेष का निमित्त-पाकर आत्मा के साथ बध जाता है और समय पाकर वह (कम) सुख-दुःख रूप फल देने लगता है।

कर्म के मुख्यतया दो भेद हैं—भावकम और द्रव्यकम। जीव के साथ राग-द्वेष रूप भावो का निमित्त पाकर अचेतन कमद्रव्य आत्मा की ओर आकृष्ट होता है, उन भावो का नाम भावकर्म है तथा वह अचेतन कमद्रव्य जब आत्मा के साथ क्षीर-नीरवत् एक होकर सम्बद्ध हो जाता है, तब वह द्रव्यकम कहलाता है।

यद्यपि जैनदशन मे भावकर्मबन्ध के मुख्यतया मिथ्यात्वादी पाच कारण एव सक्षेप मे कषाय और

योग के दो कारण बतलाए हैं, तथापि तेईसवें पद के प्रथम उद्देशक में राग और द्वेष को ही भावकर्मबन्ध का कारण बतलाया है। चार कषायों को इन्हीं दो के अन्तर्गत कर दिया गया है। कोई भी मानसिक या वैचारिक प्रवृत्ति हो, या तो वह राग (आसक्तिरूप) या वह द्वेष (घृणा या क्रोधादि) रूप होगी। अतः रागमूलक या द्वेषमूलक प्रवृत्ति को ही भावकर्मबन्ध का कारण माना गया है। प्राणी जान सके या नहीं, पर उसकी राग द्वेषात्मक वासना के कारण अव्यक्तरूप से भावकर्म द्रव्यकर्म रूप में श्लिष्ट होते रहते हैं। कर्म की बंधकता (कर्मलेप पैदा करने की शक्ति) भी रागद्वेष के सम्बन्ध से ही है।

- रागद्वेषजनित मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार क्रोधादिकषायवश शारीरिक, वाचिक क्रिया होती है, वही द्रव्यकर्मोपार्जन का कारण बनती है। जो क्रिया कषायजनित होती है, उससे होने वाला कर्मबन्ध विशेष बलवान् होता है, किन्तु कषायरहित क्रिया से होने वाला कर्मबन्ध निर्बल और अल्पस्थितिक होता है। वह थोड़े-से प्रयत्न एवं समय में नष्ट किया जा सकता है। वस्तुतः जब प्राणी मन-वचन-काया से प्रवृत्ति करता है, तब चारों ओर से तद्योग्य कर्मपुद्गल-परमाणुओं का ग्रहण होता है। इन्हीं गृहीत पुद्गल-परमाणु-समूह का कर्मरूप में आत्मा के साथ बद्ध होना द्रव्यकर्म कहलाता है।

  वस्तुतः जिसने जैसा कर्म किया है, उसके अनुसार वैसी-वैसी उसकी मति और परिणति होती रहती है। पूर्वबद्ध कर्म उदय में आता है तो आत्मा की परिणति को प्रभावित करता है और उसी के अनुसार नवीन कर्मबन्ध होता रहता है। यह चक्र अनादिकाल से (प्रवाहरूप से) चला आ रहा है।

- आत्मा निश्चयदृष्टि से ज्ञान-दर्शनमय शुद्ध होने पर भी अपनी कषायात्मक वैकारिक प्रवृत्ति या क्रिया द्वारा ऐसे संस्कारों (भावकर्मों) का आकर्षण करती रहती है और कर्मपुद्गलों को भी तदनुसार ग्रहण करती रहती है। इस ग्रहण करने की प्रक्रिया में मन-वचन-काय का परिस्पन्दन सहयोगी बनता है। कषाय या रागद्वेष की तीव्रता मन्दता के अनुसार ही जीव को उन उन कर्मों का बन्ध होता है तथा बन्धे हुए कर्मों के अनुसार ही तत्काल या कालान्तर में सुख दुःख रूप शुभाशुभ फल प्राप्त होता रहता है। किन्तु जब यह आत्मा अपनी विशिष्ट ज्ञानादि शक्ति से समस्त कर्मों से रहित होकर पूर्णरूप से—कर्ममुक्त हो जाती है तब पुनः कर्म आत्मा के साथ सम्बद्ध नहीं होते और न अपना फल देते हैं।

- कर्मसिद्धान्तानुसार एक बात स्पष्ट है कि आत्मा ही अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार स्वभाव और परिस्थिति का निर्माण करती है, जिसका प्रभाव बाह्य सामग्री पर पड़ता है और तदनुसार परिणमन होता है, तदनुसार ही कर्मफल स्वतः प्राप्त होता है। कर्म के परिपाक का जब समय आता है, तब उसके उदयकाल में जैसी द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की सामग्री होती है, वैसा ही उसका तीव्र, मन्द, मध्यम फल प्राप्त होता है। इस फलप्राप्ति का प्रदाता कोई अन्य नहीं है। कर्मफल प्रदाता दूसरे को माना जाए तो स्वयंकृत कर्म निरर्थक हो जाएँगे, तथा जीव के स्व-पुरुषार्थ की भी हानि होगी। फिर तो सत्कार्यों में प्रवृत्ति और असत्कार्यों से निवृत्ति के लिए न तो उत्साह जाग्रत होगा, न पुरुषार्थ ही।

इस दृष्टि से २३ वें से २७वे पद तक कर्मसिद्धान्त के सम्बन्ध मे उदभूत होने वाले विविध प्रश्नो का समाधान किया गया है। कर्मबन्ध के चार प्रकारो की दृष्टि से यहा यथार्थ एव स्पष्ट समाधान किया गया है। द्रव्यकर्मों के बन्ध को प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, प्रदेशबन्ध और अनुभावबन्ध, इन चार प्रकारो मे वर्गीकृत किया गया है।

वद्ध कमपरमाणुओ का आत्मा के ज्ञानादि गुणो के आवरण के रूप मे परिणत होना, उन कम-पुद्गलो मे विभिन्न प्रकार के स्वभाव उत्पन्न होना, **प्रकृतिबन्ध** है। कमविपाक (कमफल) के काल की अवधि (जघन्य-उत्कृष्ट कालमर्यादा) उत्पन्न होना **स्थितिबन्ध** है। गृहीत पुद्गल-परमाणुओ के समूह का कमरूप मे आत्मप्रदेशो के साथ न्यूनाधिक रूप मे वद्ध होना—**प्रदेशबन्ध** है। इसमे भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले कर्मपरमाणुओ (कमप्रदेशो) की सख्या का निर्धारण होता है और कमरूप मे गृहीत पुद्गलपरमाणुओ के फल देने की शक्ति की तीव्रता-मन्दता आदि **अनुभाग (रस) बन्ध** है। कम के सम्बन्ध मे समुद्भूत होने वाले कुछ प्रश्नो का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक है, जिनका समाधान इन पदो मे दिया गया है। मूलकम कितने है ? उनके उत्तर-भेद कितने हैं ? आत्मा का कर्मों के साथ वन्ध कसे और किन-किन कारणो से होता है ? कर्मों मे फल देने की शक्ति कसे पदा हो जाती है ? कौन-सा कम कम से कम और अधिक से अधिक कितने समय तक आत्मा के साथ लगा रहता है ? आत्मा के साथ लगा हुआ कम कितने समय तक फल देने मे असमथ रहता है ? विपाक का नियत समय भी वदला जा सकता है या नही ? यदि हा, तो कैसे, किन आत्मपरिणामो से ? एक कम के बन्ध के समय, दूसरे किन कर्मों का बन्ध या वेदन हो सकता है ? किस कम के वेदन के समय अन्य किन-किन कर्मों का वेदन होता है ? इस प्रकार वन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता आदि अवस्थाओ की अपेक्षा से उत्पन्न होने वाले नाना प्रश्नो का सयुक्तिक विशद वणन किया गया है।

- सवप्रथम तेईसवे 'कर्म-प्रकृति-पद' के प्रथम उद्देशक मे पाच द्वारो के माध्यम से कम-सिद्धान्त की चर्चा की गई है। प्रथम द्वार मे मूल-कम-प्रकृति की सख्या और चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे उनके सद्भाव की प्ररूपणा है। दूसरे द्वार मे बताया गया है कि समुच्चय जीव तथा चौवीस दण्डकवर्ती जीव किस प्रकार आठ कर्मों को बाँधते हैं ? तीसरे द्वार मे बताया गया है कि ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मो को एक या अनेक समुच्चय जीव तथा चौवीस दण्डकवर्ती जीव, राग और द्वेष (जिनके अन्तगत क्रोधादि चार कषायो का समावेश हो जाता है), इन दो कारणो से बाधते हैं। चौथे द्वार मे यह बताया गया है कि समुच्चय जीव या चौवीस दण्डकवर्ती जीव एकत्व एव बहुत्व की अपेक्षा से, ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मो मे किन-किन कर्मो का वेदन करता है ? इसके पश्चात् पचम कतिविध-अनुभाव द्वार मे विस्तृत रूप से बताया गया है कि जीव के द्वारा बद्ध, स्पृष्ट, बद्ध स्पृष्ट, सचित, चित, उपचित, आपाक-प्राप्त, विपाक प्राप्त, फल-प्राप्त, उदय प्राप्त, कृत, निष्पादित, परिणामित, स्वत या परत उदीरित, उभयत उदीरणा किये जाते हुए गति, स्थिति और भव की अपेक्षा से ज्ञानावरणीयादि किस-किस कर्म के कितने कितने विपाक या फल हैं ?

- तेईसवें पद के द्वितीय उद्देशक मे सवप्रथम अष्ट कर्मों की मूल और उत्तर-प्रकृतियो के भेद प्रभेदो का निरूपण किया गया है। तदनन्तर ज्ञानावरणीयादि आठो कर्मो की (भेद-प्रभेदसहित)

स्थिति का निरूपण किया गया है । इसके पश्चात् यह निरूपण किया गया है कि एकेन्द्रिय से लेकर सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तक के जीव ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों मे से किस कर्म का कितने काल का वन्ध करते हैं ? तथा ज्ञानावरणीय आदि आठो कर्मों की जघन्य स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति को बाधने वाले कौन-कौन जीव हैं ?

✿ चौवीसवें 'कर्मबन्ध-पद' मे बताया गया है कि चौवीस दण्डकवर्ती जीव ज्ञानावरणीय आदि *किसी एक कर्म को बाधता हुआ, अन्य किन-किन कर्मों को बाधता है, अर्थात् कितने अन्य कर्मों* को बांधता है ?

✿ पच्चीसवें कर्मबन्ध-वेदपद मे बताया गया है कि जीव आठ कर्मों मे से किसी एक कर्म को बाधता हुआ, अन्य किन-किन कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

✿ छब्बीसवें कर्मवेद-बन्धपद मे कहा गया है कि जीव आठ कर्मों मे से किसी एक कर्म को वेदता हुआ, अन्य कितने कर्मों का वन्ध करता है ?

✿ सत्ताईसवें 'कर्मवेद-वेदकपद' मे कहा गया है कि जीव किसी एक कर्म के वेदन के साथ किन अन्य कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

✿ प्रस्तुत पाचो पदों के निरूपण द्वारा शास्त्रकार ने स्पष्ट ध्वनित कर दिया है कि जीव कर्म करने और फल भोगने मे, नये कर्म बाधने तथा समभावपूर्वक कर्मफल भोगने मे स्वतन्त्र है तथा कर्म-सिद्धान्त के प्रतिपादन का उद्देश्य देवगति या अमुक प्रकार के शरीरादि की उपलब्धि करना नही है। अपितु कर्मों से सदा-सर्वदा के लिए मुक्ति पाना, जन्म मरण से छुटकारा पाना ही उसका लक्ष्य है । इसी मे आत्मा के पुरुषार्थ की पूर्णता है तथा यही आत्मा के शुद्ध, सिद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप की उपलब्धि है । इस चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्ष के लिए पुण्यरूप या पापरूप दोनो प्रकार के कर्म त्याज्य हैं । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एव सम्यक्तप ही मोक्ष-पुरुषार्थ के परम साधन हैं जो कर्मक्षय के लिए नितान्त आवश्यक हैं । आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा क्रमश कर्मनिर्जरा करता हुआ आत्मा की विशुद्धतापूर्वक सर्वथा कर्मक्षय कर सकता है । यही तथ्य शास्त्रकार के द्वारा ध्वनित किया गया है।

तेवीसइमं कम्मपगडिपयं

तेईसवाँ कर्मप्रकृतिपद

पढमो उद्देसओ · प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे प्रतिपाद्य विषयो की सग्रहणीगाथा

१६६४ कति पगडी १ कह बधइ २ कतिहि व ठाणेहि बधए जीवो ३ ।
कति वेदेइ य पयडी ४ अणुभावो कतिविहो कस्स ५ ॥२१७॥

[१६६४ गाथार्थ—] (१) (कम-) प्रकृतिया कितनी है ?, (२) किस प्रकार बधती हैं ?, (३) जीव कितने स्थानो से (कम) बाधता है ?, (४) कितनी (कर्म-) प्रकृतियो का वेदन करता है ?, (५) किस (कम) का अनुभाव (अनुभाग) कितने प्रकार का होता है ? ॥२१७॥

विवेचन—विविध पहलुओ से कमबधादि परिणाम-निरूपक पाच द्वार—(१) प्रथमद्वार—कमप्रकृतियो की सख्या का निरूपण करन वाला, (२) द्वितीयद्वार—कमबधन के प्रकार का निरूपक, (३) तृतीयद्वार—कम बाधने के स्थानो का निरूपक, (४) चतुर्थद्वार—वेदन की जानेवाली कमप्रकृतियो की गणना और (५) पचमद्वार—विविध कर्मों के विभिन्न अनुभावो का निरूपण करने वाला ।[1]

प्रथम कति-प्रकृतिद्वार

१६६५ कति ण भते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ । त जहा—णाणावरणिज्ज १ दरिसणावरणिज्ज २ वेदणिज्ज ३ मोहणिज्ज ४ आउय ५ णाम ६ गोय ७ अतराइय ८ ।

[१६६५ प्र] भगवन् ! कमप्रकृतिया कितनी कही है ?

[१६६५ उ] गौतम ! कमप्रकृतियाँ आठ कही हैं, वे इस प्रकार—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अतराय ।

१६६६ णेरइयाण भते ! कति कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! एव चेव । एव जाव वेमाणियाण ।

[१६६६ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितनी कमप्रकृतिया कही हैं ?

[१६६६ उ] गौतम ! इसी प्रकार पूववत् आठ कमप्रकृतियाँ कही हैं और (नारकों के ही समान) वैमानिक तक (आठ कमप्रकृतियाँ समझनी चाहिए) ।

---

१ प्रज्ञापना प्रमयबोधिनी टीका भा ५, १५७-१५८

विवेचन—(१) कति-प्रकृतिद्वार—आठ कर्मप्रकृतियाँ और चौवीस दण्डकों मे उनका सद्भाव—मूल कर्मप्रकृतियाँ आठ प्रसिद्ध हैं। नारक से लेकर वैमानिक तक समस्त ससारी जीवो के भी आठ ही कर्मप्रकृतियाँ लगी हुई हैं।

आठ कर्मप्रकृतियो का स्वरूप—(१) ज्ञानावरणीय—जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को आच्छादित करे। सामान्य-विशेषात्मक वस्तु के विशेष अश का ग्रहण करना ज्ञान है। उसे जो आवृत करे, वह ज्ञानावरणीय है। (२) दर्शनावरणीय—पदार्थ के विशेषधर्म को ग्रहण न करके सामान्य धर्म को ग्रहण करना 'दर्शन' है। जो आत्मा के दर्शनगुण को आच्छादित करे, वह दर्शनावरणीय है। (३) वेदनीय—जिस कर्म के कारण आत्मा सुख-दुःख का अनुभव करे। (४) मोहनीय—जो कर्म आत्मा को मूढ—सत्-असत के विवेक से शून्य बनाता है। (५) आयुकर्म—जो कर्म जीव को किसी न किसी भव मे स्थित रखता है। (६) नामकर्म—जो कर्म जीव के गतिपरिणाम आदि उत्पन्न करता है। (७) गोत्रकर्म—जिस कर्म के कारण जीव उच्च अथवा नीच कहलाता है अथवा जिस कर्म के उदय से जीव प्रतिष्ठित कुल अथवा नीच—अप्रतिष्ठित कुल मे जन्म लेता है। (८) अन्तरायकर्म—जो कर्म जीव के और दानादि के बीच मे व्यवधान अथवा विघ्न डालता है, अथवा जो कर्म दानादि करने के लिए उद्यत जीव के लिये विघ्न उपस्थित करता है।[1]

द्वितीय कहं बंधइ (किस प्रकार बंध करता है) द्वार

१६६७ कहण्णं भंते! जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जं कम्मं णियच्छति, दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणमोहणिज्जं कम्मं णियच्छति दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मिच्छत्तं णियच्छति, मिच्छत्तेणं उदिण्णेणं गोयमा! एवं खलु जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ।

[१६६७ प्र] भगवन्! जीव आठ कर्मप्रकृतियो को किस प्रकार बाधता है?

[१६६७ उ] गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से (जीव) दर्शनावरणीय कर्म को निश्चय ही प्राप्त करता है, दर्शनावरणीय कर्म के उदय से (जीव) दर्शनमोहनीय कर्म को प्राप्त करता है। दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यात्व को निश्चय ही प्राप्त करता है और हे गौतम! इस प्रकार मिथ्यात्व के उदय होने पर जीव निश्चय ही आठ कर्मप्रकृतियो को बाधता है।

१६६८ कहण्णं भंते! णेरइए अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! एवं चेव। एवं जाव वेमाणिए।

[१६६८ प्र] भगवन्! नारक आठ कर्मप्रकृतियो को किस प्रकार बाधता है?

[१६६८ उ] गौतम! इसी प्रकार (पूर्वोक्त कथनावत) जानना चाहिए।

इसी प्रकार (असुरकुमार से लेकर) वैमानिकपर्यन्त (समझना चाहिए।)

१६६९ कहण्णं भंते! जीवा अट्ठ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! एवं चेव। एवं जाव वेमाणिया।

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भाग ५, पृ १९१

[१६६९ प्र] भगवन् ! बहुत-से जीव आठ कमप्रकृतियां किस प्रकार बांधते हैं ?

[१६६९ उ] गौतम ! पूर्ववत जानना । इसी प्रकार बहुत-से वमानिकों तक (समझना चाहिए ।)

विवेचन—समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक मे एकत्व बहुत्व की विवक्षा से अष्टकमबन्ध के कारण—प्रस्तुत द्वितीय द्वार मे जीव अष्टकमबन्ध किस प्रकार करता है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए बताया गया है कि ज्ञानावरण का उदय होने पर दशनावरणीय कम का आगमन होता है अर्थात् जीव दर्शनावरणीयकर्म को उदय से वेदता है । दशनावरणीय के उदय से दशनमोह का और दशनमोह के उदय से मिथ्यात्व का और मिथ्यात्व के उदीण होने पर आठो कर्मो का आगमन होता है अर्थात् जीव मिथ्यात्व के उदय से आठ कमप्रकृतियो का बध करता है । सभी जीवो मे आठ कर्मों के बन्ध (या आगमन) या यही क्रम है । इन चारो सूत्रो का तात्पय यह है कि कम से कम आता—बधता है ।[1]

स्पष्टीकरण—आचाय मलयगिरि ने इस सूत्र मे प्रयुक्त 'खलु' शब्द का 'प्राय ' अर्थ करके इस सूत्रचतुष्टय को 'प्रायिक' माना है । इसका आशय यह है कि कोई-कोई सम्यग्दृष्टि भी आठ कमप्रकृतियो का बन्ध करता है । केवल सूक्ष्म सम्परायगुणस्थानवर्ती सयत आदि आठ कर्मो का बन्ध नही करते ।[2]

ज्ञातव्य—यहा ज्ञानावरणीय आदि कर्मो के बन्ध के कारणो मे केवल मिथ्यात्व को ही मूल कारण बताया है, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को नही, किन्तु पारम्परिक कारणो मे अविरति, प्रमाद और कषाय का भी समावेश हो जाता है । क्योकि जीव ज्ञानावरणादि कम बाधता है, उसके (सू १६७० में) मुख्यतया दो कारण बताए गए हैं—राग और द्वेष । राग मे माया और लोभ का तथा द्वेष मे क्रोध और मान का समावेश हो जाता है ।[3]

तृतीयद्वार कति-स्थान-बन्धद्वार

१६७० जीवे ण भते ! णाणावरणिज्ज कम्म कतिहि ठाणेहि बधइ ?

गोयमा ! दोहि ठाणेहि । त जहा—रागेण य दोसेण य । रागे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—माया य लोभे य । दोसे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—कोहे य माणे य । इच्चेतेहि चउहि ठाणेहि वीरिओवग्गहिएहि एव खलु जीवे णाणावरणिज्ज कम्म बधइ ।

[१६७० प्र] भगवन् ! जीव कितने स्थानो—कारणो स ज्ञानावरणीयकम बांधता है ?

---

१ (क) पण्णवणासुत्तं भाग २ (२३वें पद का विचार), पृ १३१
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भाग ५, पृ १६६

२ (क) प्रज्ञापना मलयगिरि वृत्ति, पत्र ४५४
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५ पृ १६४

३ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३६२ सू १६७०, पृ ३६४ तथा पण्णवणासुत्त भा २ पृ १३१
(ख) 'मिथ्यात्व-अविरति प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतव ' । —तत्त्वार्थसूत्र
(ग) रागो य दोसो विय कम्मबीय । —उत्तराध्ययनसूत्र

[१६७० उ] गौतम ! वह दो कारणों (स्थानों) से ज्ञानावरणीय-कर्मबन्ध करता है, यथा—राग से और द्वेष से। राग दो प्रकार का कहा है, यथा—माया और लोभ। द्वेष भी दो प्रकार का कहा है, यथा—क्रोध और मान। इस प्रकार वीर्य से उपार्जित चार स्थानों (कारणों) से जीव ज्ञानावरणीयकर्म बांधता है।

१६७१ एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

[१६७१] नैरयिक (से लेकर) वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार (कहना चाहिए)।

१६७२ जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं कतिहिं ठाणेहिं बंधंति ?

गोयमा ! दोहिं ठाणेहिं, एवं चेव।

[१६७२ प्र] भगवन् ! बहुत जीव कितने कारणों से ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हैं ?

[१६७२ उ] गौतम ! पूर्वोक्त दो कारणों से (बांधते हैं।) तथा उन दो के भी पूर्ववत् चार प्रकार समझने चाहिए।

१६७३ एवं णेरइया जाव वेमाणिया।

[१६७३] इसी प्रकार बहुत से नैरयिकों (से लेकर) यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिए।

१६७४ [१] एवं दंसणावरणिज्जं जाव अंतराइयं।

[१६७४-१] इसी प्रकार दर्शनावरणीय (से लेकर) अन्तरायकर्म तक कर्मबन्ध के ये ही कारण समझने चाहिए।

[२] एवं एते एगत्त पोहत्तिया सोलस दंडगा।

[१६७४-२] इस प्रकार एकत्व (एकवचन) और बहुत्व (बहुवचन) की विवक्षा से ये सोलह दण्डक होते हैं।

विवेचन—कितने कारणों से कर्मबन्ध होता है ?—द्वितीय द्वार में कर्मप्रकृतियों के बन्ध का क्रम तथा उनके बहिरंग कारण बताये गए हैं, जबकि इस तृतीय द्वार में कर्मबन्ध के अन्तरंग कारणों पर विचार किया गया है।[1]

राग-द्वेष एवं कषाय का स्वरूप—जो प्रीतिरूप हो, उसे राग और जो अप्रीतिरूप हो, उसे द्वेष कहते हैं। राग दो प्रकार का है—माया और लोभ। चूंकि ये दोनों प्रीतिरूप हैं, इसलिए राग में समाविष्ट हैं, जबकि क्रोध और मान ये दोनों अप्रीतिरूप हैं, इसलिये इनका समावेश द्वेष में हो जाता है। क्रोध तो अप्रीतिरूप है ही, मान भी दूसरों के गुणों के प्रति असहिष्णुतारूप होने से अप्रीतिरूप है।[2]

निष्कर्ष—(मूलपाठ के अनुसार) जीव अपने वीर्य से उपार्जित पूर्वोक्त (दो और) चार कारणों से ज्ञानावरणीय तथा शेष सात कर्मों का बंध करता है/करते हैं।[3]

---

१ पण्णवणासुत्तं भाग २ (२३वें पद पर विचार) पृ. १२५

२ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका पृ. १६१

३ वही पृ. १६०

चतुर्थद्वार कति-प्रकृतिवेदन-द्वार

१६७५ जीवे ण भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेइ ?

गोयमा ! अत्थेगइए वेदेइ, अत्थेगइए णो वेदेइ ।

[१६७५ प्र] भगवन् ! क्या जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता है ?

[१६७५ उ] गौतम ! कोई जीव (ज्ञानावरणीयकर्म का) वेदन करता है और कोई नहीं करता है।

१६७६ [१] णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेइ ?

गोयमा ! णियमा वेदेइ ।

[१६७६-१ प्र] भगवन् ! क्या नारक ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता (भोगता) है ?

[१६७६-१ उ] गौतम ! वह नियम से वेदन करता है।

[२] एवं जाव वेमाणिए । णवरं मणूसे जहा जीवे (सु. १६७५) ।

[१६७६-२] (असुरकुमार से लेकर) वैमानिकपर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु मनुष्य के विषय में (सू. १६७५ में उक्त) जीव के समान वक्तव्यता समझनी चाहिए।

१६७७ [१] जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

गोयमा ! एवं चेव ।

[१६७७-१ प्र] भगवन् ! क्या बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन (अनुभव) करते हैं ?

[१६७७-१ उ] गौतम ! पूर्ववत् सभी कथन जानना चाहिये।

[२] एवं जाव वेमाणिया ।

[१६७७-२] इसी प्रकार (बहुत से नैरयिकों से लेकर) वैमानिकों तक कहना चाहिए।

१६७८ [१] एवं जहा णाणावरणिज्जं तहा दसणावरणिज्जं मोहणिज्जं अंतराइयं च ।

[१६७८-१] जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के सम्बन्ध में कथन किया गया है, उसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकर्म के वेदन के विषय में समझना चाहिए।

[२] वेदणिज्जाऽऽउय-णाम-गोयाइं एवं चेव । णवरं मणूसे वि णियमा वेदेति ।

[१६७८-२] वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म के जीव द्वारा वेदन के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु मनुष्य (इन चारों कर्मों का) वेदन नियम से करता है।

[३] एवं एते एगत्त-पोहत्तिया सोलस दंडगा ।

[१६७८-३] इस प्रकार एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से ये सोलह दण्डक होते हैं।

विवेचन—समुच्चयजीव द्वारा किन कर्मों का वेदन होता है, किनका नहीं ?—जिस जीव के घातिकर्मों का क्षय नहीं हुआ है, वह ज्ञानावरणीयादि चार घातिकर्मों का वेदन करता है, किन्तु जिसने घातिकर्मों का क्षय कर डाला है, वह इन चारों कर्मों का वेदन नहीं करता है। मनुष्य को

छोडकर नैरयिक से लेकर वैमानिक तक कोई भी जीव घातिकर्मों का क्षय करने मे समर्थ नही होते, इसलिए वे ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों का वेदन करते हैं, मनुष्यो मे जिनके चार घातिकर्मों का क्षय हो चुका है, वे ज्ञानावरणीयादि चार कर्मो का वेदन नही करते, और जिनके चार घातिकर्मों का क्षय नही हुआ है, वे उनका वेदन करते हैं। किन्तु वेदनीय, नाम और गोत्र, इन चार अघाति कर्मों का शेष जीवो की तरह मनुष्य भी वेदन करता है, क्योंकि ये चार अघातिकर्म मनुष्य मे चौदहवें गुणस्थान के अन्त तक बने रहते हैं। समुच्चय जीवो के कथन की अपेक्षा से ससारीजीव इन चार अघातिकर्मों का वेदन करते हैं, किन्तु मुक्त जीव वेदन नही करते।[1]

पचमद्वार कतिविध-अनुभावद्वार

१६७९ णाणावरणिज्जस्स ण भते! कम्मस्स जीवेण बद्धस्स पुट्ठस्स बद्ध फास-पुट्ठस्स सचितस्स चियस्स उवचितस्स आवागपत्तस्स विवागपत्तस्स फलपत्तस्स उदयपत्तस्स जीवेण कडस्स जीवेण णिव्वत्तियस्स जीवेण परिणामियस्स सय वा उदिण्णस्स परेण वा उदीरियस्स तदुभएण वा उदीरिज्जमाणस्स गति पप्प ठिति पप्प भव पप्प पोग्गल पप्प पोग्गलपरिणाम पप्प कतिविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

गोयमा! णाणावरणिज्जस्स ण कम्मस्स जीवेण बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणाम पप्प दसविहे अणुभावे पण्णत्ते। त जहा—सोयावरणे १ सोयविण्णाणावरणे २ णेत्तावरणे ३ णेत्तविण्णाणावरणे ४ घाणावरणे ५ घाणविण्णाणावरणे ६ रसावरणे ७ रसविण्णाणावरणे ८ फासावरणे ९ फासविण्णाणावरणे १०। ज वेदेइ पोग्गल वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणाम वा वीससा वा पोग्गलाण परिणाम, तेसि वा उदएण जाणियव्व ण जाणइ, जाणिउकामे वि ण याणइ, जाणित्ता वि ण याणइ, उच्छण्णणाणी यावि भवइ णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएण। एस ण गोयमा! णाणावरणिज्जे कम्मे। एस ण गोयमा! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेण बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणाम पप्प दसविहे अणुभावे पण्णत्ते १।

[१६७९ प्र] भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध (बाधे गये), स्पृष्ट, बद्ध और स्पृष्ट किये हुए, सचित, चित और उपचित किये हुए, किञ्चित् पाक को प्राप्त, विपाक को प्राप्त, फल को प्राप्त तथा उदय प्राप्त, जीव के द्वारा कृत, जीव के द्वारा निष्पादित, जीव के द्वारा परिणामित, स्वय के द्वारा उदीर्ण (उदय को प्राप्त), दूसरे के द्वारा उदीरित (उदीरणा प्राप्त) या दोनो के द्वारा उदीरणा प्राप्त, ज्ञानावरणीयकर्म का, गति को प्राप्त करके, स्थिति को प्राप्त करके, भव को, पुद्गल को तथा पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है ?

[१६७९ उ] गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त ज्ञानावरणीयकर्म का दस प्रकार का अनुभाव कहा गया है यथा—(१) श्रोत्रावरण, (२) श्रोत्रविज्ञानावरण, (३) नेत्रावरण, (४) नेत्रविज्ञानावरण, (५) घ्राणावरण, (६) घ्राणविज्ञानावरण, (७) रसावरण, (८) रसविज्ञानावरण, (९) स्पर्शावरण और (१०) स्पर्शविज्ञानावरण।

---

१ (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५ पृ १७५-७६ (ख) पण्णवणासुत्त भा २, पृ ३३१

ज्ञानावरणीयकर्म के उदय से जो पुद्गल को अथवा पुद्गलों को या पुद्गल-परिणाम को अथवा स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम को वेदता है, उनके उदय से जानने योग्य को नहीं जानता, जानने का इच्छुक होकर भी नहीं जानता, जानकर भी नहीं जानता अथवा तिरोहित ज्ञान वाला होता है। गौतम ! यह है ज्ञानावरणीयकर्म। हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त करके ज्ञानावरणीयकर्म का दस प्रकार का यह अनुभाव कहा गया है।। १ ।।

१६८० दरिसणावरणिज्जस्स णं भन्ते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कतिविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दरिसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविहे अणुभावे पण्णत्ते। तं जहा—णिद्दा १ णिद्दाणिद्दा २ पयला ३ पयलापयला ४ थीणगिद्धी ५ चक्खुदंसणावरणे ६ अचक्खुदंसणावरणे ७ ओहिदंसणावरणे ८ केवलदंसणावरणे ९। जं वेदेइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं वा उदएणं पासियव्वं ण पासइ, पासिउकामे वि ण पासइ, पासित्ता वि ण पासइ, उच्छन्नदंसणी यावि भवइ, दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं। एस णं गोयमा ! दरिसणावरणिज्जे कम्मे। एस णं गोयमा ! दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविहे अणुभावे पण्णत्ते २।

[१६८० प्र] भगवन् ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त करके दर्शनावरणीयकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ?

[१६८० उ] गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त दर्शनावरणीयकर्म का नौ प्रकार का अनुभाव कहा गया है, तथा—१ निद्रा, २ निद्रा-निद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचला-प्रचला तथा ५ स्त्यानर्द्धि एवं ६ चक्षुदर्शनावरण, ७ अचक्षुदर्शनावरण, ८ अवधिदर्शनावरण और ९ केवलदर्शनावरण। दर्शनावरण के उदय से जो पुद्गल या पुद्गलों को अथवा पुद्गल-परिणाम को या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम को वेदता है, अथवा उनके उदय से देखने योग्य को नहीं देखता, देखना चाहते हुए भी नहीं देखता, देखकर भी नहीं देखता अथवा तिरोहित दर्शन वाला भी हो जाता है।

गौतम ! यह है दर्शनावरणीयकर्म। हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को पाकर दर्शनावरणीयकर्म का नौ प्रकार का अनुभाव कहा गया है।। २ ।।

१६८१ [१] सायावेदणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कतिविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सायावेदणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते। तं जहा—मणुण्णा सद्दा १ मणुण्णा रूवा २ मणुण्णा गंधा ३ मणुण्णा रसा ४ मणुण्णा फासा ५ मणोसुहता ६ वइसुहया ७ कायसुहया ८। जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं वा उदएणं सायावेदणिज्जं कम्मं वेदेइ। एस णं गोयमा ! सायावेदणिज्जे कम्मे। एस णं गोयमा ! सायावेयणिज्जस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

[१६८१-१ प्र] भगवन् ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को पाकर सातावेदनीय कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ?

[१६८१-१ उ] गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध सातावेदनीयकर्म का यावत् आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है, *यथा*—१ मनोज्ञशब्द २ मनोज्ञरूप, ३ मनोज्ञगन्ध, ४ मनोज्ञरस, ५ मनोज्ञस्पर्श, ६ मन का सौख्य, ७ वचन का सौख्य और ८ काया का सौख्य। जिस पुद्गल का अथवा पुद्गलों का अथवा पुद्गल-परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का वेदन किया जाता है, अथवा उनके उदय से सातावेदनीयकर्म को वेदा जाता है। गौतम ! यह है सातावेदनीयकर्म और हे गौतम ! यह (जीव के द्वारा बद्ध) सातावेदनीयकर्म का यावत् आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

[२] असातावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं० तहेव पुच्छा उत्तर च। नवरं अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया। एस णं गोयमा ! असायावेदणिज्जस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते ३।

[१६८१-२ प्र] भगवन् ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् असातावेदनीयकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत्।

[१६८१-२ उ] इसका उत्तर भी पूर्ववत् (सातावेदनीयकर्मसम्बन्धी कथन के समान) जानना किन्तु (*अष्टविध अनुभाव के नामोल्लेख में*) *'मनोज्ञ' के बदले सर्वत्र 'अमनोज्ञ'* (*तथा सुख के स्थान* पर सर्वत्र दुःख) यावत् काया का दुःख जानना। हे गौतम ! इस प्रकार असातावेदनीयकर्म का यह अष्टविध अनुभाव कहा गया है ॥ ३ ॥

१६८२ मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव कतिविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते। तं जहा—सम्मत्तवेयणिज्जे १ मिच्छत्तवेयणिज्जे २ सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे ३ कसायवेयणिज्जे ४ णोकसायवेयणिज्जे ५। जं वेदेइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं वा उदएणं मोहणिज्जं कम्मं वेदेइ। एस णं गोयमा ! मोहणिज्जे कम्मे। एस णं गोयमा ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते।

[१६८२ प्र] भगवन् ! जीवन के द्वारा बद्ध यावत् मोहनीयकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ?

[१६८२ उ] गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् मोहनीयकर्म का पांच प्रकार का अनुभाव कहा गया है। यथा—१ सम्यक्त्व-वेदनीय, २ मिथ्यात्व-वेदनीय, ३ सम्यग् मिथ्यात्व-वेदनीय, ४ कषाय वेदनीय और ५ नो-कषाय-वेदनीय।

जिस पुद्गल का अथवा पुद्गलों का या पुद्गल परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का अथवा उनके उदय से मोहनीयकर्म का वेदन किया जाता है। गौतम ! यह है—मोहनीयकर्म और हे गौतम ! यह मोहनीयकर्म का यावत् पंचविध अनुभाव कहा गया है ॥ ४ ॥

१६८३ आउअस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं० तहेव पुच्छा।

गोयमा ! आउअस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव चउव्विहे अणुभावे पण्णत्ते। तं जहा—

णेरइयाउए १ तिरियाउए २ मणुयाउए ३ देवाउए ४। ज वेएइ पोग्गल वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणाम वा वीससा वा पोग्गलाण परिणाम तेसिं वा उदएण ग्राउय कम्म वेदेइ। एस ण गोयमा! ग्राउए कम्मे। एस ण गोयमा! ग्राउग्रस्स कम्मस्स जाव चउव्विहे ग्रणुभावे पण्णत्ते ५।

[१६८३ प्र] भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् ग्रायुष्यकम का कितने प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है? इत्यादि पूववत प्रश्न।

[१६८३ उ] गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् ग्रायुष्यकम का चार प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है, यथा—१ नारकायु, २ तिर्यंचायु ३ मनुष्यायु ग्रौर ४ देवायु।

जिस पुदगल ग्रथवा पुद्गलो का, पुदगल-परिणाम का ग्रथवा स्वभाव मे पुदगलो के परिणाम का या उनके उदय से ग्रायुष्यकम का वेदन किया जाता है, गौतम! यह है—ग्रायुष्यकम ग्रौर यह ग्रायुष्यकम का यावत चार प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है॥ ५॥

१६८४ [१] सुभणामस्स ण भते! कम्मस्स जीवेण० पुच्छा।

गोयमा! सुभणामस्स ण कम्मस्स जीवेण बद्धस्स जाव चोद्दसविहे ग्रणुभावे पण्णत्ते। त जहा—इट्ठा सद्दा १ इट्ठा रूवा २ इट्ठा गधा ३ इट्ठा रसा ४ इट्ठा फासा ५ इट्ठा गतो ६ इट्ठा ठिती ७ इट्ठे लावण्णे ८ इट्ठा जसोकित्ती ९ इट्ठे उट्ठाण कम्म-बल विरिय पुरिसक्कार परक्कमे १० इट्ठस्सरया ११ कतस्सरया १२ पियस्सरया १३ मणुण्णस्सरया १४। त वेएइ पोग्गल वा पोग्गले वा पोग्गल-परिणाम वा वीससा वा पोग्गलाण परिणाम, तेसिं वा उदएण सुभणाम कम्म वेदेइ। एस ण गोयमा! सुभनामे कम्मे। एस ण गोयमा! सुभणामस्स कम्मस्स जाव चोद्दसविहे ग्रणुभावे पण्णत्ते।

[१६८४-१ प्र] भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत शुभ नामकम का कितने प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है? इत्यादि प्रश्न।

[१६८४-१ उ] गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत शुभ नामकर्म का चोदह प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है। यथा—(१) इष्ट शब्द, (२) इष्ट रूप (३) इष्ट गन्ध, (४) इष्ट रस, (५) इष्ट स्पश, (६) इष्ट गति (७) इष्ट स्थिति, (८) इष्ट लावण्य, (९) इष्ट यशोकीर्ति, (१०) इष्ट उत्थान-कम-बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम, (११) इष्ट-स्वरता, (१२) कान्त-स्वरता, (१२) प्रिय स्वरता ग्रौर (१४) मनोज्ञ स्वरता।

जो पुदगल ग्रथवा पुद्गलो का या पुदगल-परिणाम का ग्रथवा स्वभाव से पुदगलो के परिणाम का वेदन किया जाता है ग्रथवा उनके उदय से शुभनामकम को वेदा जाता है, गौतम! यह है शुभनामकम तथा गौतम! यह शुभनामकम का यावत् चोदह प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है।

[२] दुहणामस्स ण भते!० पुच्छा।

गोयमा! एव चेव। णवर ग्रणिट्ठा सद्दा १ जाव हीणस्सरया ११ दीणस्सरया १२ ग्रणिट्ठस्सरया १३ ग्रकतस्सरया १४। च वेदेइ सेस त चेव जाव चोद्दसविहे ग्रणुभावे पण्णत्ते ६।

[१६८४-२ प्र] भगवन्! ग्रशुभनामकम का जीव के द्वारा बद्ध यावत् कितने प्रकार का ग्रनुभाव कहा गया है? इत्यादि पृच्छा।

[१६८४-२ उ] गौतम ! पूर्ववत् अशुभनामकर्म का अनुभाव भी चौदह प्रकार का कहा गया है, (किन्तु वह है इससे विपरीत), यथा—अनिष्ट शब्द आदि यावत् (११) हीन-स्वरता, (१२) दीन-स्वरता, (१३) अनिष्ट-स्वरता और (१४) अकान्त स्वरता।

जो पुद्गल आदि का वेदन किया जाता है यावत् अथवा उनके उदय से दुःख (अशुभ) नामकर्म को वेदा जाता है। शेष सब पूर्ववत्, यावत् चौदह प्रकार का अनुभाव कहा गया है ॥ ६ ॥

१६८५ [१] उच्चागोयस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं० पुच्छा।

गोयमा ! उच्चागोयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते। तं जहा—जातिविसिट्ठया १ कुलविसिट्ठया २ बलविसिट्ठया ३ रूवविसिट्ठया ४ तवविसिट्ठया ५ सुयविसिट्ठया ६ लाभविसिट्ठया ७ इस्सरियविसिट्ठया ८। जं वेदेइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गल परिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं वा उदएणं जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

[१६८५-१ प्र] भगवन् ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् उच्चगोत्रकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१६८५-१ उ] गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् उच्चगोत्रकर्म का आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है, यथा—(१) जाति-विशिष्टता, (२) कुल-विशिष्टता, (३) बल-विशिष्टता, (४) रूप विशिष्टता (५) तप-विशिष्टता, (६) श्रुत-विशिष्टता, (७) लाभ-विशिष्टता और (८) ऐश्वर्य विशिष्टता।

जो पुद्गल अथवा पुद्गलों का, पुद्गल परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का वेदन किया जाता है अथवा उनके उदय से उच्चगोत्रकर्म को वेदा जाता है, यावत् यही उच्चगोत्रकर्म है, जिसका उपयुक्त) आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

[२] णीयागोयस्स णं भंते !० पुच्छा।

गोयमा ! एवं चेव। णवरं जातिविहीणया जाव १ इस्सरियविहीणया ८। जं वेदेइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं वा उदएणं जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते ७।

[१६८५-२ प्र] भगवन् ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् नीचगोत्रकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ? इत्यादि पृच्छा।

[१६८५-२ उ] गौतम ! पूर्ववत् (नीचगोत्र का अनुभाव भी उतने ही प्रकार का है, परन्तु वह विपरीत है) यथा—जातिविहीनता यावत् ऐश्वर्यविहीनता। पुद्गल का, पुद्गलों का, अथवा पुद्गल-परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का जो वेदन किया जाता है अथवा उन्हीं के उदय से नीचगोत्रकर्म का वेदन किया जाता है। गौतम यह है—नीचगोत्रकर्म और यह यावत् उसका आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है ॥ ७ ॥

१६८६ अंतराइयस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं० पुच्छा।

गोयमा ! अंतराइयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते । तं जहा— दाणंतराए १ लाभंतराए २ भोगंतराए ३ उवभोगंतराए ४ वीरियंतराए ५ । जं वेदेइ पोग्गलं वा पोग्गले वा जाव वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं वा, तेसिं वा उदएणं अंतराइयं कम्मं वेदेति । एस णं गोयमा ! अंतराइए कम्मे । एस णं गोयमा ! जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते ८ ।

[१६८६ प्र] भगवन् ! जीव के द्वारा बद्ध यावत अन्तरायकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है ? इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा ।

[१६८६ उ] गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत अन्तरायकर्म का पांच प्रकार का अनुभाव कहा गया है, यथा—(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और (५) वीर्यान्तराय ।

पुद्गल का या पुद्गलों का अथवा पुद्गल-परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का जो वेदन किया जाता है अथवा उनके उदय से जो अन्तरायकर्म को वेदा जाता है । यही है गौतम ! वह अन्तरायकर्म, जिसका हे गौतम ! पांच प्रकार का अनुभाव कहा गया है ।।८।।

।। तेवीसइमे पगडिपदे पढमो उद्देसओ समत्तो ।।

विवेचन—बद्ध, पुट्ठ आदि पदों के विशेषार्थ—बद्ध—राग-द्वेष-परिणामों के वशीभूत होकर बांधा गया, अर्थात्—कर्मरूप में परिणत किया गया । पुट्ठ-स्पृष्ट—अर्थात् आत्म-प्रदेशों के साथ सम्बन्ध को प्राप्त । बद्धफासपुट्ठ बद्ध स्पर्श स्पृष्ट—पुनः प्रगाढरूप में बद्ध तथा अत्यन्त स्पर्श से स्पृष्ट, अर्थात आवेष्टन, परिवेष्टनरूप से अत्यन्त गाढतर बद्ध । संचित—जो संचित है, अर्थात्—अबाधाकाल के पश्चात वेदन के योग्य रूप में निषिक्त किया गया है । चित—जो चय को प्राप्त हुआ है, अर्थात उत्तरोत्तर स्थितियों में प्रदेश-हानि और रसवृद्धि करके स्थापित किया गया है । उपचित—उपचित, अर्थात जो समानजातीय अन्य प्रकृतियों के दलिकों में संक्रमण करके उपचय को प्राप्त है । विवागपत्त—जो विपाक को प्राप्त हुआ है, अर्थात् विशेष फल देने को अभिमुख हुआ है । आवागपत्त—आपाकप्राप्त, अर्थात् जो थोडा-सा फल देने को अभिमुख हुआ है । फलपत्त—फलप्राप्त, अर्थात् अतएव जो फल देने को अभिमुख हुआ है । उदयपत्त—उदय प्राप्त, जो सामग्रीवशात् उदय को प्राप्त है । जीवेणं कडस्स—जीव के—कर्मबन्धन-बद्ध जीव के द्वारा कृत । आशय यह है कि जीव उपयोग स्वभाव वाला होने से रागादि परिणाम से युक्त होता है, अन्य नहीं । रागादि परिणाम से युक्त होकर वह कर्मोपार्जन करता है तथा रागादि परिणाम भी कर्मबन्धन से बद्ध जीव के ही होता है, कर्मबन्धनमुक्त सिद्धजीव के नहीं । अतः जीव के द्वारा कृत या भावार्थ है—कर्मबन्धन से बद्ध जीव के द्वारा उपार्जित । कहा भी है—

'जीवस्तु कर्मबन्धन-बद्धो, वीरस्य भगवतः कर्त्ता ।
सन्तत्याऽनाद्यं च तदिष्टं कर्मात्मनः कर्तुः ॥'

अर्थात—भगवान् महावीर के मत में कर्मबन्धन से बद्ध जीव ही कर्मों का कर्ता माना गया है । प्रवाह की अपेक्षा से कर्मबन्धन अनादिकालिक है । अतएव अनादिकालिक कर्मबन्धनबद्ध जीव (आत्मा) ही कर्मों का कर्ता अभीष्ट है ।

जीवेण णिव्वत्तियस्स—जीव के द्वारा निष्पादित, अर्थात् जो ज्ञानावरणीय आदि कर्म जीव के द्वारा ज्ञानावरणीय आदि के रूप में व्यवस्थापित किया गया है। आशय यह है कि कर्मबन्ध के समय जीव सर्वप्रथम कर्मवर्गणा के साधारण (अविशिष्ट) पुद्गलों को ही ग्रहण करता है अर्थात् उस समय ज्ञानावरणीय आदि भेद नहीं होता। तत्पश्चात् अनाभोगिक वीर्य के द्वारा उसी कर्मबन्ध के समय ज्ञानावरणीय आदि विशेषरूप में परिणत—व्यवस्थापित करता है, जैसे—आहार को रसादिरूप धातुओं के रूप में परिणत किया जाता है इसी प्रकार साधारण कर्मवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके ज्ञानावरणीय आदि विशिष्ट रूपों में परिणत करना 'निर्वर्तन' कहलाता है।

जीवेण परिणामियस्स—जीव के द्वारा परिणामित, अर्थात् ज्ञान-प्रद्वेष, ज्ञान निह्नव आदि विशिष्ट कारणों से उत्तरोत्तर परिणाम को प्राप्त किया गया। सयं वा उदिण्णस्स—जो ज्ञानावरणीय आदि कर्म स्वतः ही उदय को प्राप्त हुआ है, अर्थात्—परनिरपेक्ष होकर स्वयं ही विपाक को प्राप्त हुआ है। परेण वा उदीरियस्स—अथवा दूसरे के द्वारा उदीरित किया गया है, अर्थात्—उदय को प्राप्त कराया गया है। तदुभएण वा उदीरिज्जमाणस्स—अथवा जो (ज्ञानावरणीयादि) कर्म स्व और पर के द्वारा उदय को प्राप्त किया जा रहा है।

स्वनिमित्त से उदय को प्राप्त—गतिं पप्प—गति को प्राप्त करके, अर्थात्—कोई कर्म किसी गति को प्राप्त करके तीव्र अनुभाव वाला हो जाता है, जैसे—असातावेदनीय कर्म नरकगति को प्राप्त करके तीव्र अनुभाव वाला हो जाता है। नरयिकों के लिए असातावेदनीय कर्म जितना तीव्र होता है, उतना तिर्यञ्चों आदि के लिए नहीं होता। ठितिं पप्प—स्थिति को प्राप्त अर्थात्—सर्वोत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त अशुभकर्म मिथ्यात्व के समान तीव्र अनुभाव वाला होता है। भवं पप्प—भव को प्राप्त करके। आशय यह है कि कोई-कोई कर्म किसी भवविशेष को पाकर अपना विपाक विशेषरूप से प्रकट करता है। जैसे—मनुष्यभव या तिर्यञ्चभव को पाकर निद्रारूप दर्शनावरणीयकर्म अपना विशिष्ट अनुभाव प्रकट करता है। तात्पर्य यह है ज्ञानावरणीय आदि कर्म उस-उस गति, स्थिति या भव को प्राप्त करके स्वयं उदय को प्राप्त (फलाभिमुख) होता है।

परनिमित्त से उदय को प्राप्त—पोग्गलं पप्प—पुद्गल को प्राप्त करके। अर्थात् काष्ठ, ढेला या तलवार आदि पुद्गलों को प्राप्त करके अथवा किसी के द्वारा फेंके हुए काष्ठ, ढेला, पत्थर, खड्ग आदि के योग से भी असातावेदनीय आदि कर्म का या क्रोधादिरूप कषायमोहनीयकर्म आदि का उदय हो जाता है। पोग्गलपरिणामं पप्प—पुद्गल-परिणाम को प्राप्त करके अर्थात् पुद्गल परिणाम के योग से भी कोई कर्म उदय में आ जाता है, जैसे—मदिरापान के परिणामस्वरूप ज्ञानावरणीयकर्म का अथवा भक्षित आहार के न पचने से असातावेदनीयकर्म का उदय हो जाता है।[1]

प्रश्न का निष्कर्ष—सू. १६७९ के प्रश्न का निष्कर्ष यह है कि जो ज्ञानावरणीयकर्म बद्ध, स्पृष्ट आदि विभिन्न प्रकार के निमित्तों का योग पाकर उदय में आया है, उसका अनुभाव (विपाक फल) कितने प्रकार का है ?[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भाग ५, पृ. १८१ से १८४ तक

२ पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १ पृ. ३६५

ज्ञानावरणीयकम का दस प्रकार का अनुभाव क्या, क्यो और कैसे? मूलपाठ म ज्ञानावरणीयकम का श्रोत्रावरण आदि दस प्रकार का अनुभाव बताया है। **श्रोत्रावरण** का अथ है—श्रोत्रेन्द्रिय-विपयक क्षमोपशम (लब्धि) का आवरण, **श्रोत्रविज्ञानावरण** का अथ है—श्रोत्रेन्द्रिय के उपयोग का आवरण। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय क लब्धि (क्षयोपशम) और उपयोग का आवरण समझ लेना चाहिए।

इनमे से एकेन्द्रिय जीवो का प्राय श्रोत्र, नेत्र, घ्राण और रसना-विषयक लब्धि और उपयोग का आवरण होता है। द्वीन्द्रिय जीवा को श्रोत्र, नेत्र और घ्राण-सम्बन्धी लब्धि और उपयोग का आवरण हाता है। त्रीन्द्रिय जीवो को श्रोत्र और नेत्र-विषयक लब्धि और उपयोग का आवरण होता है। चतुरिन्द्रिय जीवा को श्रोत्र विषयक लब्धि और उपयाग का आवरण होता है।

जिनका शरीर कुष्ठ आदि रोग से अपहृत हो गया हो, उन्हे स्पर्शेन्द्रिय-सम्बन्धी लब्धि और उपयोग का आवरण हाता है। जो जन्म से अध, बहरे, गू गे आदि हैं या बाद मे हो गए है, नेत्र, श्रोत्र आदि इन्द्रियो सम्बन्धी लब्धि और उपयोग का आवरण समझ लेना चाहिए।

इन्द्रियो की लब्धि और उपयोग का आवरण स्वय ही उदय को प्राप्त या दूसरे के द्वारा उदीरित ज्ञानावरणीयकम के उदय से होता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—**ज वेदेइ पोग्गल वा** इत्यादि अर्थात—दूसरे के द्वारा फेंके गए या प्रहार करने मे समय काष्ठ, खड्ग आदि पुद्गल अथवा बहुत से पुद्गलो से, जो कि ज्ञान का उपघात करने मे समर्थ होते हैं, ज्ञान का या ज्ञान परिणति का उपघात आघात होना है अथवा जिस भक्षित आहार या सेवित पेय का परिणाम अतिदु खजनक होता है, उससे भी ज्ञान परिणति का उपघात होता है अथवा स्वभाव से शीत, उष्ण, धूप आदिरूप पुदगल-परिणाम का जब वेदन किया जाता है, तब उससे इन्द्रियो का उपघात (क्षति) हान से ज्ञानपरिणति का भी उपघात होता है, जिसके कारण जोव इन्द्रिय-गोचर ज्ञातव्य वस्तु को नही जान पाता। यहाँ तक ज्ञानावरणकम का **सापेक्ष उदय** बताया गया है।

इसके पश्चात शास्त्रकार **निरपेक्ष उदय** भी बताते हैं—ज्ञानावरणीय कम पुद्गलो के उदय से जोव अपने जानने योग्य (ज्ञातव्य) का ज्ञान नही कर पाता, जानने की इच्छा होने पर भी जानने मे समथ नही होता अथवा पहले जान कर भी पश्चात् ज्ञानावरणीयकम के उदय से नही जान पाता, अथवा ज्ञानावरणीयकम के उदय से जीव का ज्ञान तिरोहित (लुप्त) हो जाता है। यही ज्ञानावरणीयकम का स्वरूप है।[1]

दर्शनावरणीयकम का नवविध अनुभाव कारण, प्रकार और उदय—दर्शनावरणीयकम के अनुभाव के कारण व ही बद्ध, स्पृष्ट आदि हैं, जो ज्ञानावरणीयकम के अनुभाव के लिए बताये हैं। वे अनुभाव नौ प्रकार के हैं, जिनमे निद्रादि का स्वरूप दो गाथाओ मे इस प्रकार बताया गया है—

> सुह-पडिबोहा णिद्दा, णिद्दाणिद्दा य दुक्खपडिबोहा।
> पयला होइ ठियस्स उ, पयल पयला य चक्कमतो॥ १॥
> थीणगिद्धी पुण अइसकिलिट्ठ-कम्माणुवेयणे होई।
> महणिद्दा दिण चितिय वावार-पसाहणी पाय॥ २॥

1 प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भाग ५ पृ १८५-१८६

अर्थात् –जिस निद्रा से सरलतापूर्वक जागा जा सके, वह 'निद्रा' है। जो निद्रा बड़ी कठिनाई से भंग हो, ऐसी गाढी नींद को 'निद्रानिद्रा' कहते हैं। बैठे-बैठे आने वाली निद्रा 'प्रचला' कहलाती है तथा चलने-फिरने आने वाली निद्रा 'प्रचला-प्रचला' है। अत्यन्त संक्लिष्ट कर्मपरमाणुओं का वेदन होने पर आने वाली निद्रा स्त्यानर्द्धि या स्त्यानगृद्धि कहलाती है। इस महानिद्रा में जीव अपनी शक्ति से अनेकगुणी अधिक शक्ति पाकर प्रायः दिन में सोचे हुए असाधारण कार्य कर डालता है।

चक्षुदर्शनावरण आदि का स्वरूप—चक्षुदर्शनावरण—नेत्र के द्वारा होने वाले दर्शन—सामान्य उपयोग का आवृत हो जाना। अचक्षुदर्शनावरण—नेत्र के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों से होने वाले सामान्य उपयोग का आवृत होना। अवधिदर्शनावरण अवधिदर्शन का आवृत हो जाना। केवलदर्शनावरण –केवलदर्शन का उत्पन्न न होने देना।

दर्शनावरणीयकर्मोदय का प्रभाव–ज्ञानावरणीयकर्म की तरह दर्शनावरणीयकर्म के भी स्वयं उदय को प्राप्त अथवा दूसरे के द्वारा उदीरित दर्शनावरणीयकर्म के उदय से इन्द्रियों के लब्धि और उपयोग का आवरण हो जाता है। पूर्ववत् दर्शन परिणाम का उपघात होता है, जिसके कारण जीव द्रष्टव्य—देखने योग्य इन्द्रियगोचर वस्तु को भी नहीं देख पाता, इत्यादि दर्शनावरणीयकर्म के उदय से पूर्ववत् दर्शनगुण की विविध प्रकार से क्षति हो जाती है।[1]

सातावेदनीय और असातावेदनीयकर्म का अष्टविध अनुभाव कारण, प्रकार और उदय—सातावेदनीय और असातावेदनीय दोनों प्रकार के वेदनीयकर्मों के आठ आठ प्रकार के अनुभाव बताए गए हैं। इन अनुभावों के कारण तो वे ही ज्ञानावरणीयकर्म-सम्बन्धी अनुभाव के समान हैं।

सातावेदनीय के अष्टविध अनुभावों का स्वरूप—(१) मनोज्ञ वेणु वीणा आदि के शब्दों की प्राप्ति, (२) मनोज्ञ रूपों की प्राप्ति, (३) मनोज्ञ इत्र, चन्दन, फूल आदि सुगन्धों की प्राप्ति, (४) मनोज्ञ सुस्वादु रसों की प्राप्ति, (५) मनोज्ञ स्पर्शों की प्राप्ति, (६) मन में सुख का अनुभव, (७) वचन में सुखीपन, जिसका वचन सुनने मात्र से कर्ण और मन में आह्लाद उत्पन्न करने वाला हो और (८) काया का सुखीपन। सातावेदनीयकर्म के उदय से आठ प्रकार के अनुभाव होते हैं।

परनिमित्तक सातावेदनीयकर्मोदय—जिन माला, चन्दन आदि एक या अनेक पुद्गलों का आसेवन किया (वेदा) जाता है अथवा देश, काल, वय एवं अवस्था के अनुरूप आहारपरिणतिरूप पुद्गल-परिणाम वेदा जाता है अथवा स्वभाव से पुद्गलों के शीत, उष्ण, आतप आदि की वेदना के प्रतीकार के लिए यथावसर अभीष्ट पुद्गल-परिणाम का सेवन किया (वेदा) जाता है, जिससे मन को समाधि—प्रसन्नता प्राप्त होती है। यह परनिमित्तक सातावेदनीयकर्मों के उदय से सातावेदनीयकर्म का अनुभाव है। सातावेदनीयकर्म के फलस्वरूप साता सुख का संवेदन (अनुभव) होता है। साता वेदनीयकर्म के स्वतः उदय होने पर कभी कभी मनोज्ञ शब्दादि (परनिमित्त) के बिना भी सुखसाता का संवेदन होता है। जैसे—तीर्थंकर भगवान् का जन्म होने पर नारक जीव भी किंचित् काल पर्यन्त सुख का वेदन (अनुभव) करते हैं।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. ५, पृ. १८९ से १९१

असातावेदनीयकर्म का अष्टविध अनुभाग—सातावेदनीय के अनुभाव (विपाक) के समान है पर यह अनुभाव सातावेदनीय से विपरीत है। विष, शस्त्र, कण्टक आदि पुद्गल या पुद्गलों का जब वेदन किया जाता है अथवा अपथ्य या नीरस आहारादि पुद्गल परिणाम का अथवा स्वभाव से यथाकाल होने वाले शीत, उष्ण, आतप आदिरूप पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है, तब मन की असमाधि होती है, शरीर को भी दुःखानुभव होता है तथा तदनुरूप वाणी से भी असाता के उद्गार निकलते हैं। ऐसा अनुभाव असातावेदनीय का है। असातावेदनीयकर्म के उदय से असातारूप (दुःखरूप) फल प्राप्त होता है। यह परतः असातावेदनीयोदय का प्रतिपादन है। किन्तु बिना ही किसी परनिमित्त के असातावेदनीयकर्म पुद्गलों के उदय से जो दुःखानुभव (दुःखवेदन) होता है, वह स्वतः असातावेदनीयोदय है।[1]

मोहनीयकर्म का पंचविध अनुभाव क्या, क्यों और कैसे ?—पूर्वोक्त प्रकार से जीव के द्वारा बद्ध आदि विशिष्ट मोहनीयकर्म का पांच प्रकार का अनुभाव है—(१) सम्यक्त्ववेदनीय, (२) मिथ्यात्ववेदनीय, (३) सम्यग्-मिथ्यात्ववेदनीय, (४) कषायवेदनीय और (५) नोकषायवेदनीय। इनका स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है—

सम्यक्त्ववेदनीय—जो मोहनीयकर्म सम्यक्त्व प्रकृति के रूप में वेदन करने योग्य होता है, उसे सम्यक्त्ववेदनीय कहते हैं, अर्थात्—जिसका वेदन होने पर प्रशम आदि परिणाम उत्पन्न होता है वह सम्यक्त्ववेदनीय है। **मिथ्यात्ववेदनीय**—जो मोहनीयकर्म मिथ्यात्व के रूप में वेदन करने योग्य है, उसे मिथ्यात्ववेदनीय कहते हैं। अर्थात्—जिसका वेदन होने पर दृष्टि मिथ्या हो जाती है, अर्थात् अदेव आदि में देव आदि की बुद्धि उत्पन्न होती है वह मिथ्यात्ववेदनीय है। **सम्यक्त्व-मिथ्यात्ववेदनीय**—जिसका वेदन होने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिला-जुला परिणाम उत्पन्न होता है, वह सम्यक्त्वमिथ्यात्ववेदनीय है। **कषायवेदनीय**—जिसका वेदन क्रोधादि परिणामों का कारण होता है, वह कषायवेदनीय है। **नोकषायवेदनीय**—जिसका वेदन हास्य आदि का कारण हो, वह नोकषायवेदनीय है।

परतः मोहनीय कर्मोदय का प्रतिपादन—जिस पुद्गल-विषय अथवा जिन बहुत से पुद्गल विषयों—का वेदन किया जाता है। अथवा जिस पुद्गल-परिणाम को, जो कर्म पुद्गल-विशेष को ग्रहण करने में समर्थ हो एवं देश-काल के अनुरूप आहार परिणामरूप हो, वेदन किया जाता है। जैसे कि ब्राह्मी आदि के आहार-परिणमन से ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम देखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि आहार के परिणमन विशेष से भी कभी-कभी कर्मपुद्गलों में विशेषता आ जाती है। कहा भी है—

> उदय-क्खय-खओवसमोवसमा वि य जं च कम्मुणो भणिया।
> दव्वं खेत्तं कालं भावं च भवं च संपप्प ॥१॥

अर्थात्—कर्मों के जो उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम कहे गये हैं, वे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव का निमित्त पाकर होते हैं, अथवा स्वभाव से ही जिस पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है, जैसे—आकाश में बादलों आदि के विकार को देखकर मनुष्यों को ऐसा वेदन

1 प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. ५, पृ. २०४-२०५

(विवेक) उत्पन्न होता है कि मनुष्यों की आयु शरदऋतु के मेघों के समान है सम्पत्ति पुष्पित वृक्ष के सार के समान है और विषयोपभोग स्वप्न में दृष्ट वस्तुओं के उपभोग के समान है। वस्तुतः इस जगत् में जो भी रमणीय प्रतीत होता है, वह केवल कल्पनामात्र ही है अथवा उपशम आदि के कारणभूत जिस किसी बाह्य पदार्थ के प्रभाव से सम्यक्त्वमोहनीय आदि मोहनीयकर्म का वेदन किया जाता है, यह परतः मोहनीयकर्मोदय का प्रतिपादन है।

स्वतः मोहनीयकर्मोदय प्रतिपादन जो सम्यक्त्ववेदनीय आदि कर्मपुद्गलों के उदय से मोहनीयकर्म का वेदन (प्रशमादिरूपफल का वेदन) किया जाता है, वह स्वतः मोहनीय कर्मोदय है।[1]

आयुकर्म का अनुभाव प्रकार, स्वरूप, कारण—आयुकर्म का अनुभाव चार प्रकार से होता है—नारकायु तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु।

परतः आयुकर्म का उदय—आयु का अपवर्तन (ह्रास) करने में समर्थ जिस या जिन शस्त्र आदि पुद्गल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है अथवा विष एवं अन्न आदि परिणामरूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है अथवा स्वभाव से आयु का अपवर्तन करने वाले शीत-उष्णादिरूप पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है, उससे भुज्यमान आयु का अपवर्तन होता है। यह है—आयुकर्म के परतः उदय का निरूपण।

स्वतः आयुकर्म का उदय—नारकायुकर्म आदि के पुद्गलों के उदय से जो नारकायु आदि कर्म का वेदन किया जाता है, वह स्वतः आयुकर्म का उदय है।[2]

नामकर्म के अनुभावों का निरूपण—नामकर्म के मुख्यतया दो भेद हैं शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म। शुभनामकर्म का इष्ट शब्द आदि १४ प्रकार का अनुभाव (विपाक) कहा है। उनका स्वरूप इस प्रकार है—इष्ट का अर्थ है—अभिलषित (मनचाहा)। नामकर्म का प्रकरण होने से यहाँ अपने ही शब्द आदि समझने चाहिए। अपना ही अभीष्ट शब्द (वचन) इष्ट शब्द है। इसी तरह इष्ट रूप, गन्ध, रस और स्पर्श समझना चाहिए। इष्ट गति के दो अर्थ हैं—(१) देवगति या मनुष्य-गति अथवा (२) हाथी आदि जैसी उत्तम चाल। इष्ट स्थिति का अर्थ है—इष्ट और सहज सिंहासन आदि पर आरोहण। इष्ट लावण्य अर्थात्—अभीष्ट कान्ति-विशेष अथवा शारीरिक सौन्दर्य। इष्ट यशःकीर्ति—विशिष्ट पराक्रम प्रदर्शित करने से होने वाली ख्याति को यश कहते हैं और दान, पुण्य आदि से होने वाली ख्याति को कीर्ति कहते हैं। उत्थानादि छह का विशेषार्थ—शरीर-सम्बन्धी चेष्टा को उत्थान, भ्रमण आदि को कर्म, शारीरिक शक्ति को बल, आत्मा से उत्पन्न होने वाले सामर्थ्य को वीर्य, आत्मजन्य स्वाभिमान विशेष को पुरुषकार और अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लेने वाले पुरुषार्थ को पराक्रम कहते हैं। इष्टस्वर—वीणा आदि के समान वल्लभ स्वर। कान्तस्वर—कोकिला के स्वर के समान कमनीय स्वर। इष्ट सिद्धि आदि सम्बन्धी स्वर के समान जो स्वर बार-बार अभि-लषणीय हो, वह प्रियस्वर, तथा मनोवांछित लाभ आदि के तुल्य जो स्वर स्वाश्रय में प्रीति उत्पन्न कराए, वह मनोज्ञस्वर कहलाता है।

शुभनामकर्म के परतः एवं स्वतः उदय का निरूपण—वीणा, वर्णक, गन्ध, ताम्बूल पट्टाम्बर, पालखी, सिंहासन आदि शुभ पुद्गल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है, उन वस्तुओं

१ प्रज्ञापना सूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ५ पृ. २०८ से २१० तक

२ वही, भा. ५, पृ. २११

(पुद्गलों) के निमित्त से शब्द आदि की अभीष्टता सूचित की गई है। अथवा जिस ब्राह्मी औषधि आदि आहार के परिणमनरूप पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है। अथवा स्वभाव से शुभ मेघ आदि की छटा या घटाटोप को देखकर शुभ पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है। जैसे—वर्षाकालीन मेघों की घटा देखकर युवतियाँ इष्टस्वर में गान करने में प्रवृत्त होती हैं। उसके प्रभाव से शुभनामकर्म का वेदन किया जाता है। अर्थात् शुभनामकर्म के फलस्वरूप इष्टस्वरता आदि का अनुभव होता है। यह परनिमित्तक शुभनामकर्म का उदय है। जब शुभनामकर्म के पुद्गलों के उदय से इष्ट शब्दादि शुभनामकर्म का वेदन होता है, तब स्वतः नामकर्म का उदय समझना चाहिए।

अशुभनामकर्म का अनुभाव—जीव के द्वारा बद्ध, स्पृष्ट आदि विशेषणों से विशिष्ट दुःख (अशुभ) नामकर्म का अनुभाव भी पूर्ववत् १४ प्रकार का है, किन्तु वह शुभ से विपरीत है। जैसे—अनिष्ट शब्द इत्यादि।

गधा, ऊंट, कुत्ता आदि के शब्दादि अशुभ पुद्गल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है, क्योंकि उनके सम्बन्ध से अनिष्ट शब्दादि उत्पन्न होते हैं। यह सब पूर्वोक्त शुभनामकर्म से विपरीतरूप में समझ लेना चाहिए। अथवा विष आदि आहार परिणामरूप जिस पुद्गल-परिणाम का या स्वभावतः वज्रपात (बिजली गिरना) आदिरूप जिस पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है तथा उसके प्रभाव से अशुभनामकर्म के फलस्वरूप अनिष्टस्वरता आदि का अनुभव होता है। यह परतः अशुभनामकर्मोदय का अनुभाव है। जहाँ नामकर्म के अशुभकर्मपुद्गलों से अनिष्ट शब्दादि का वेदन होता हो, वहाँ स्वतः अशुभनामकर्मोदय समझना चाहिए।[1]

गोत्रकर्म का अनुभाव : भेद, प्रकार, कारण—गोत्रकर्म के भी मुख्यतया दो भेद हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र। उच्च जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य की विशिष्टता का अनुभव (वेदन) उच्चगोत्रानुभाव है तथा नीच जाति आदि की विशिष्टता का अनुभव नीचगोत्रानुभाव है।

उच्चगोत्रानुभाव : कैसे और किन कारणों से?—उस-उस द्रव्य के संयोग से या राजा आदि विशिष्ट पुरुष के संयोग से नीच जाति में जन्मा हुआ पुरुष भी जातिसम्पन्न और कुलसम्पन्न के समान लोकप्रिय हो जाता है। यह जाति और कुल की विशिष्टता हुई। बलविशेषता भी मल्ल आदि किसी विशिष्ट पुरुष के संयोग से होती है। जैसे—लकड़ी घुमाने से मल्लों में शारीरिक बल पैदा होता है, यह बल की विशेषता है। विशेष प्रकार के वस्त्रों और अलंकारों से रूप की विशेषता उत्पन्न होती है। पर्वत की चोटी पर खड़े होकर आतापना आदि लेने वाले में तप की विशेषता उत्पन्न होती है। रमणीय भूभाग में स्वाध्याय करने वाले में श्रुत की विशेषता उत्पन्न होती है। बहुमूल्य उत्तम रत्न आदि के संयोग से लाभ की विशेषता उत्पन्न होती है। धन, स्वर्ण आदि के सम्बन्ध से ऐश्वर्य की विशेषता उत्पन्न होती है। इस प्रकार बाह्य द्रव्यरूप शुभ पुद्गल या पुद्गलों का जो वेदन किया जाता है, या दिव्य फल आदि के आहार-परिणामरूप जिस पुद्गल-परिणाम का वेदन किया जाता है, अथवा स्वभाव से जिन पुद्गलों का परिणाम अकस्मात् जलधारा के आगमन आदि के रूप में वेदा जाता है, यही है उच्चगोत्र कर्मफल का वेदन। ये परतः उच्चगोत्रनामकर्मोदय के कारण हैं। स्वतः उच्चगोत्रकर्मोदय में तो उच्चगोत्र नामकर्म के पुद्गलों का उदय ही कारण है।

1 प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ५, पृ. २१३ से २१७ तक

नीचगोत्रानुभाव प्रकार और कारण—पूर्ववत् नीचगोत्रानुभाव भी ८ प्रकार का है और उच्चगोत्र के फल से नीचगोत्र का फल एकदम विपरीत है, यथा—जाति-विहीनता आदि।

जाति-कुल-विहीनता—अधम कर्म या अधम पुरुष के संसर्गरूप-पुद्गल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है जैसे कि अधमकर्मवशात् उत्तम कुल और जाति वाला व्यक्ति अधम आजीविका या चाण्डालकन्या का सेवन करता है, तब वह चाण्डाल के समान ही लोक-निन्दनीय होता है, यह जाति-कुल-विहीनता है। मुखशय्या आदि का योग न होने से बलहीनता होती है। दूषित अन्न, खराब वस्त्र आदि के योग से रूपहीनता होती है। दुष्ट जनों के सम्पर्क से तपोहीनता उत्पन्न होती है। शास्त्राभास आदि के सम्पर्क से श्रुतविहीनता होती है। देश-काल आदि के प्रतिकूल कुक्रय (खराब खरीद) आदि से लाभविहीनता होती है। खराब घर एवं कुलटा स्त्री आदि के सम्पर्क से ऐश्वर्यहीनता होती है। अथवा बंगन आदि आहारपरिणमनरूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है, क्योंकि बंगन खाने से खुजली होती है, और उससे रूपविहीनता उत्पन्न होती है। अथवा स्वभाव से अशुभपुद्गल परिणाम का जो वेदन किया जाता है, जैसे जलधारा के आगमन सम्बन्धी विसंवाद, उसके प्रभाव से भी नीचगोत्रकर्म के फलस्वरूप जातिविहीनता आदि का वेदन होता है। यह परतः नीचगोत्रकर्मोदय का निरूपण हुआ। स्वतः नीचगोत्रोदय में नीचगोत्रकर्म के पुद्गलों का उदय कारणरूप होता है। उससे जातिविहीनता आदि का अनुभव किया जाता है।[1]

अन्तरायकर्म का पंचविध अनुभाव: स्वरूप और कारण—दान देने में विघ्न आ जाना दानान्तराय है, लाभ में बाधाएँ आना लाभान्तराय है, इसी प्रकार भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न होना भोगान्तराय आदि है।

विशिष्ट प्रकार के रत्नादि पुदगल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है, यावत् विशिष्ट रत्नादि पुद्गलों के सम्बन्ध से उस विषय में ही दानान्तरायकर्म का उदय होता है। सेंध आदि लगाने के उपकरण आदि के सम्बन्ध से लाभान्तराय कर्मोदय होता है। विशेष प्रकार के आहार के या अभोज्य अर्थ के सम्बन्ध से लोभ के कारण भोगान्तरायकर्म का उदय होता है। इसी प्रकार उपभोगान्तराय कर्म का उदय भी समझ लेना चाहिए। लकडी, शस्त्र आदि की चोट से वीर्यान्तराय का उदय होता है। अथवा जिस पुद्गलपरिणाम का—विशिष्ट आहार-औषध का वेदन किया जाता है उससे भी, यानि विशिष्ट प्रकार के आहार और औषध आदि के परिणाम से वीर्यान्तरायकर्म का उदय होता है। अथवा स्वभाव से विचित्र शीत आदिरूप पुद्गलों के परिणाम के वेदन से भी दानान्तरायादि कर्मों का उदय होता है। जैसे—कोई व्यक्ति वस्त्र आदि का दान देना चाहता है, मगर गर्मी, सर्दी आदि का आवागमन देखकर दान नहीं कर पाता,—अदाता बन जाता है। यह हुआ परतः दानान्तरायादि कर्मोदय का प्रतिपादन। स्वतः दानान्तरायादि कर्मोदय में तो अन्तरायकर्म के पुद्गलों के उदय से दानान्तरायादि अन्तरायकर्म के फल का वेदन (अनुभव) होता है।[2]

॥ तेईसवाँ कर्मप्रकृतिपद : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा. ५, पृ. २१८ से २२२ तक

२ वही, भा ५, पृ. २२३ से २२४

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

मूल और उत्तर कर्मप्रकृतियो के भेद-प्रभेद की प्ररूपणा

१६८७ कति ण भते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ । त जहा—णाणावरणिज्ज जाव अतराइय ।

[१६८७ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही हैं ?

[१६८७ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतिया आठ कही गई है, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

१६८८ णाणावरणिज्जे ण भते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते । त जहा—आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे जाव केवलणाणावरणिज्जे ।

[१६८८ प्र] भगवन ! ज्ञानावरणीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६८८ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है, यथा—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय यावत् केवलज्ञानावरणीय ।

१६८९ [१] दरिसणावरणिज्जे ण भते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—णिद्दापचए य दसणचउक्कए य ।

[१६८९-१ प्र] भगवन् ! दर्शनावरणीयकर्म कितने प्रकार का कहा है ?

[१६८९-१ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा है, यथा—निद्रा-पचक और दर्शनचतुष्क ।

[२] णिद्दापचए ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते । त जहा—णिद्दा जाव थीणगिद्धी ।

[१६८९-२ प्र] भगवन् ! निद्रा-पचक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६८९-२ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा है, यथा—निद्रा यावत् स्त्यानगृद्धि (स्त्यानर्द्धि) ।

[३] दसणचउक्कए ण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते । त जहा—चक्खुदसणावरणिज्जे जाव केवलदसणावरणिज्जे ।

[१६८९-३ प्र] भगवन् ! दर्शनचतुष्क कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६८९-३ उ] गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा—चक्षुदर्शनावरण यावत् केवलदर्शनावरण ।

१६९० [१] वेयणिज्जे ण भते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते । त जहा—सायावेयणिज्जे य असायावेयणिज्जे य ।

[१६९०-१ प्र] भगवन्! वेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

[१६९०-१ उ] गौतम! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—सातावेदनीय और असातावेदनीय।

[२] सायावेयणिज्जे णं भंते! कम्मे० पुच्छा।

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तं जहा—मणुण्णा सद्दा जाव कायसुहया (सु १६८१ [१])।

[१६९०-२ प्र] भगवन्! सातावेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

[१६९०-२ उ] गौतम! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा—(सू. १६८१-१ के अनुसार) मनोज्ञ शब्द यावत् कायसुखता।

[३] असायावेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तं जहा—अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया।

[१६९०-३ प्र] भगवन्! असातावेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

[१६९०-३ उ] गौतम! वह आठ प्रकार का कहा गया है।

१६९१. [१] मोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—दंसणमोहणिज्जे य चरित्तमोहणिज्जे य।

[१६९१-१ प्र] भगवन्! मोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

[१६९१-१ उ] गौतम! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय।

[२] दंसणमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सम्मत्तवेयणिज्जे १ मिच्छत्तवेयणिज्जे २ सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे ३ य।

[१६९१-२ प्र] भगवन्! दर्शन-मोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा है?

[१६९१-२ उ] गौतम! दर्शन-मोहनीयकर्म तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) सम्यक्त्ववेदनीय, (२) मिथ्यात्ववेदनीय और (३) सम्यग्-मिथ्यात्ववेदनीय।

[३] चरित्तमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—कसायवेयणिज्जे य णोकसायवेयणिज्जे य।

[१६९१-३ प्र] भगवन्! चारित्रमोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

[१६९१-३ उ] गौतम! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय।

[४] कसायवेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलसविहे पण्णत्ते। तं जहा—अणंताणुबंधी कोहे १ अणंताणुबंधी माणे २ अणंताणुबंधी माया ३ अणंताणुबंधी लोभे ४ अपच्चक्खाणे कोहे ५ एवं माणे ६ माया ७ लोभे ८,

पच्चक्खाणावरणे कोहे ९ एवं माणे १० माया ११ लोभे १२, संजलणे कोहे १३ एवं माणे १४ माया १५ लोभे १६।

[१६९१-४ प्र] भगवन्! कषायवेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९१-४ उ] गौतम! वह सोलह प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) अनन्तानुबन्धी क्रोध, (२) अनन्तानुबन्धी मान, (३) अनन्तानुबन्धी माया, (४) अनन्तानुबन्धी लोभ, (५-६-७-८) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, (९-१०-११-१२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया तथा लोभ, इसी प्रकार (१३-१४-१५-१६) संज्वलन क्रोध, मान, माया एवं लोभ।

[५] णोकसायवेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! णवविहे पण्णत्ते। तं जहा—इत्थिवेए १ पुरिसवेए २ णपुंसगवेदे ३ हासे ४ रती ५ अरती ६ भये ७ सोगे ८ दुगुंछा ९।

[१६९१-५ प्र] भगवन्! नोकषाय-वेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९१-५ उ] गौतम! वह नौ प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) स्त्रीवेद, (२) पुरुषवेद, (३) नपुंसकवेद, (४) हास्य, (५) रति, (६) अरति, (७) भय, (८) शोक और (९) जुगुप्सा।

१६९२. आउए णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—णेरइयाउए जाव देवाउए।

[१६९२ प्र] भगवन्! आयुकर्म कितने प्रकार का कहा है ?

[१६९२ उ] गौतम! वह चार प्रकार का कहा गया है यथा—नारकायु यावत् देवायु।

१६९३. णामे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! बायालीसइविहे पण्णत्ते। तं जहा—गतिणामे १ जाइणामे २ सरीरणामे ३ सरीरंगोवंगणामे ४ सरीरबंधणणामे ५ सरीरसंघायणामे ६ संघयणणामे ७ संठाणणामे ८ वण्णणामे ९ गंधणामे १० रसणामे ११ फासणामे १२ अगुरुलहुयणामे १३ उवघायणामे १४ पराघायणामे १५ आणुपुव्वीणामे १६ उस्सासणामे १७ आयवणामे १८ उज्जोयणामे १९ विहायगतिणामे २० तसणामे २१ थावरणामे २२ सुहुमणामे २३ बादरणामे २४ पज्जत्तणामे २५ अपज्जत्तणामे २६ साहारण-सरीरणामे २७ पत्तेयसरीरणामे २८ थिरणामे २९ अथिरणामे ३० सुभणामे ३१ असुभणामे ३२ सुभगणामे ३३ दूभगणामे ३४ सूसरणामे ३५ दूसरणामे ३६ आदेज्जणामे ३७ अणादेज्जणामे ३८ जसोकित्तिणामे ३९ अजसोकित्तिणामे ४० णिम्माणणामे ४१ तित्थगरणामे ४२।

[१६९३ प्र] भगवन्! नामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९३ उ] गौतम! वह बयालीस प्रकार का कहा है, यथा—(१) गतिनाम, (२) जाति-नाम, (३) शरीरनाम, (४) शरीरांगोपांगनाम (५) शरीरबंधननाम, (६) शरीरसंघातनाम, (७) संहनननाम (८) संस्थाननाम, (९) वर्णनाम, (१०) गन्धनाम, (११) रसनाम, (१२) स्पर्श नाम, (१३) अगुरुलघुनाम, (१४) उपघातनाम, (१५) पराघातनाम, (१६) आनुपूर्वीनाम, (१७) उच्छ्वासनाम (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) विहायोगतिनाम, (२१) त्रसनाम

(२२) स्थावरनाम, (२३) सूक्ष्मनाम, (२४) बादरनाम, (२५) पर्याप्तनाम, (२६) अपर्याप्तनाम, (२७) साधारणशरीरनाम, (२८) प्रत्येकशरीरनाम, (२९) स्थिरनाम, (३०) अस्थिरनाम, (३१) शुभनाम, (३२) अशुभनाम, (३३) सुभगनाम, (३४) दुर्भगनाम, (३५) सुस्वरनाम, (३६) दुःस्वरनाम, (३७) आदेयनाम, (३८) अनादेयनाम, (३९) यशःकीर्तिनाम, (४०) अयशःकीर्तिनाम, (४१) निर्माणनाम और (४२) तीर्थंकरनाम।

१६९४ [१] गतिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते ! तं जहा—णिरयगतिणामे १ तिरियगतिणामे २ मणुयगतिणामे ३ देवगतिणामे ४।

[१६९४-१ प्र] भगवन् ! गतिनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-१ उ] गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) नरकगतिनाम, (२) तिर्यञ्चगतिनाम, (३) मनुष्यगतिनाम और (४) देवगतिनाम।

[२] जाइणामे णं भंते ! कम्मे० पुच्छा।

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते ! तं जहा—एगिंदियजाइणामे जाव पंचेंदियजाइणामे।

[१६९४-२ प्र] भगवन् ! जातिनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-२ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है यथा—एकेन्द्रियजातिनाम, यावत् पंचेन्द्रियजातिनाम।

[३] सरीरणामे णं भंते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—ओरालियसरीरणामे जाव कम्मगसरीरणामे।

[१६९४-३ प्र] भगवन् ! शरीरनामकर्म कितने प्रकार का कहा है ?

[१६९४-३ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—औदारिकशरीरनाम यावत् कार्मणशरीरनाम।

[४] सरीरोवंगणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—ओरालियसरीरोवंगणामे १ वेउव्वियसरीरोवंगणामे २ आहारगसरीरोवंगणामे ३।

[१६९४-४ प्र] भगवन् ! शरीरांगोपांगनाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-४ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) औदारिकशरीरांगोपांग, (२) वैक्रियशरीरांगोपांग और (३) आहारकशरीरांगोपांग नाम।

[५] सरीरबंधणणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—ओरालियसरीरबंधणणामे जाव कम्मगसरीरबंधणणामे।

[१६९४-५ प्र] भगवन् ! शरीरबन्धननाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-५ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है यथा—औदारिकशरीरबन्धननाम, यावत् कार्मणशरीरबन्धननाम।

[६] सरीरसंघायणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—ओरालियसरीरसंघातणामे जाव कम्मगसरीर-संघायणामे।

[१६९४-६ प्र.] भगवन् ! शरीरसंघातनाम कितने प्रकार का कहा है ?

[१६९४-६ उ.] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है यथा—औदारिकशरीरसंघात-नाम यावत् कार्मणशरीरसंघातनाम।

[७] संघयणणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—वइरोसभणारायसंघयणणामे १ उसभणारायसंघयणणामे २ णारायसंघयणणामे ३ अद्धणारायसंघयणणामे ४ कीलियासंघयणणामे ५ छेवट्ठसंघयणणामे ६।

[१६९४-७ प्र.] भगवन् ! संहनननाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-७ उ.] गौतम ! वह छह प्रकार का कहा है, यथा—(१) वज्रऋषभनाराचसंहनन-नाम, (२) ऋषभनाराचसंहनननाम (३) नाराचसंहनननाम, (४) अर्द्धनाराचसंहनननाम, (५) कीलिकासंहनननाम और (६) सेवार्त्तसंहनननामकर्म।

[८] संठाणणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—समचउरंससंठाणणामे १ णग्गोहपरिमंडलसंठाणणामे २ सातिसंठाणणामे ३ वामणसंठाणणामे ४ खुज्जसंठाणणामे ४ हुंडसंठाणणामे ६।

[१६९४-८ प्र.] भगवन् ! संस्थाननाम कितने प्रकार का कहा है ?

[१६९४-८ उ.] गौतम ! वह छह प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) समचतुरस्रसंस्थान-नाम, (२) न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम, (३) सादिसंस्थाननाम, (४) वामनसंस्थाननाम, (५) कुब्ज-संस्थाननाम और (६) हुण्डकसंस्थाननामकर्म।

[९] वण्णणामे णं भंते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—कालवण्णणामे जाव सुक्किलवण्णणामे।

[१६९४-९ प्र.] भगवन् ! वर्णनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-९ उ.] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—कालवर्णनाम यावत् शुक्लवर्णनाम।

[१०] गंधणामे णं भंते ! कम्मे० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—सुरभिगंधणामे १ दुरभिगंधणामे २।

[१६९४-१० प्र.] भगवन् ! गन्धनामकर्म कितने प्रकार का कहा है ?

[१६९४-१० उ.] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—सुरभिगन्धनाम और दुरभिगन्धनामकर्म।

[११] रसणामे णं० पुच्छा।

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—तित्तरसणामे जाव महुररसणामे।

[१६९४-११ प्र] भगवन् ! रसनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-११ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—तिक्तरसनाम यावत् मधुररसनामकर्म।

[१२] फासणामे णं० पुच्छा।

गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते। तं जहा—कक्खडफासणामे जाव लुक्खफासणामे।

[१६९४-१२ प्र] भगवन् ! स्पर्शनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९४-१२ उ] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा—कर्कशस्पर्शनाम यावत् रूक्षस्पर्शनामकर्म।

[१३] अगुरुलहुयणामे एगागारे पण्णत्ते।

[१६९४-१३] अगुरुलघुनाम एक प्रकार का कहा गया है।

[१४] उवघायणामे एगागारे पण्णत्ते।

[१६९४-१४] उपघातनाम एक प्रकार का कहा है।

[१५] पराघायणामे एगागारे पण्णत्ते।

[१६९४-१५] पराघातनाम एक प्रकार का कहा है।

[१६] आणुपुव्विणामे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—णेरइयाणुपुव्विणामे जाव देवाणुपुव्विणामे।

[१६९४-१६] आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का कहा गया है, यथा—नैरयिकानुपूर्वीनाम यावत् देवानुपूर्वीनामकर्म।

[१७] उस्सासणामे एगागारे पण्णत्ते।

[१६९४-१७] उच्छ्वासनाम एक प्रकार का कहा गया है।

[१८] सेसाणि सव्वाणि एगागाराइं पण्णत्ताइं जाव तित्थगरणामे। णवरं विहायगतिणामे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—पसत्थविहायगतिणामे य अपसत्थविहायगतिणामे य।

[१६९४-१८] शेष सब तीर्थंकरनामकर्म तक एक-एक प्रकार के कहे हैं। विशेष यह है कि विहायोगतिनाम दो प्रकार का कहा है, यथा—प्रशस्तविहायोगतिनाम और अप्रशस्तविहायोगतिनाम।

१६९५ [१] गोए णं भंते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—उच्चागोए य णीयागोए य।

[१६९५-१ प्र] भगवन् ! गोत्रकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९५-१ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

[२] उच्चागोए णं भंते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते। तं जहा—जाइविसिट्ठया जाव इस्सरियविसिट्ठया।

[१६९५-२ प्र] भगवन् ! उच्चगोत्रकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९५-२ उ] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा—जातिविशिष्टता यावत् ऐश्वर्यविशिष्टता।

[३] एवं णीयागोए वि। णवरं जातिविहीणया जाव इस्सरियविहीणया।

[१६९५-३] इसी प्रकार नीचगोत्र भी आठ प्रकार का है। किन्तु यह उच्चगोत्र से विपरीत है, यथा—जातिविहीनता यावत् ऐश्वर्यविहीनता।

१६९६. अंतराइए णं भंते ! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते। जहा—दाणंतराइए जाव वीरियंतराइए।

[१६९६ प्र] भगवन् ! अन्तरायकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६९६ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—दानान्तराय यावत् वीर्यान्तरायकर्म।

विवेचन—उत्तरकर्मप्रकृतियां—प्रथम उद्देशक में ज्ञानावरणीय आदि ८ मूल कर्मप्रकृतियों के अनुभाव का वर्णन करने के पश्चात् द्वितीय उद्देशक में सर्वप्रथम (सू. १६७९ से १६९६ तक में) मूल कर्मप्रकृतियों के अनुसार उत्तरकर्मप्रकृतियों के भेदों का निरूपण किया गया है।[1]

उत्तरकर्मप्रकृतियों का स्वरूप—(१) ज्ञानावरणीयकर्म के पांच उत्तरभेद हैं। **आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानावरण**—जो कर्म आभिनिबोधिक ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान को आवृत करता है, उसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कहते हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरण आदि के विषय में समझ लेना चाहिए।

दर्शनावरणीयकर्म—पदार्थ के सामान्य धर्म को—सत्ता के प्रतिभास को दर्शन कहते हैं। दर्शन को आवरण करने वाले कर्म को दर्शनावरण कहते हैं। दर्शनावरण के दो भेद—निद्रापंचक और दर्शनचतुष्क हैं। निद्रापंचक के पांच भेदों का स्वरूप प्रथम उद्देशक में कहा जा चुका है। दर्शनचतुष्क चार प्रकार का है—**चक्षुदर्शनावरण**—चक्षु के द्वारा वस्तु के सामान्यधर्म के ग्रहण को रोकने वाला कर्म चक्षुदर्शनावरण है। **अचक्षुदर्शनावरण**—चक्षुरिन्द्रिय के सिवाय शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियों और मन से होने वाले सामान्यधर्म के प्रतिभास को रोकने वाले कर्म को अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं। **अवधिदर्शनावरण**—इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना ही द्रव्य के सामान्यधर्म के होने वाले बोध को रोकने वाले कर्म को अवधिदर्शनावरण कहते हैं। **केवलदर्शनावरण**—सम्पूर्ण द्रव्यों के होने वाले सामान्यधर्म के अवबोध को आवृत करने वाले को केवलदर्शनावरण कहते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि निद्रापंचक प्राप्त दर्शनशक्ति का उपघातक है, जबकि दर्शनचतुष्क मूल में ही दर्शनलब्धि का घातक होता है।[2]

---

१ पण्णवणासुत्तं भा. १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ. ३६७ से ३७१ तक

२ (क) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मू. पा. टि.) पृ. ३६८

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ. २४१-२४२

(ग) कर्मग्रन्थ भा. १ (मरुधरकेसरीव्याख्या) पृ. ८९ से ६१ तक

(३) वेदनीयकर्म—जो कर्म इन्द्रियों के विषयों का अनुभवन—वेदन कराए, उसे वेदनीयकर्म कहते हैं। वेदनीयकर्म से आत्मा को जो सुख-दुःख का वेदन होता है, वह इन्द्रियजन्य सुख-दुःख अनुभव है। आत्मा को जो स्वाभाविक सुखानुभूति होती है वह कर्मोदय से नहीं होती। इसका स्वभाव तलवार की शहद-लगी धार को चाटने के समान है। इसके मुख्य दो प्रकार है—(१) सातावेदनीय - जिस कर्म के उदय से आत्मा को इन्द्रियविषय-सम्बन्धी सुख का अनुभव हो, उसे सातावेदनीयकर्म कहते हैं। (२) असातावेदनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल विषयों की अप्राप्ति और प्रतिकूल इन्द्रियविषयों की प्राप्ति में दुःख का अनुभव हो, उसे असातावेदनीय कहते हैं। सातावेदनीय के मनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं और इसके विपरीत असातावेदनीय के भी अमनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं। इनका अर्थ पहले लिखा जा चुका है।[1]

(४) मोहनीयकर्म—जिस प्रकार मद्य के नशे में चूर मनुष्य अपने हिताहित का भान भूल जाता है, उसी प्रकार जिस कर्म के उदय से जीव में अपने वास्तविक स्वरूप एवं हिताहित को पहचानने और परखने की बुद्धि लुप्त हो जाती है, कदाचित् हिताहित को परखने की बुद्धि भी आ जाए तो भी तदनुसार आचरण करने का सामर्थ्य प्राप्त नहीं हो पाता, उसे मोहनीयकर्म कहते हैं। इसके मुख्यतः दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय—जो पदार्थ जैसा है, उसे यथार्थरूप में वैसा ही समझना, तत्त्वार्थ पर श्रद्धान करना दर्शन कहलाता है, आत्मा के इस निजी दर्शनगुण का घात (आवृत) करने वाले कर्म को दर्शनमोहनीय कहते हैं। चारित्रमोहनीय—आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति अथवा उसमें रमणता करना चारित्र है अथवा सावद्ययोग से निवृत्ति तथा निरवद्ययोग में प्रवृत्तिरूप आत्मा का परिणाम चारित्र है। आत्मा के इस चारित्रगुण को घात करने या उत्पन्न न होने देने वाले कर्म को चारित्रमोहनीय कहते हैं।

दर्शनमोहनीयकर्म के तीन भेद हैं—सम्यक्त्ववेदनीय, मिथ्यात्ववेदनीय और सम्यग्-मिथ्यात्ववेदनीय। इन्हें क्रमशः शुद्ध, अशुद्ध और अर्द्धशुद्ध कहा गया है। जो कर्म शुद्ध होने से तत्त्वरुचि-रूप सम्यक्त्व में बाधक तो न हो, किन्तु आत्मस्वभावरूप औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होने देता, जिससे सूक्ष्म पदार्थों का स्वरूप विचारने में शंका उत्पन्न हो, सम्यक्त्व में मलिनता आ जाती हो, चल, मल, अगाढदोष उत्पन्न हो जाते हों, वह सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय) है। जिसके उदय से जीव को तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप की रुचि ही न हो, अर्थात्—तत्त्वार्थ के अश्रद्धान के रूप में वेदा जाए उसे मिथ्यात्वमोहनीय कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का तत्त्व (यथार्थ) के प्रति या जिन-प्रणीत तत्त्व में रुचि या अरुचि अथवा श्रद्धा या अश्रद्धा न होकर मिश्र स्थिति रहे, उसे सम्यक्त्व-मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) या मिश्रमोहनीय कहते हैं।

(५) चारित्रमोहनीयकर्म : भेद और स्वरूप—चारित्रमोहनीयकर्म के मुख्य दो भेद हैं—कषाय-वेदनीय (मोहनीय) और नोकषायवेदनीय (मोहनीय)। कषायवेदनीय—जो कर्म क्रोध, मान, माया और लोभ के रूप में वेदा जाता हो, उसे कषायवेदनीय कहते हैं। कषाय का लक्षण विशेषावश्यक भाष्य में इस प्रकार कहा गया है—जो आत्मा के गुणों को कषे—नष्ट करे अथवा कष यानी जन्म मरणरूप संसार, उसको आय अर्थात् प्राप्ति जिससे हो, उसे कषाय कहते हैं। कषाय के क्रोध, मान,

१ (क) कर्मग्रन्थ भाग १, [illegible]
(ख) प्रज्ञापना [illegible]

माया और लोभ, ये चार भेद है। क्रोध—समभाव को भूल कर आक्रोश से भर जाना, दूसरे पर रोष करना। मान—गव, अभिमान या झूठा आत्मप्रदर्शन। माया—कपटभाव अर्थात्—विचार और प्रवत्ति मे एकरूपता का अभाव। लोभ— ममता के परिणाम। इसी कषायचतुष्टय के तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र और मन्द स्थिति के कारण चार-चार प्रकार हो सकते है। वे क्रमश अनन्तानुबन्धी (तीव्रतमस्थिति), अप्रत्याख्यानावरण (तीव्रतरस्थिति), प्रत्याख्यानावरण (तीव्रस्थिति) तथा सज्वलन (मदस्थिति) हैं। इनके लक्षण क्रमश इस प्रकार हैं—

अनन्तानुबन्धी—जो जीव के सम्यक्त्व आदि गुणो का घात करके अनन्तकाल तक ससार मे परिभ्रमण कराए, उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण—जो कषाय आत्मा के देशविरति चारित्र (श्रावकपन) का घात करे अर्थात् जिसके उदय से देशविरति—आंशिकत्यागरूप प्रत्याख्यान न हो सके, उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण—जिस कषाय के प्रभाव से आत्मा को सर्वविरति चारित्र प्राप्त करने मे बाधा हो, अर्थात् श्रमणधर्म की प्राप्ति न हो, उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

सज्वलन—जिस कषाय के उदय से आत्मा को यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति न हो, अर्थात् जो कषाय परीषह और उपसर्गों के द्वारा श्रमणधर्म के पालन करने को प्रभावित करे वह सज्वलन कषाय है।

इन चारो के साथ क्रोधादि चार कषायो को जोडने से कषायमोहनीय के १६ भेद हो जाते हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध—पर्वत के फटने से हुई दरार के समान जो क्रोध उपाय करने पर भी शान्त न हो। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध—सूखी मिट्टी मे आई हुई दरार जैसे पानी के सयोग से फिर भर जाती है, वैसे ही जो क्रोध कुछ परिश्रम और उपाय से शान्त हो जाता हो। प्रत्याख्यानावरण क्रोध—धूल (रेत) पर खीची हुई रेखा जसे हवा चलने पर कुछ समय मे भर जाती है, वसे ही जो क्रोध कुछ उपाय से शान्त हो जाता है। सज्वलन क्रोध—पानी पर खीची हुई लकीर के समान जो क्रोध तत्काल शान्त हो जाता है।

अनन्तानुबन्धी मान—जैसे कठिन परिश्रम से भी पत्थर के खभे को नमाना असभव है, वैसे ही जो मान कदापि दूर नही होता। अप्रत्याख्यानावरण मान—हड्डी को नमाने के लिए कठोर श्रम के सिवाय उपाय भी करना पडता है, वैसे ही जो मान अतिपरिश्रम और उपाय से दूर होता है। प्रत्याख्यानावरण मान—सूखा काष्ठ तेल आदि की मालिश से नरम हो जाता है, वैसे ही जो मान कुछ परिश्रम और उपाय से दूर होता हो। सज्वलन मान—विना परिश्रम के नमाये जाने वाले वेंत के समान जो मान क्षणभर मे अपने आग्रह को छोड कर नम जाता है।

अनन्तानुबन्धी माया—बाँस की जड मे रहने वाली वक्रता—टेढापन का सीधा होना असम्भव होता है, इसी प्रकार जो माया छूटनी असभव होती है। अप्रत्याख्यानावरण माया—मेंढे के सींग की

(३) वेदनीयकर्म—जो कर्म इन्द्रियों में विषयो का अनुभवन—वेदन कराए, उसे वेदनीयकर्म कहते हैं। वेदनीयकर्म से आत्मा को जो सुख-दुःख का वेदन होता है, वह इन्द्रियजन्य सुख-दुःख अनुभव है। आत्मा को जो स्वाभाविक सुखानुभूति होती है वह कर्मोदय से नही होती। इसका स्वभाव तलवार की शहद-लगी धार को चाटने के समान है। इसके मुख्य दो प्रकार है—(१) सातावेदनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा को इन्द्रियविषय-सम्बन्धी सुख का अनुभव हो, उसे सातावेदनीयकर्म कहते हैं। (२) असातावेदनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल विषयो की अप्राप्ति और प्रतिकूल इन्द्रियविषयो की प्राप्ति मे दुःख का अनुभव हो, उसे असातावेदनीय कहते हैं। सातावेदनीय के मनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं और इसके विपरीत असातावेदनीय के भी अमनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं। इनका अर्थ पहले लिखा जा चुका है।[1]

(४) मोहनीयकर्म—जिस प्रकार मद्य के नशे मे चूर मनुष्य अपने हिताहित का भान भूल जाता है, उसी प्रकार जिस कर्म के उदय मे जीव मे अपने वास्तविक स्वरूप एव हिताहित को पहचानने और परखने की बुद्धि लुप्त हो जाती है, कदाचित् हिताहित को परखने की बुद्धि भी आ जाए तो भी तदनुसार आचरण करने का सामर्थ्य प्राप्त नही हो पाता उसे मोहनीयकर्म कहते हैं। इसके मुख्यत दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय—जो पदार्थ जैसा है, उसे यथार्थरूप मे वैसा ही समझना, तत्त्वार्थ पर श्रद्धान करना दर्शन कहलाता है, आत्मा के इस निजी दर्शनगुण का घात (आवृत) करने वाले कर्म को दर्शनमोहनीय कहते हैं। चारित्रमोहनीय—आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति अथवा उसमे रमणता करना चारित्र है अथवा सावद्ययोग से निवृत्ति तथा निरवद्ययोग में प्रवृत्तिरूप आत्मा का परिणाम चारित्र है। आत्मा के इस चारित्रगुण को घात करने या उत्पन्न न होने देने वाले कर्म को चारित्रमोहनीय कहते हैं।

दर्शनमोहनीयकर्म के तीन भेद हैं—सम्यक्त्ववेदनीय, मिथ्यात्ववेदनीय और सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय। इन्हें क्रमश शुद्ध, अशुद्ध और अर्द्धशुद्ध कहा गया है। जो कर्म शुद्ध होने से तत्त्वरुचिरूप सम्यक्त्व मे बाधक तो न हो, किन्तु आत्मस्वभावरूप औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होने देता, जिससे सूक्ष्म पदार्थो का स्वरूप विचारने मे शका उत्पन्न हो, सम्यक्त्व मे मलिनता आ जाती हो, चल, मल, अगाढदोष उत्पन्न हो जाते हो, वह सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय) है। जिसके उदय से जीव को तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप की रुचि ही न हो, अर्थात्—तत्त्वार्थ के अश्रद्धान के रूप मे वेदा जाए उसे मिथ्यात्वमोहनीय कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का तत्त्व (यथार्थ) के प्रति या जिनप्रणीत तत्त्व मे रुचि या अरुचि अथवा श्रद्धा या अश्रद्धा न होकर मिश्र स्थिति रहे, उसे सम्यक्त्व-मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) या मिश्रमोहनीय कहते हैं।

(५) चारित्रमोहनीयकर्म भेद और स्वरूप—चारित्रमोहनीयकर्म के मुख्य दो भेद हैं—कषायवेदनीय (मोहनीय) और नोकषायवेदनीय (मोहनीय)। कषायवेदनीय—जो कर्म क्रोध, मान, माया और लोभ के रूप मे वेदा जाता हो, उसे कषायवेदनीय कहते हैं। कषाय का लक्षण विशेषावश्यकभाष्य मे इस प्रकार कहा गया है—जो आत्मा के गुणों को कषे—नष्ट करे अथवा कष यानी जन्ममरणरूप ससार, उसकी आय अर्थात् प्राप्ति जिससे हो, उसे कषाय कहते हैं। कषाय के क्रोध, मान,

---

१ (क) कर्मग्रन्थ भाग १, (मरुधरकेसरीव्याख्या), पृ ६५-६६

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ २४२

माया और लोभ, ये चार भेद हैं। क्रोध—समभाव को भूल कर आक्रोश से भर जाना, दूसरे पर रोष करना। मान—गर्व, अभिमान या झूठा आत्मप्रदर्शन। माया—कपटभाव अर्थात्—विचार और प्रवृत्ति मे एकरूपता का अभाव। लोभ— ममता के परिणाम। इसी कषायचतुष्टय के तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र और मन्द स्थिति के कारण चार-चार प्रकार हो सकते हैं। वे क्रमश अनन्तानुबन्धी (तीव्रतमस्थिति), अप्रत्याख्यानावरण (तीव्रतरस्थिति), प्रत्याख्यानावरण (तीव्रस्थिति) तथा सज्वलन (मदस्थिति) हैं। इनके लक्षण क्रमश इस प्रकार हैं—

अनन्तानुबन्धी—जो जीव के सम्यक्त्व आदि गुणो का घात करके अनन्तकाल तक ससार मे परिभ्रमण कराए, उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण—जो कषाय आत्मा के देशविरति चारित्र (श्रावकपन) का घात करे अर्थात् जिसके उदय से देशविरति—आशिकत्यागरूप प्रत्याख्यान न हो सके, उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण—जिस कषाय के प्रभाव से आत्मा को सर्वविरति चारित्र प्राप्त करने मे बाधा हो, अर्थात् श्रमणधर्म की प्राप्ति न हो, उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

सज्वलन—जिस कषाय के उदय से आत्मा को यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति न हो, अर्थात् जो कषाय परीषह और उपसर्गों के द्वारा श्रमणधर्म के पालन करने को प्रभावित करे वह सज्वलन कषाय है।

इन चारो के साथ क्रोधादि चार कषायो को जोडने से कषायमोहनीय के १६ भेद हो जाते है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध—पर्वत के फटने से हुई दरार के समान जो क्रोध उपाय करने पर भी शान्त न हो। **अप्रत्याख्यानावरण क्रोध**—सूखी मिट्टी मे आई हुई दरार जैसे पानी के सयोग से फिर भर जाती है, वैसे ही जो क्रोध कुछ परिश्रम और उपाय से शान्त हो जाता हो। **प्रत्याख्यानावरण क्रोध**—धूल (रेत) पर खीची हुई रेखा जैसे हवा चलने पर कुछ समय मे भर जाती है, वैसे ही जो क्रोध कुछ उपाय से शान्त हो जाता है। **सज्वलन क्रोध**—पानी पर खीची हुई लकीर के समान जो क्रोध तत्काल शान्त हो जाता है।

अनन्तानुबन्धी मान—जैसे कठिन परिश्रम से भी पत्थर के खभे को नमाना असभव है, वैसे ही जो मान कदापि दूर नही होता। **अप्रत्याख्यानावरण मान**—हड्डी को नमाने के लिए कठोर श्रम के सिवाय उपाय भी करना पडता है, वैसे ही जो मान अतिपरिश्रम और उपाय से दूर होता है। **प्रत्याख्यानावरण मान**—सूखा काष्ठ तेल आदि की मालिश से नरम हो जाता है, वैसे ही जो मान कुछ परिश्रम और उपाय से दूर होता हो। **सज्वलन मान**—विना परिश्रम के नमाये जाने वाले बेंत के समान जो मान क्षणभर मे अपने आग्रह को छोड कर नम जाता है।

अनन्तानुबन्धी माया—बाँस की जड मे रहने वाली वक्रता—टेढापन का सीधा होना असम्भव होता है, इसी प्रकार जो माया छूटनी असभव होती है। **अप्रत्याख्यानावरण माया**—मेढे के सीग की

(३) वेदनीयकर्म—जो कर्म इन्द्रियो के विषयो का अनुभवन—वेदन कराए, उसे वेदनीयकर्म कहते हैं। वेदनीयकर्म से आत्मा को जो सुख-दुःख का वेदन होता है, वह इन्द्रियजन्य सुख-दुःख अनुभव है। आत्मा को जो स्वाभाविक सुखानुभूति होती है वह कर्मोदय से नही होती। इसका स्वभाव तलवार की शहद लगी धार को चाटने के समान है। इसके मुख्य दो प्रकार है—(१) सातावेदनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा को इन्द्रियविषय-सम्बन्धी सुख का अनुभव हो, उसे सातावेदनीयकर्म कहते हैं। (२) असातावेदनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल विषयो की अप्राप्ति और प्रतिकूल इन्द्रियविषयो की प्राप्ति मे दुःख का अनुभव हो, उसे असातावेदनीय कहते हैं। सातावेदनीय के मनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं और इसके विपरीत असातावेदनीय के भी अमनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं। इनका अर्थ पहले लिखा जा चुका है।[1]

(४) मोहनीयकर्म—जिस प्रकार मद्य के नशे मे चूर मनुष्य अपने हिताहित का भान भूल जाता है, उसी प्रकार जिस कर्म के उदय से जीव मे अपने वास्तविक स्वरूप एवं हिताहित को पहचानने और परखने की बुद्धि लुप्त हो जाती है, कदाचित् हिताहित को परखने की बुद्धि भी आ जाए तो भी तदनुसार आचरण करने का सामर्थ्य प्राप्त नही हो पाता, उसे मोहनीयकर्म कहते हैं। इसके मुख्यत दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय—जो पदार्थ जैसा है, उसे यथार्थरूप मे वैसा ही समझना, तत्त्वार्थ पर श्रद्धान करना दर्शन कहलाता है, आत्मा के इस निजी दर्शनगुण का घात (आवृत) करने वाले कर्म को दर्शनमोहनीय कहते हैं। चारित्रमोहनीय—आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति अथवा उसमे रमणता करना चारित्र है अथवा सावद्ययोग से निवृत्ति तथा निरवद्ययोग मे प्रवृत्तिरूप आत्मा का परिणाम चारित्र है। आत्मा के इस चारित्रगुण को घात करने या उत्पन्न न होने देने वाले कर्म को चारित्रमोहनीय कहते हैं।

दर्शनमोहनीयकर्म के तीन भेद हैं—सम्यक्त्ववेदनीय, मिथ्यात्ववेदनीय और सम्यग्-मिथ्यात्ववेदनीय। इन्हे क्रमशः शुद्ध, अशुद्ध और अर्द्धशुद्ध कहा गया है। जो कर्म शुद्ध होने से तत्त्वरुचि-रूप सम्यक्त्व मे बाधक तो न हो, किन्तु आत्मस्वभावरूप औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होने देता, जिससे सूक्ष्म पदार्थों का स्वरूप विचारने मे शका उत्पन्न हो, सम्यक्त्व मे मलिनता आ जाती हो, चल, मल, अगाढदोष उत्पन्न हो जाते हो, वह सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय) है। जिसके उदय से जीव को तत्त्वो के यथार्थ स्वरूप की रुचि ही न हो, अर्थात्—तत्त्वार्थ के अश्रद्धान के रूप मे वेदा जाए उसे मिथ्यात्वमोहनीय कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को तत्त्व (यथार्थ) के प्रति या जिन प्रणीत तत्त्व मे रुचि या अरुचि अथवा श्रद्धा या अश्रद्धा न होकर मिश्र स्थिति रहे, उसे सम्यक्त्व-मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) या मिश्रमोहनीय कहते हैं।

(५) चारित्रमोहनीयकर्म भेद और स्वरूप—चारित्रमोहनीयकर्म के मुख्य दो भेद हैं—कषाय-वेदनीय (मोहनीय) और नोकषायवेदनीय (मोहनीय)। कषायवेदनीय—जो कर्म क्रोध, मान, माया और लोभ के रूप मे वेदा जाता हो, उसे कषायवेदनीय कहते हैं। कषाय का लक्षण विशेषावश्यक भाष्य मे इस प्रकार कहा गया है—जो आत्मा के गुणों को कषे—नष्ट करे अथवा कष यानी जन्म-मरणरूप ससार, उसकी आय अर्थात् प्राप्ति जिससे हो, उसे कषाय कहते हैं। कषाय के क्रोध, मान,

---

१ (क) कर्मग्रन्थ भाग १, (मरुधरकेसरीव्याख्या), पृ ६५-६६
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ २४२

नरकादि गतियो मे रहना पडता है। बाधी हुई आयु भोग लेने पर ही उस शरीर से छुटकारा मिलता है। आयुकर्म का कार्य जीव को सुख-दुःख देना नही है, अपितु नियत अवधि तक किसी एक शरीर मे बनाये रखने का है।[1] इसका स्वभाव हडि (खोडा-बेडी) के समान है।

नामकर्म स्वरूप, प्रकार और लक्षण—जिस कर्म के उदय से जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति प्राप्त करके अच्छी-बुरी विविध पर्यायें प्राप्त करता है अथवा जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायो का अनुभव करे या शरीर आदि बने, उसे नामकर्म कहते हैं। नामकर्म के अपेक्षा-भेद से १०३, ९३ अथवा ४२ या किसी अपेक्षा से ६७ भेद हैं। प्रस्तुत सूत्रो मे नामकर्म के ४२ भेद कहे गए हैं, जिनका मूलपाठ मे उल्लेख है। इनका लक्षण इस प्रकार है—

(१) **गति-नामकर्म**—जिसके उदय से आत्मा मनुष्यादि गतियो मे जाए अथवा नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य या देव की पर्याय प्राप्त करे। नारकत्व आदि पर्यायरूप परिणाम को गति कहते हैं। गति के ४ भेद हैं,—नरकगति आदि। इन गतियो को उत्पन्न करने वाला नामकर्म गतिनाम-कर्म है।

(२) **जाति-नामकर्म**—एकेन्द्रियादि जीवो की एकेन्द्रियादि के रूप मे जो समान परिणति (एकाकार अवस्था) उत्पन्न होती है, उसे जाति कहते हैं। स्पर्शन, रसन आदि पाच इन्द्रियो मे से जीव एक, दो, तीन, चार या पाच इन्द्रिया प्राप्त करता है और एकेन्द्रियादि कहलाता है, इस प्रकार की जाति का जो कारणभूत कर्म है, उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

(३) **शरीर-नामकर्म**—जो शीर्ण (क्षण-क्षण मे क्षीण) होता रहता है, वह शरीर कहलाता है। शरीरो का जनक कर्म—शरीरनामकर्म है अर्थात जिस कर्म के उदय से औदारिक, वैक्रिय आदि शरीरो की प्राप्ति हो, अर्थात् ये शरीर बनें। शरीरो के भेद से शरीरनामकर्म के ५ भेद हैं।

(४) **शरीर-अगोपाग-नामकर्म**—मस्तिष्क आदि शरीर के ८ अग होते हैं। कहा भी है—'सीसमुरोयर पिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठ गा।' अर्थात् सिर, उर, उदर, पीठ, दो भुजाएँ और दो जाघ, ये शरीर के आठ अग हैं। इन अगो के अगुली आदि अवयव उपाग कहलाते हैं और उनके भी अग—जैसे अगुलियो के पव आदि अगोपाग है। जिस कर्म के उदय से अग, उपाग आदि के रूप मे पुद्गलो का परिणमन होता हो, अर्थात् जो कर्म अगोपागो का कारण हो, वह अगोपाग नामकर्म है। यह कर्म तीन ही प्रकार का है, क्योंकि तैजस और कार्मणशरीर मे अगोपाग नही होते।

(५) **शरीरबन्धन-नामकर्म**- जिसके द्वारा शरीर बधे, अर्थात् जो कर्म पूर्वगृहीत औदारिकादि शरीर और वर्तमान मे ग्रहण किये जाने वाले औदारिकादि पुद्गलो का परस्पर मे, अर्थात् तैजस आदि पुद्गलो के साथ सम्बन्ध उत्पन्न करे, वह शरीरबन्धन-नामकर्म है।

(६) **शरीर-सहनन-नामकर्म**—हड्डियो की विशिष्ट रचना सहनन कहलाती है। सहनन औदारिक शरीर मे ही हो सकता है, अन्य शरीरो मे नही, क्योंकि अन्य शरीर हड्डियों वाले नही होते। अत जिस कर्म के उदय से शरीर मे हड्डियो की सधिया सुदृढ होती हैं, उसे सहनन-नामकर्म कहते हैं।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५ पृ २५१
(ख) कर्मग्रन्थ भा १ (मरुधरकेसरीव्याख्या), पृ ९४

वक्रता कठोर परिश्रम व अनेक उपायो से दूर होती है, वसे ही जो माया-परिणाम अत्यन्त परिश्रम व उपाय से दूर हो। **प्रत्याख्यानावरण माया**—चलते हुए बल की मूत्ररेखा की वक्रता के समान जो माया कुटिल परिणाम वाली होने पर कुछ कठिनाई से दूर होती है। **सज्वलन माया**—बास के छिलके का टेढापन जैसे बिना श्रम के सीधा हो जाता है, वैसे ही जो मायाभाव आसानी से दूर हो जाता है।

अनन्तानुबन्धी लोभ—जैसे किरमिची रग किसी भी उपाय से नही छूटता, वसे ही जिस लोभ के परिणाम उपाय करने पर भी न छूटते हो। **अप्रत्याख्यानावरण लोभ**—गाड़ी के पहिये की कीचड के समान अतिकठिनता से छूटने वाला लोभ का परिणाम। **प्रत्याख्यानावरण लोभ**—काजल के रग के समान इस लोभ के परिणाम कुछ प्रयत्न से छूटते हैं। **सज्वलनलोभ**—सहज ही छूटने वाले हल्दी के रग के समान इस लोभ के परिणाम होते हैं।

नोकषायवेदनीय—जो कषाय तो न हो, किन्तु कषाय के उदय के साथ जिसका उदय होता है, अथवा कषायो को उत्तेजित करने मे सहायक हो। जो स्त्रीवेद आदि नोकषाय के रूप मे वेदा जाता है, वह नोकषायवेदनीय है। नोकषायवेदनीय के ९ भेद हैं—

स्त्रीवेद—जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो। **पुरुषवेद**—जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा हो। **नपुसकवेद**—जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुष दोनो के साथ रमण करने की इच्छा हो। इन तीनो वेदो की कामवासना क्रमश करीषाग्नि (उपले की आग), तृणाग्नि और नगरदाह के समान होती है। **हास्य**—जिस कर्म के उदय से कारण-वश या बिना कारण के हसी आती है या दूसरो को हसाया जाता हो। **रति अरति**—जिस कर्म के उदय से सकारण या अकारण पदार्थों के प्रति राग—प्रीति या द्वेष—अप्रीति उत्पन्न हो। **शोक**—जिस कर्म के उदय से सकारण या अकारण शोक हो। **भय**—जिस कर्म के उदय से कारणवशात् या बिना कारण सात भयो मे से किसी प्रकार का भय उत्पन्न हो। **जुगुप्सा**—जिस कर्म के उदय से बीभत्स—घृणाजनक पदार्थों को देख कर घृणा पैदा होती है।[1]

आयुकर्म स्वरूप, प्रकार और विशेषार्थ—जिस कर्म के उदय से जीव देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारक के रूप मे जीता है और जिसका क्षय होने पर उन रूपो का त्याग कर मर जाता है, उसे आयुकर्म कहते हैं। आयुकर्म के चार भेद हैं, जो मूलपाठ मे अकित हैं। आयुकर्म का स्वभाव कारागार के समान है। जसे अपराधी को छूटने की इच्छा होने पर भी अवधि पूरी हुए बिना कारागार मे छुटकारा नही मिलता, इसी प्रकार आयुकर्म के कारण जीव को निश्चित अवधि तक

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भाग ५, पृ २४३ से २५१ तक

(ख) कर्मग्रन्थ भाग-१ (मरुधरकेसरीव्याख्या) पृ ५५-७०, ८१ से ९३ तक

(i) कम्म कसा भवो वा कसमातोसि कसायातो।
कसमाययति व जनो गमयति कस कसायत्ति ॥ —विशेषावश्यकभाष्य-१२२७

(ii) अनन्तानुबन्धी सम्यग्दर्शनोपघाती। तस्योदयाद्धि सम्यग्दर्शन नोत्पद्यते। पूर्वोत्पन्नमपि च प्रतिपतति।
सज्वलनकषायोदयाद्यथाख्यातचारित्रलाभो न भवति।—तत्त्वार्थसूत्र भाष्य, अ ८ सू १०

(iii) कषाय-सहवर्तित्वात् कषाय-प्रेरणादपि।
हास्यादिनवकस्योक्ता नो कषाय-कषायता ॥ १ ॥ —कर्मग्रन्थ, भा १, पृ ८४

नरकादि गतियो मे रहना पडता है । बाधी हुई आयु भोग लेने पर ही उस शरीर से छुटकारा मिलता है । आयुकम का काय जीव को सुख-दु ख देना नही है, अपितु नियत अवधि तक किसी एक शरीर मे बनाये रखने का है ।[1] इसका स्वभाव हडि (खोडा-बेडी) के समान है ।

नामकम स्वरूप, प्रकार और लक्षण—जिस कम के उदय से जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति प्राप्त करके अच्छी-बुरी विविध पर्यायें प्राप्त करता है अथवा जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायो का अनुभव करे या शरीर आदि बने, उसे नामकम कहते हैं । नामकर्म के अपेक्षा-भेद से १०३, ९३ अथवा ४२ या किसी अपेक्षा से ६७ भेद हैं । प्रस्तुत सूत्र मे नामकम के ४२ भेद कहे गए हैं, जिनका मूलपाठ मे उल्लेख है । इनका लक्षण इस प्रकार है—

(१) **गति-नामकम**—जिसके उदय से आत्मा मनुष्यादि गतियो मे जाए अथवा नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य या देव की पर्याय प्राप्त करे । नारकत्व आदि पर्यायरूप परिणाम को गति कहते हैं । गति के ४ भेद है,—नरकगति आदि । इन गतियो को उत्पन्न करने वाला नामकर्म गतिनाम-कर्म है ।

(२) **जाति-नामकर्म**—एकेन्द्रियादि जीवो की एकेन्द्रियादि के रूप मे जो समान परिणति (एकाकार अवस्था) उत्पन्न होती है, उसे जाति कहते हैं । स्पर्शन, रसन आदि पाच इन्द्रियो मे से जीव एक, दो, तीन, चार या पाच इन्द्रिया प्राप्त करता है और एकेन्द्रियादि कहलाता है, इस प्रकार की जाति का जो कारणभूत कम है, उसे जातिनामकम कहते हैं ।

(३) **शरीर-नामकर्म**—जो शीण (क्षण-क्षण मे क्षीण) होता रहता है, वह शरीर कहलाता है । शरीरो का जनक कर्म – शरीरनामकम है अर्थात् जिस कम के उदय से औदारिक, वैक्रिय आदि शरीरो की प्राप्ति हो, अर्थात् ये शरीर बनें । शरीरा के भेद से शरीरनामकम के ५ भेद हैं ।

(४) **शरीर-अगोपाग-नामकम**—मस्तिष्क आदि शरीर के ८ अग होते हैं । कहा भी है—'सीसमुरोयर पिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठ गा ।' अर्थात् सिर, उर, उदर, पीठ, दो भुजाएँ और दो जाघ, ये शरीर के आठ अग हैं । इन अगो के अगुली आदि अवयव उपाग कहलाते हैं और उनके भी अग—जसे अगुलियो के पव आदि अगोपाग हैं । जिस कम के उदय से अग, उपाग आदि के रूप मे पुद्गलो का परिणमन होता हो, अर्थात् जो कम अगोपागो का कारण हो, वह अगोपाग नामकम है । यह कम तीन ही प्रकार का है, क्योकि तैजस और कामणशरीर मे अगोपाग नही होते ।

(५) **शरीरबन्धन-नामकर्म**– जिसके द्वारा शरीर बधे, अर्थात् जो कम पूवगृहीत औदारिकादि शरीर और वतमान मे ग्रहण किये जाने वाले औदारिकादि पुद्गलो का परस्पर मे, अर्थात् तजस आदि पुद्गलो के साथ सम्बन्ध उत्पन्न करे, वह शरीरबन्धन-नामकम है ।

(६) **शरीर-सहनन-नामकर्म**—हड्डियो की विशिष्ट रचना सहनन कहलाती है । सहनन औदारिक शरीर मे ही हो सकता है, अन्य शरीरो मे नही, क्योकि अन्य शरीर हड्डियो वाले नही होते । अत जिस कम के उदय से शरीर मे हड्डियो की सधियां सुदृढ होती हैं, उसे सहनन-नामकर्म कहते हैं ।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा १ पृ २४१
(ख) कर्मग्रन्थ, भा १ (मरुधरकेसरीव्याख्या) पृ ९४

(७) सघात-नामकम—जो औदारिकशरीर आदि के पुद्गलो को एकत्रित करता है अथवा जो शरीरयोग्य पुद्गलो को व्यवस्थित रूप से स्थापित करता है, उसे सघातनामकम कहते हैं। इसके ५ भेद हैं।

(८) सस्थान नामकर्म—सस्थान का अथ है—आकार। जिस कम मे उदय से गृहीत, सघातित और बद्ध औदारिक आदि पुद्गलो के शुभ या अशुभ आकार बनते हैं, वह सस्थान-नामकम है। इसके ६ भेद हैं।

(९) वण-नामकर्म—जिस कम के उदय से शरीर के काले, गोरे, भूरे आदि रग होते हैं, अथवा जो कम शरीर मे वर्णों का जनक हो, वह वण-नामकम है। इसके भी ५ भेद हैं।

(१०) गन्ध-नामकम—जिस कर्म के उदय से शरीर मे अच्छी या बुरी गध हो अर्थात् शुभाशुभ गध का कारणभूत कर्म गन्धनामकम है।

(११) रस-नामकम—जिस कम के उदय से शरीर मे तिक्त, मधुर आदि शुभ अशुभ रसो की उत्पत्ति हो, अर्थात् यह रसोत्पादन मे निमित्त कम है।

(१२) स्पश-नामकम—जिस कम के उदय से शरीर का स्पश ककश, मृदु, स्निग्ध, रूक्ष आदि हो, अर्थात् स्पश का जनक कम स्पशनामकम है।

(१३) अगुरुलघु-नामकम—जिस कम के उदय से जीवो के शरीर न तो पाषाण के समान गुरु (भारी) हो और न हो रूई के समान लघु (हलके) हो, वह अगुरुलघु-नामकम है।

(१४) उपघात-नामकर्म—जिस कम के उदय से अपना शरीर अपने ही अवयवो से उपहत—बाधित होता है, वह उपघात-नामकम कहलाता है। जसे—चोरदन्त, प्रतिजिह्वा (पडजीभ) आदि। अथवा स्वय तयार किये हुए उद्बन्धन (फासी), भृगुपात आदि से अपने ही शरीर को पीडित करने वाला कम उपघातनामकम है।

(१५) पराघात-नामकम—जिस कर्म के उदय से दूसरा प्रतिभाशाली, ओजस्वी, तेजस्वी जन भी पराजित या हतप्रभ हो जाता है, दब जाता है, उसे पराघातनामकम कहते हैं।

(१६) आनुपूर्वी-नामकर्म—जिस कम के उदय से जीव दो, तीन या चार समय-प्रमाण विग्रहगति से कोहनी, हल या गोमूत्रिका के आकार से भवान्तर मे अपने नियत उत्पत्तिस्थान पर पहुच जाता है, उसे आनुपूर्वीनामकम कहते हैं।

(१७) उच्छ्वास-नामकम—जिस कम के उदय से जीव को उच्छ्वास-निश्वासलब्धि की प्राप्ति होती है, वह उच्छ्वासनामकम है।

(१८) आतप-नामकम—जिस कम के उदय से जीव का शरीर स्वरूप से उष्ण न होकर भी उष्णरूप प्रतीत होता हो, अथवा उष्णता उत्पन्न करता हो, वह आतपनामकम कहलाता है।

(१९) उद्योत-नामकम—जिस कर्म के उदय से प्राणियो के शरीर उष्णतारहित प्रकाश से युक्त होते हैं, वह उद्योतनामकम है। जैसे—रत्न, औषधि, चन्द्र, नक्षत्र, तारा विमान आदि।

(२०) विहायोगति-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल (गति) हाथी, बल आदि

की चाल के समान शुभ हो अथवा ऊँट, गधे आदि की चाल के समान अशुभ हो, उसे विहायोगति-नामकर्म कहते हैं।

(२१) त्रस नामकर्म—जो जीव त्रास पाते हैं, गर्मी आदि से सतप्त होकर छायादि का सेवन करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, ऐसे द्वीन्द्रियादि जीव 'त्रस' कहलाते हैं। जिस कर्म के उदय से त्रस पर्याय की प्राप्ति हो वह त्रसनामकर्म है।

(२२) स्थावर-नामकर्म—जो जीव सर्दी, गर्मी आदि से पीडित होने पर भी उस स्थान को त्यागने में समर्थ न हो, वह स्थावर कहलाता है। जैसे पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीव। जिस कर्म के उदय से स्थावर-पर्याय प्राप्त हो, उसे स्थावरनामकर्म कहते हैं।

(२३) सूक्ष्म-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से बहुत-से प्राणियों के शरीर समुदित होने पर भी छद्मस्थ को दृष्टिगोचर न हो, वह सूक्ष्मनामकर्म है। इस कर्म के उदय से जीव अत्यन्त सूक्ष्म होता है।

(२४) बादर-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को बादर (स्थूल) काय की प्राप्ति हो, अथवा जो कर्म शरीर में बादर-परिणाम को उत्पन्न करता है, वह बादर-नामकर्म है।

(२५) पर्याप्त नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव अपने योग्य आहारादि पर्याप्तियों को पूर्ण करने में समर्थ होता है, अर्थात आहारादि के पुद्‌गलों को ग्रहण करके उन्हें आहारादि के रूप में परिणत करने की कारणभूत आत्मा की शक्ति से सम्पन्न हो, वह पर्याप्तनामकर्म है।

(२६) अपर्याप्त-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव अपने योग्य पर्याप्तियां पूर्ण न कर सके, वह अपर्याप्त-नामकर्म है।

(२७) साधारणशरीर-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक ही शरीर हो, जैसे—निगोद के जीव।

(२८) प्रत्येकशरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से प्रत्येक जीव का शरीर पृथक्-पृथक् हो।

(२९) स्थिर-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर, अस्थि, दांत आदि शरीर के अवयव स्थिर हों, उसे स्थिर-नामकर्म कहते हैं।

(३०) अस्थिर-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीभ आदि शरीर के अवयव अस्थिर (चपल) हों।

(३१) शुभ नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाभि से ऊपर के अवयव शुभ हों।

(३२) अशुभ-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाभि से नीचे के चरण आदि शरीरावयव अशुभ हों, वह अशुभनामकर्म है। पर से स्पर्श होने पर अप्रसन्नता होती है, यही अशुभत्व का लक्षण है।

(३३) सुभग-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से किसी का उपकार न करने पर और किसी प्रकार का सम्बन्ध न होने पर भी व्यक्ति सभी को प्रिय लगता हो, वह सुभगनामकर्म है।

(३४) दुर्भग-नामकर्म जिस कर्म के उदय से उपकारक होने पर भी जीव लोक में अप्रिय हो, वह दुर्भगनामकर्म है।

(३५) सुस्वर-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर मधुर और सुरीला हो, श्रोताओं के लिए प्रमोद का कारण हो, वह सुस्वरनामकर्म है। जैसे—कोयल का स्वर।

(३६) दुःस्वर-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर कर्कश और फटा हुआ हो, उसका स्वर श्रोताओं की अप्रीति का कारण हो। जैसे—कौए का स्वर।

(३७) आदेय-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव जो कुछ भी कहे या करे, उसे लोग प्रमाणभूत मानें, स्वीकार कर लें, उसके वचन का आदर करें, वह आदेयनामकर्म है।

(३८) अनादेय नामकर्म—जिस कर्म के उदय से समीचीन भाषण करने पर भी उसके वचन ग्राह्य या मान्य न हों, लोग उसके वचन का अनादर करें, वह अनादेय-नामकर्म है।

(३९) यशःकीर्ति-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से लोक में यश और कीर्ति फैले। शौर्य, पराक्रम, त्याग, तप आदि के द्वारा उपार्जित ख्याति के कारण प्रशंसा होना, यशःकीर्ति है। अथवा सब दिशाओं में प्रशंसा फैले उसे कीर्ति और एक दिशा में फैले उसे यश कहते हैं।

(४०) अयशःकीर्ति-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से सर्वत्र अपकीर्ति हो, बुराई या बदनामी हो, मध्यस्थजनों के भी अनादर का पात्र हो।

(४१) निर्माण-नामकर्म—जिस कर्म के उदय से प्राणियों के शरीर में अपनी अपनी जाति के अनुसार अंगोपांगों का यथास्थान निर्माण हो, उसे निर्माणनामकर्म कहते हैं।

(४२) *तीर्थंकर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से चौंतीस अतिशय और पैंतीस वाणी के* गुण प्रकट हों, वह तीर्थंकरनामकर्म कहलाता है।

नामकर्म के भेदों के प्रभेद—गतिनामकर्म के ४, जातिनामकर्म के ५, शरीरनामकर्म के ५, शरीरांगोपांगनामकर्म के ३, शरीरबन्धननामकर्म के ५, शरीरसंघातननामकर्म के ५, संहनननामकर्म के ६, संस्थाननामकर्म के ६, वर्णनामकर्म के ५, गन्धनामकर्म के २, रसनामकर्म के ५, स्पर्शनामकर्म के ८, अगुरुलघुनामकर्म का एक, उपघात, पराघात नामकर्म का एक एक, आनुपूर्वी नामकर्म के चार तथा आतपनाम, उद्योतनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, सूक्ष्मनाम, बादरनाम, पर्याप्त नाम, अपर्याप्तनाम, साधारणशरीरनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्ति नाम, निर्माणनाम और तीर्थंकरनामकर्म के एक एक भेद हैं। विहायोगतिनामकर्म के दो भेद हैं।[1]

गोत्रकर्म : स्वरूप और प्रकार—जिस कर्म के उदय से जीव उच्च अथवा नीच कुल में जन्म लेता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं। जिस कर्म के उदय से लोक में सम्मानित, प्रतिष्ठित जाति, कुल आदि की प्राप्ति होती है तथा उत्तम बल, तप, रूप, ऐश्वर्य, सामर्थ्य, श्रुत, सम्मान उत्थान, आसनप्रदान, अंजलिकरण आदि की प्राप्ति होती है, वह उच्चगोत्रकर्म है। जिस कर्म के उदय से लोक में निन्दित कुल, जाति की प्राप्ति होती हो, उसे नीचगोत्रकर्म कहते हैं। सुघट और मद्यघट

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा. १, पृ. ९८ से १०३ तक
(ख) वही, भा. ५ पृ. २५२ से २५७ तक

बनाने वाले कुम्भकार के समान गोत्रकर्म का स्वभाव है। उच्चगोत्र और नीचगोत्र के क्रमश आठ-आठ भेद हैं।[1]

अन्तरायकर्म स्वरूप, प्रकार और लक्षण—जिस कर्म के उदय से जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य (पराक्रम) मे अन्तराय (विघ्न-बाधा) उत्पन्न हो, उसे अन्तरायकर्म कहते हैं। इसके ५ भेद हैं, इनके लक्षण क्रमश इस प्रकार हैं—

दानान्तराय—दान की सामग्री पास मे हो, गुणवान पात्र दान लेने के लिए सामने हो, दान का फल भी ज्ञात हो, दान की इच्छा भी हो, फिर भी जिस कर्म के उदय से जीव दान न दे पाये उसे 'दानान्तरायकर्म' कहते हैं।

लाभान्तराय—दाता उदार हो, देय वस्तु भी विद्यमान हो, लेने वाला भी कुशल एव गुणवान् पात्र हो, फिर भी जिस कर्म के उदय से उसे इष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो, उसे 'लाभान्तरायकर्म' कहते हैं।

भोगान्तराय—जो पदार्थ एक बार भोगे जाएँ उन्हे 'भोग' कहते हैं जैसे—भोजन आदि। भोग के विविध साधन होते हुए भी जीव जिस कर्म के उदय से भोग्य वस्तुओ का भोग (सेवन) नही कर पाता, उसे '**भोगान्तरायकर्म**' कहते हैं।

उपभोगान्तराय—जो पदार्थ बार-बार भोगे जाएँ, उन्हे उपभोग कहते हैं। जैसे—मकान, वस्त्र, आभूषण आदि। उपभोग की सामग्री होते हुए भी जिस के उदय से जीव उस सामग्री का उपभोग न कर सके, उसे '**उपभोगान्तरायकर्म**' कहते हैं।

वीर्यान्तराय—वीर्य का अर्थ है पराक्रम, सामर्थ्य, पुरुषार्थ। नीरोग, शक्तिशाली, कार्यक्षम एव युवावस्था होने पर भी जिस कर्म के उदय से जीव अल्पप्राण, मन्दोत्साह, आलस्य, दौर्बल्य के कारण कार्यविशेष मे पराक्रम न कर सके शक्ति-सामर्थ्य का उपयोग न कर सके, उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं।

इस प्रकार आठो कर्मों के भेद प्रभेदो का वर्णन सू १६८७ से १६९६ तक है।[2]

कर्मप्रकृतियो की स्थिति की प्ररूपणा

१६९७ णाणावरणिज्जस्स ण भते ! कम्मस्स केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण तीस सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइ अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो।

[१६९७ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१६९७ उ] गौतम ! (उसकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीस कोडा-

---

१ (क) वही, भा ५ पृ २७५ ७६
(ख) कर्मग्रन्थ, भा १, (मरु व्या) पृ १५१

२ (क) वही भा ५ पृ १५१
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनीटीका), भा ५, पृ २७३-७८

कोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। सम्पूर्ण कर्मस्थिति (काल) में से अबाधाकाल को कम करने पर (शेष काल) कर्मनिषेक का काल है।

१६९८ [१] निद्दापंचयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो।

[१६९८-१ प्र.] भगवन् ! निद्रापंचक (दर्शनावरणीय) कर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१६९८-१ उ.] गौतम ! (उसकी स्थिति) जघन्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम, सागरोपम के $\frac{3}{7}$ भाग की है और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है तथा (सम्पूर्ण) कर्मस्थिति (काल) में से अबाधाकाल को कम करने पर (शेष) कर्मनिषेककाल है।

[२] दंसणचउक्कस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा०।

[१६९८-२ प्र.] भगवन् ! दर्शनचतुष्क (दर्शनावरणीय) कर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१६९८-२ उ.] गौतम ! (उसकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। (निषेककाल पूर्ववत् है।)

१६९९ [१] सातावेयणिज्जस्स इरियावहियबंधगं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया, संपराइयबंधगं पडुच्च जहण्णेणं बारस मुहुत्ता, उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस य वाससयाइं अबाहा०।

[१६९९-१] सातावेदनीयकर्म की स्थिति ईर्यापथिक-बन्धक की अपेक्षा जघन्य उत्कृष्ट-भेदरहित दो समय की है तथा साम्परायिक-बन्धक की अपेक्षा जघन्य बारह मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है। (निषेककाल पूर्ववत् है।)

[२] असायावेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगा, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा०।

[१६९९-२] असातावेदनीयकर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग की (अर्थात् $\frac{3}{7}$ भाग की) है और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है (निषेककाल पूर्ववत् है)।

१७०० [१] सम्मत्तवेयणिज्जस्स पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

[१७००-१ प्र] भगवन्! सम्यक्त्व-वेदनीय (मोहनीय) की स्थिति कितने काल की है?

[१७००-१ उ] गौतम! उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम की है।

[२] मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेण सागरोवम पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेण सत्तरिं कोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया०।

[१७००-२] मिथ्यात्व-वेदनीय (मोहनीय) की जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम एक सागरोपम की है और उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल सात हजार वर्ष का है तथा कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर (शेष) कर्मनिषेककाल है।

[३] सम्मामिच्छत्तवेदणिज्जस्स जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[१७००-३] सम्यग्-मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[४] कसायबारसगस्स जहण्णेण सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइ-भागेण ऊणया, उक्कोसेण चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तालीस वाससयाइं अबाहा, जाव णिसेगो।

[१७००-४] कषाय द्वादशक (आदि के बारह कषायों) की जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम सागरोपम के सात भागों में से चार भाग की (अर्थात् ४/७ भाग की) है और उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल चालीस सौ (चार हजार) वर्ष का है तथा कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर जो शेष बचे, वह निषेककाल है।

[५] कोहसंजलणाए पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण दो मासा, उक्कोसेण चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तालीसं वाससयाइं जाव णिसेगो।

[१७००-५ प्र] संज्वलन क्रोध की स्थिति सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७००-५ उ] गौतम! (संज्वलन-क्रोध की स्थिति) जघन्य दो मास की है और उत्कृष्ट चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल चालीस सौ वर्ष (चार हजार वर्ष) का है, यावत् निषेक अर्थात्—कर्मस्थिति (काल) में अबाधाकाल कम करने पर (शेष) कर्मनिषेककाल समझना।

[६] माणसंजलणाए पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण मासं, उक्कोसेण जहा कोहस्स।

[१७००-६ प्र] मान संज्वलन की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

[१७००-६ उ] गौतम ! उसकी स्थिति जघन्य एक मास की है और उत्कृष्ट क्रोध की स्थिति के समान है।

[७] मायासंजलणाए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अद्धमासं, उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

[१७००-७ प्र] माया-सञ्ज्वलन की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न है।

[१७००-७ उ] गौतम ! उसकी स्थिति जघन्य अर्धमास की है और उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के बराबर है।

[८] लोभसंजलणाए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

[१७००-८ प्र] लोभ-सञ्ज्वलन की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

[१७००-८ उ] गौतम ! इसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के समान, इत्यादि पूर्ववत्।

[९] इत्थियेदस्स णं० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयं, उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७००-९ प्र] स्त्रीवेद की स्थिति-सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७००-९ उ] गौतम ! उसकी जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम सागरोपम के सात भागों में से डेढ भाग ($\frac{1}{7}$\" भाग) की है और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

[१०] पुरिसवेयस्स णं० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ संवच्छराइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा, जाव निसेगो।

[१७००-१० प्र] पुरुषवेद की स्थिति-सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७००-१० उ] इसकी जघन्य स्थिति आठ संवत्सर (वर्ष) की है और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल दस सौ (एक हजार वर्ष) का है। निषेककाल पूर्ववत् जानना।

[११] नपुंसगवेयस्स णं० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दुण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसति वाससयाइं अबाहा०।

[१७००-११ प्र] नपुंसकवेद की स्थिति-सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७००-११ उ] गौतम ! इसकी स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम, सागरोपम के $\frac{2}{7}$ भाग की है और उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[१२] हास रतीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स एक्कं सत्तभाग पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणं, उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७००-१२ प्र] हास्य और रति की स्थिति के विषय मे पृच्छा है।

[१७००-१२ उ] गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{1}{7}$ भाग की है और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है तथा इसका अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है।

[१३] अरइ-भय-सोग-दुगुंछाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणया, उक्कोसेण वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसति वाससयाइं अबाहा०।

[१७००-१३ प्र] भगवन् ! अरति, भय, शोक और जुगुप्सा (मोहनीयकर्म) की स्थिति कितने काल की है ?

[१७००-१३ उ] गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{2}{7}$ भाग की है और उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इनका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

१७०१ [१] णेरइयाउयस्स णं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीतिभागमब्भइयाइं।

[१७०१-१ प्र] भगवन् ! नरकायु की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१७०१-१ उ] गौतम ! नरकायु की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त-अधिक दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट करोड पूर्व के तृतीय भाग अधिक तेतीस सागरोपम की है।

[२] तिरिक्खजोणियाउअस्स पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडितिभागमब्भहियाइं।

[१७०१-२ प्र] इसी प्रकार तिर्यञ्चायु की स्थिति सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७०१-२ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि के त्रिभाग अधिक तीन पल्योपम की है।

[३] एवं मणूसाउअस्स वि।

[१७०१-३] इसी प्रकार मनुष्यायु की स्थिति के विषय मे जानना चाहिए।

[४] देवाउअस्स जहा णेरइयाउअस्स ठिति त्ति।

[१७०१-४] देवायु की स्थिति नरकायु की स्थिति के समान जानना चाहिए।

१७०२ [१] णिरयगतिणामए णं भंते ! कम्मस्स० पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगा, उक्कोसेण वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा० ।

[१७०२-१ प्र] भगवन् ! नरकगति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-१ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम के 2/7 भाग की है और उत्कृष्ट वीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल वीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[२] तिरियगतिणामए जहा णपुंसगवेदस्स (सु १७०० [११]) ।

[१७०२-२] तिर्यञ्चगति-नामकर्म की स्थिति (सू १७००-११ में उल्लिखित) नपुंसकवेद की स्थिति के समान है।

[३] मणुयगतिणामए पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेण पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस य वाससयाइं अबाहा० ।

[१७०२-३ प्र] भगवन् ! मनुष्यगति नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-३ उ] गौतम ! इसकी स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के 1½/7 भाग की है और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

[४] देवगतिणामए णं० पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एक्कं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेण जहा पुरिसवेयस्स [सु १७०० [१०]) ।

[१७०२-४ प्र] भगवन् ! देवगति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-४ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र-सागरोपम के 1/7 भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति (१७००-१० में उल्लिखित) पुरुषवेद की स्थिति के तुल्य है।

[५] एगिंदियजाइणामए पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा० ।

[१७०२-५ प्र] एकेन्द्रिय-जाति-नामकर्म ... के विषय में ...

[१७०२-५ उ] गौतम ! इसकी जघ... के 2/7 भाग की है और उत्कृष्ट वीस कोडाकोडी ... इसका ... सौ (दो हजार) वर्ष का है। (कर्म-स्थिति में से ...

[६] बेइंदियजातिणामए ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागा पलिग्रोवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-६ प्र] द्वीन्द्रिय-जाति-नामकर्म की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

[१७०२-६ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{9}{35}$ वे भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है। [कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म-निषेक-काल है।]

[७] तेइंदियजाइणामए ण जहण्णेणं एवं चेव, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-७ प्र] त्रीन्द्रिय-जाति-नामकर्म की स्थिति-सम्बन्धी पृच्छा है।

[१७०२-७ उ] इसकी जघन्य स्थिति पूर्ववत् है। उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।

[८] चउरिंदियजाइणामए ण० पुच्छा।

जहण्णेण सागरोवमस्स नव पणतीसतिभागा पलिग्रोवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणया, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-८ प्र] चतुरिन्द्रिय जाति-नामकर्म की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न है।

[१७०२-८ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{9}{35}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।

[९] पंचेंदियजाइणामए ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिग्रोवमस्स असंखेज्जभागेण ऊणगा, उक्कोसेण वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-९ प्र] भगवन् ! पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१७०२-९ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{2}{7}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[१०] ओरालियसरीरणामए वि एवं चेव।

[१७०२-१०] औदारिक-शरीर-नामकर्म की स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

[११] वेउव्वियसरीरणामए ण भंते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिग्रोवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणया, उक्कोसेण वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-११ प्र] भगवन् ! वक्रिय-शरीर-नामकम की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-११ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के ३ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधा काल बीस वष का है।

[१२] आहारगसरीरणामए जहण्णेण अतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेण वि अतोसागरोवमकोडाकोडीओ।

[१७०२-१२] आहारक शरीर-नामकम की जघन्य स्थिति अन्त सागरोपम कोडाकोडी की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्त सागरोपम कोडाकोडी की है।

[१३] तेया कम्मसरीरणामए जहण्णेण [सागरोवमस्स] दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणया, उक्कोसेण वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-१३] तजस और कार्मण शरीर-नामकम की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ३ भाग की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इनका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[१४] ओरालिय-वेउव्विय आहारगसरीरगोवगणामए तिण्णि वि एव चेव।

[१७०२ १४] औदारिकशरीरागोपाग, वक्रियशरीरागोपाग और आहारकशरीरागोपाग, इन तीनो नामकर्मों की स्थिति भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) है।

[१५] सरीरबधणणामए वि पचण्ह वि एव चेव।

[१७०२-१५] पाचो शरीरबन्धन-नामकर्मों की स्थिति भी इसी प्रकार है।

[१६] सरीरसघायणामए पचण्ह वि जहा सरीरणामए (सु १७०२ [१०-१३]) कम्मस्स ठिति त्ति।

[१७०२-१६] पाचो शरीरसघात-नामकर्मों की स्थिति (सू १७०२-१०-१३ मे उल्लिखित) शरीर-नामकम की स्थिति के समान है।

[१७] वइरोसभणारायसघयणणामए जहा रतिणामए (सु १७०० [१२])।

[१७०२-१७] वज्रऋषभनाराचसहनन-नामकम की स्थिति (सू १७००-१२ मे उल्लिखित) रति नामकम की स्थिति के समान है।

[१८] उसभणारायसघयणणामए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स छ पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणया, उक्कोसेण बारस सागरोवमकोडाकोडीओ, बारस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-१८ प्र] भगवन् ! ऋषभनाराचसहनन-नामकम की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१७०२-१८ उ] गौतम ! इस की स्थिति जघन्य पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{५}{३५}$ भाग की है और उत्कृष्ट बारह कोडाकोडी सागरोपम की है तथा इसका अबाधाकाल बारह सौ वर्ष का है।

[१९] णारायसघयणणामए जहण्णेण सागरोवमस्स सत्त पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण चोद्दस सागरोवमकोडाकोडीओ, चोद्दस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-१९] नाराचसहनन-नामकर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{७}{३५}$ भाग की है तथा उत्कृष्ट स्थिति चौदह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल चौदह सौ वर्ष का है।

[२०] अद्धणारायसघयणणामस्स जहण्णेण सागरोवमस्स अट्ठ पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण सोलस सागरोवमकोडाकोडीओ, सोलस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-२०] अर्द्धनाराचसहनन-नामकर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{८}{३५}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति सोलह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल सोलह सौ वर्ष का है।

[२१] खीलियासघयणे ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२ २१ प्र] कीलिकासहनन-नामकर्म की स्थिति के विषय मे प्रश्न है।

[१७०२-२१ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{६}{३५}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।

[२२] सेवट्टसघयणणामस्स पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७०२-२२ प्र] सेवार्त्तसहनन-नामकर्म की स्थिति के विषय में पृच्छा है।

[१७०२-२२ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति वीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल वीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[२३] एव जहा सघयणणामए छ भणिया एव सठाणा वि छ भाणियव्वा।

[१७०२-२३] जिस प्रकार छह सहनननामकर्मों की स्थिति कही, उसी प्रकार छह सस्थान-नामकर्मों की भी स्थिति कहनी चाहिए।

[२४] सुक्किलवण्णनामए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स एग सत्तभाग पलिग्रोवमस्स ग्रसखिज्जइमागेण ऊणग, उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइ ग्रबाहा०।

[१७०२-२४ प्र] शुक्लवण-नामकम की स्थिति-सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७०२-२४ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के ग्रसख्यातवें भाग कम सागरोपम के १/७ भाग की है ग्रौर उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका ग्रबाधा काल दस सौ (एक हजार) वप का है।

[२५] हालिद्दवण्णणामए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स पच ग्रट्ठावीसतिभागा पलिग्रोवमस्स ग्रसखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण ग्रद्धतेरस सागरोवमकोडाकोडीग्रो, ग्रद्धतेरस य वाससयाइ ग्रबाहा०।

[१७०२-२५ प्र] पीत (हारिद्र) वर्ण-नामकम की स्थिति के सम्बन्ध मे पृच्छा है।

[१७०२-२५ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के ग्रसख्यातवें भाग कम सागरोपम के ५/२८ भाग की है ग्रौर उत्कृष्ट स्थिति साढे बारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका ग्रबाधाकाल साढ़े बारह सौ वर्ष का है।

[२६] लोहियवण्णणामए ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स छ ग्रट्ठावीसतिभागा पलिग्रोवमस्स ग्रसखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीग्रो, पण्णरस य वाससयाइं ग्रबाहा०।

[१७०२-२६ प्र] भगवन् ! रक्त (लोहित) वण-नामकम की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-२६ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के ग्रसख्यातवें भाग कम सागरोपम के ६/२८ भाग की है ग्रौर उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका ग्रबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

[२७] णीलवण्णणामए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स सत्त ग्रट्ठावीसतिभागा पलिग्रोवमस्स ग्रसखेज्जइभागेण ऊणया, उक्कोसेण ग्रद्धट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीग्रो, ग्रद्धट्ठारस य वाससयाइ ग्रबाहा०।

[१७०२-२७ प्र] नीलवण-नामकम की स्थिति-विषयक प्रश्न है।

[१७०२-२७ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के ग्रसख्यातवें भाग कम सागरोपम के ७/२८ भाग की है ग्रौर उत्कृष्ट स्थिति साढे सत्तरह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका ग्रबाधाकाल साढे सत्तरह सौ वर्ष का है।

[२८] कालवण्णणामए जहा सेवट्टसघयणस्स (सु १७०२ [२२])।

[१७०२-२८] कृष्णवण-नामकम की स्थिति (सू १७०२-२२ में उल्लिखित) सेवार्तसहनन-नामकम की स्थिति के समान है।

[२९] सुब्भिगंधणामए पुच्छा ।

गोयमा ! जहा सुक्किलवण्णणामस्स (सु १७०२ [२४]) ।

[१७०२-२९ प्र] सुरभिगन्ध-नामकर्म की स्थिति-सम्बन्धी प्रश्न है ।

[१७०२-२९ उ] गौतम ! इसकी स्थिति (सू १७०२-२४ मे उल्लिखित) शुक्लवर्ण-नामकर्म की स्थिति के समान है ।

[३०] दुब्भिगंधणामए जहा सेवट्टसंघयणस्स ।

[१७०२-३०] दुरभिगन्ध-नामकर्म की स्थिति सेवार्त संहनन-नामकर्म (की स्थिति) के समान (जानना चाहिए ।)

[३१] रसाणं महुरादीणं जहा वण्णाणं भणियं (सु १७०२ [२४ २८]) तहेव परिवाडीए भाणियव्वं ।

[१७०२-३१] मधुर आदि रसो की स्थिति का कथन (सू १७०२-२४-२८ मे उल्लिखित) वर्णों की स्थिति के समान उसी क्रम (परिपाटी) से कहना चाहिए ।

[३२] फासा जे अपसत्था तेसिं जहा सेवट्टस्स, जे पसत्था तेसिं जहा सुक्किलवण्णणामस्स (सु १७०२ [२४]) ।

[१७०२-३२] जो अप्रशस्त स्पर्श है, उनकी स्थिति सेवार्तसंहनन की स्थिति के समान तथा प्रशस्त स्पर्श हैं, उनकी स्थिति (सू १७०२-२४ मे उल्लिखित) शुक्लवर्ण-नामकर्म की स्थिति के समान कहनी चाहिए ।

[३३] अगुरुलहुणामए जहा सेवट्टस्स ।

[१७०२-३३] अगुरुलघु-नामकर्म की स्थिति सेवार्तसंहनन की स्थिति के समान जानना चाहिये ।

[३४] एवं उवघायणामए वि ।

[१७०२-३४] इसी प्रकार उपघात-नामकर्म की स्थिति के विषय मे भी कहना चाहिए ।

[३५] पराघायणामए वि एवं चेव ।

[१७०२-३५] पराघात-नामकर्म की स्थिति भी इसी प्रकार है ।

[३६] णिरयाणुपुव्विणामए पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगा, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा० ।

[१७०२-३६ प्र] नरकानुपूर्वी-नामकर्म की स्थिति सम्बन्धी पृच्छा है ।

[१७०२-३६ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम सहस्र सागरोपम के २/७ भाग की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है । बीस सौ (दो हजार) वर्ष का इसका अबाधाकाल है ।

[३७] तिरियाणुपुव्वीए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा, उक्कोसेण वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-३७ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चानुपूर्वी की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-३७ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के २/७ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[३८] मणुयाणुपुव्विणामए णं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेण पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-३८ प्र] मनुष्यानुपूर्वी-नामकर्म की स्थिति के विषय में प्रश्न।

[१७०२-३८ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के १½/७ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

[३९] देवाणुपुव्विणामए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-३९ प्र] भगवन् ! देवानुपूर्वी-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०२-३९ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के १/७ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है।

[४०] उस्सासणामए पुच्छा।

गोयमा ! जहा तिरियाणुपुव्वीए।

[१७०२-४० प्र] भगवन् ! उच्छ्वास-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१७०२-४० उ] गौतम ! इसकी स्थिति तिर्यञ्चानुपूर्वी (सू. १७०२-३७ में उक्त) के समान है।

[४१] आयवणामए वि एवं चेव, उज्जोवणामए वि।

[१७०२-४१] इसी प्रकार आतप-नामकर्म की भी और तथैव उद्योत-नामकर्म की भी स्थिति जाननी चाहिए।

[४२] पसत्थविहायगतिणामए पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं सागरोवमस्स सत्तभागं, उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-४२ प्र] प्रशस्तविहायोगति-नामकर्म की स्थिति के विषय में प्रश्न है।

[१७०२-४२ उ] गौतम! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{1}{7}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। दस सौ (एक हजार) वर्ष का इसका अबाधाकाल है।

[४३] अपसत्थविहायगतिणामस्स पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-४३ प्र] अप्रशस्तविहायोगति-नामकर्म की स्थिति-विषयक प्रश्न है।

[१७०२-४३ उ] गौतम! इसकी जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{2}{7}$ भाग की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

[४४] तसणामए थावरणामए य एवं चेव।

[१७०२-४४] त्रस-नामकर्म और स्थावर-नामकर्म की स्थिति भी इसी प्रकार जाननी चाहिए।

[४५] सुहुमणामए पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-४५ प्र] सूक्ष्म-नामकर्म की स्थिति-सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७०२-४५ उ] गौतम! इसकी स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{9}{35}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।

[४६] बादरणामए जहा अपसत्थविहायगतिणामस्स (सु. १७०२ [४३])।

[१७०२-४६] बादर-नामकर्म की स्थिति (सू. १७०२-४३ में उल्लिखित) अप्रशस्त-विहायोगति की स्थिति के समान जानना चाहिए।

[४७] एवं पज्जत्तगणामए वि। अपज्जत्तगणामए जहा सुहुमणामस्स (सु. १७०२[४५])।

[१७०२-४७] इसी प्रकार पर्याप्त नामकर्म की स्थिति के विषय में जानना चाहिए। अपर्याप्त-नामकर्म की स्थिति (सू. १७०२-४५ में उक्त) सूक्ष्म-नामकर्म की स्थिति के समान है।

[४८] पत्तेयसरीरणामए वि दो सत्तभागा। साहारणसरीरणामए जहा सुहुमस्स।

[१७०२-४८] प्रत्येकशरीर-नामकर्म की स्थिति भी $\frac{2}{7}$ भाग की है। साधारणशरीर-नामकर्म की स्थिति सूक्ष्मशरीर-नामकर्म की स्थिति के समान है।

[४९] थिरणामए एग सत्तभाग । अथिरणामए दो ।

[१७०२-४९] स्थिर-नामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की है तथा अस्थिर-नामकर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की है।

[५०] सुभणामए एगो । असुभणामए दो ।

[१७०२-५०] शुभ-नामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और अशुभ-नामकर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की समझनी चाहिए।

[५१] सुभगणामए एगो । दूभगणामए दो।

[१७०२-५१] सुभग-नामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और दुर्भग-नामकर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की है।

[५२] सूसरणामए एगो । दूसरणामए दो ।

[१७०२-५२] सुस्वर-नामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और दुःस्वर-नामकर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की होती है।

[५३] आएज्जणामए एगो । अणाएज्जणामए दो ।

[१७०२-५३] आदेय-नामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और अनादेय-नामकर्म की $\frac{२}{७}$ भाग की होती है।

[५४] जसोकित्तिणामए जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा० ।

[१७०२-५४] यशःकीर्ति-नामकर्म की स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का होता है।

[५५] अजसोकित्तिणामए पुच्छा ।

गोयमा ! जहा अपसत्थविहायगतिणामस्स (सु १७०२ [४३]) ।

[१७०२-५५ प्र] भगवन् ! अयशःकीर्ति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[१७०२-५५ उ] गौतम ! (सू १७०२-४३ में उल्लिखित) अप्रशस्तविहायोगति-नामकर्म की स्थिति के समान इसकी (जघन्य और उत्कृष्ट) स्थिति जाननी चाहिए।

[५६] एवं णिम्माणणामए वि ।

[१७०२-५६] इसी प्रकार निर्माण-नामकर्म की स्थिति के विषय में भी (जानना चाहिए।)

[५७] तित्थगरणामए णं० पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेण वि अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ ।

[१७०२-५७ प्र] भगवन् ! तीर्थंकरनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[१७०२-५७ उ] गौतम ! इसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अंत कोडाकोडी सागरोपम की कही गई है।

[५८] एवं जत्थ एगो सत्तभागो तत्थ उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडी दस या वाससयाइं अबाहा। जत्थ दो सत्तभागा तत्थ उक्कोसेण वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०२-५८] जहाँ (जघन्य स्थिति सागरोपम के) $\frac{1}{7}$ भाग की हो, वहा उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की और अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का (समझना चाहिए) एवं जहाँ (जघन्य स्थिति सागरोपम के) $\frac{2}{7}$ भाग की हो, वहाँ उत्कृष्ट स्थिति वीस कोडाकोडी सागरोपम की और अबाधाकाल वीस सौ (दो हजार) वर्ष का (समझना चाहिए)।

१७०३ [१] उच्चागोयस्स पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता, उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा०।

[१७०३-१ प्र] भगवन् ! उच्चगोत्र-कर्म की स्थिति कितने काल की कही है ?

[१७०३-१ उ] गौतम ! इसकी स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है तथा इसका अबाधाकाल दस सौ वर्ष का है।

[२] णीयागोयस्स पुच्छा।

गोयमा ! जहा अपसत्थविहायगतिणामस्स।

[१७०३-२ प्र] भगवन् ! नीचगोत्रकर्म की स्थिति सम्बन्धी प्रश्न है।

[१७०३-२ उ] गौतम ! अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म की स्थिति के समान इसकी स्थिति है।

१७०४ अंतराइयस्स णं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो।

[१७०४ प्र] भगवन् ! अन्तरायकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[१७०४ उ] गौतम ! इसकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम की है तथा इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है एवं अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेककाल है।

विवेचन—प्रस्तुत प्रकरण के (सू. १६९७ से १७०४ तक) में ज्ञानावरणीय से लेकर अन्तराय-कर्म तक (उत्तरकर्मप्रकृतियों सहित) की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है। साथ ही अपृष्ट प्रश्न के व्याख्यान के रूप में इन सब कर्मों के अबाधाकाल तथा निषेककाल के विषय में भी कहा गया है।[1]

---

१ पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ३७१ से ३७७ तक

स्थिति—ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों और उनके भेद-प्रभेद सहित सभी कर्मों के अधिकतम और न्यूनतम समय तक आत्मा के साथ रहने के काल को स्थिति कहते हैं। इसे ही कर्मसाहित्य में स्थितिबन्ध कहा जाता है।

कर्म की उत्कृष्ट स्थिति को कर्मरूपतावस्थानरूप स्थिति कहते हैं।

अबाधाकाल—कर्म बंधते ही अपना फल देना प्रारम्भ नहीं कर देते, वे कुछ समय तक ऐसे ही पड़े रहते हैं। अतः कर्म बंधने के बाद अमुक समय तक किसी प्रकार के फल न देने की (फलहीन) अवस्था को अबाधाकाल कहते हैं। निषेककाल—बन्धसमय से लेकर अबाधाकाल पूर्ण होने तक जीव को वह बद्ध कर्म कोई बाधा नहीं पहुँचाता, क्योंकि इस काल में उसके कर्मदलिकों का निषेक नहीं होता, अतः कर्म की उत्कृष्ट स्थिति में से अबाधाकाल को कम करने पर जितने काल की उत्कृष्ट स्थिति रहती है, वह उसके कर्मनिषेक का (कर्मदलिक-निषेकरूप) काल अर्थात्—अनुभवयोग्यस्थिति का काल कहते हैं।[1]

पृष्ठ ५७ से ६१ पर दिये रेखाचित्र में प्रत्येक कर्म की जघन्य-उत्कृष्टस्थिति एवं अबाधाकाल व निषेककाल का अंकन है।

एकेन्द्रिय जीवों में ज्ञानावरणीयादि कर्मों की बंधस्थिति की प्ररूपणा

१७०५. एगिंदिया णं भंते! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति?

[१७०५ प्र.] भगवन्! एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म कितने काल का बांधते हैं?

[१७०५ उ.] गौतम! वे जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{3}{7}$ भाग का बन्ध करते हैं और उत्कृष्टतः पूरे सागरोपम के $\frac{3}{7}$ भाग का बन्ध करते हैं।

१७०६. एवं णिद्दापंचकस्स वि दंसणचउक्कस्स वि।

[१७०६] इसी प्रकार निद्रापंचक और दर्शनचतुष्क का (जघन्य और उत्कृष्ट) बन्ध भी ज्ञानावरणीयपंचक के समान जानना चाहिए।

१७०७. [१] एगिंदिया णं भंते! जीवा सातावेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

[१७०७-१ प्र.] भगवन्! एकेन्द्रिय जीव सातावेदनीयकर्म कितने काल का बांधते हैं?

[१७०७-१ उ.] गौतम! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग का और उत्कृष्ट पूरे सागरोपम के $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग का बन्ध करते हैं।

---

१. (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ३३६-३३७
(ख) कर्मग्रन्थ भाग १, पृ. ६४-६५

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
१	ज्ञानावरणीय (पंचविध)	अन्तमुहूर्त	३० कोडाकोडी सागरोपम	३ हजार वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम
२	दर्शनावरणीय निद्रापंचक	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के ३/७ भाग	,, ,,	,,	,,
३	,, ,, दर्शनचतुष्क	अन्तमुहूर्त	,, ,,	,,	
४	सातावेदनीयकर्म				
	I ईर्यापथिक बन्ध की अपेक्षा से	दो समय	दो समय	—	—
	II साम्परायिक बन्ध की अपेक्षा से	बारह मुहूर्त	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
५	असातावेदनीय कर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	३०	३००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में तीन हजार वर्ष कम
६	सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय)	अन्तमुहूर्त	कुछ अधिक ६६ सागरोपम	—	—
७	मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय)	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम १ सागरोपम	७० कोडाकोडी सागरोपम	७००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ७ हजार वर्ष कम
८	सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय)	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त	—	—
९	कषाय-द्वादशक (प्रारम्भ के १२ कषाय) अनन्ता अप्रत्या प्रत्या	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ४/७ भाग	४० कोडाकोडी सागरोपम	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ४ हजार वर्ष कम
१०	संज्वलनक्रोध (मोहनीय)	दो मास	,, ,,	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ४ हजार वर्ष कम
११	संज्वलनमान ,,	एक मास	,, ,,	,,	,,
१२	संज्वलनमाया ,,	अर्द्ध मास	,, ,,	,,	,,
१३	संज्वलनलोभ ,,	अन्तमुहूर्त	,, ,,		,,
१४	स्त्रीवेद (मोहनीय)	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का १/७ भाग	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
१५	पुरुषवेद ,,	८ वर्ष की	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १००० वर्ष कम
१६	नपुंसकवेद ,,	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम

स्थिति—ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों और उनके भेद-प्रभेद सहित सभी कर्मों के अधिकतम और न्यूनतम समय तक आत्मा के साथ रहने के काल को स्थिति कहते हैं। इसे ही कर्मसाहित्य में स्थितिबन्ध कहा जाता है।

कर्म की उत्कृष्ट स्थिति को कर्मरूपतावस्थानरूप स्थिति कहते हैं।

अबाधाकाल—कर्म बंधते ही अपना फल देना प्रारम्भ नहीं कर देते, वे कुछ समय तक ऐसे ही पड़े रहते हैं। अत कर्म बंधने के बाद अमुक समय तक किसी प्रकार के फल न देने की (फल हीन) अवस्था को अबाधाकाल कहते हैं। निषेककाल—बंधसमय से लेकर अबाधाकाल पूर्ण होने तक जीव को वह बद्ध कर्म कोई बाधा नहीं पहुँचाता, क्योंकि इस काल में उसके कर्मदलियों का निषेक नहीं होता, अत कर्म की उत्कृष्ट स्थिति में से अबाधाकाल को कम करने पर जितने काल की उत्कृष्ट स्थिति रहती है, वह उसके कर्मनिषेक का (कर्मदलिक-निषेकरूप) काल अर्थात्—अनुभवयोग्यस्थिति का काल कहते हैं।[1]

पृष्ठ ५७ से ६१ पर दिये रेखाचित्र में प्रत्येक कर्म की जघन्य-उत्कृष्टस्थिति एवं अबाधाकाल व निषेककाल का अंकन है।

एकेन्द्रिय जीवों में ज्ञानावरणीयादि कर्मों की बंधस्थिति की प्ररूपणा

१७०५ एगिंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति ?

[१७०५ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म कितने काल का बांधते हैं ?

[१७०५ उ] गौतम ! वे जघन्यत पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{3}{7}$ भाग का बंध करते हैं और उत्कृष्टत पूरे सागरोपम के $\frac{3}{7}$ भाग का बन्ध करते हैं।

१७०६ एवं णिद्दापंचकस्स वि दसणचउक्कस्स वि।

[१७०६] इसी प्रकार निद्रापंचक और दर्शनचतुष्क का (जघन्य और उत्कृष्ट) बंध भी ज्ञानावरणीयपंचक के समान जानना चाहिए।

१७०७ [१] एगिंदिया णं भंते ! जीवा सातावेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

[१७०७-१ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव सातावेदनीयकर्म कितने काल का बांधते हैं ?

[१७०७-१ उ] गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग का और उत्कृष्ट पूरे सागरोपम के $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग का बंध करते हैं।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ३३६-३३७
(ख) कर्मग्रन्थ भाग १, पृ ६४-६५

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
१	ज्ञानावरणीय (पंचविध)	अन्तमुहूर्त	३० कोडाकोडी सागरोपम	३ हजार वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम
२	दर्शनावरणीय निद्रापंचक	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के ३/७ भाग	,, ,,	,	,
३	,, ,, II चक्षुरादि	अन्तमुहूर्त	,, ,,	,	,
४	सातावेदनीयकर्म				
	I ईर्यापथिकापेक्षा से	दो समय	दो समय	—	—
	II साम्परायिक बन्धक की अपेक्षा से	बारह मुहूर्त	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
५	असातावेदनीय कर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	३०	३००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में तीन हजार वर्ष कम
६	सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय)	अन्तमुहूर्त	कुछ अधिक ६६ सागरोपम	—	—
७	मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय)	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम ७/७ सागरोपम	७० कोडाकोडी सागरोपम	७००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ७ हजार वर्ष कम
८	सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय)	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त	—	—
९	कषाय-द्वादशक (प्रारम्भ के १२ कषाय) अनन्ता अप्रत्या प्रत्या	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ४/७ भाग	४० कोडाकोडी सागरोपम	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ४ हजार वर्ष कम
१०	संज्वलनक्रोध (मोहनीय)	दो मास	,, , ,	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ४ हजार वर्ष कम
११	संज्वलनमान ,,	एक मास	,, ,, ,		,
१२	संज्वलनमाया ,,	अर्द्ध मास	, ,, ,,	,,	,,
१३	संज्वलनलोभ ,,	अन्तर्मुहूर्त	, , ,,	,	,,
१४	स्त्रीवेद (मोहनीय)	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का १½/७ भाग	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
१५	पुरुषवेद ,,	८ वर्ष की	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १००० वर्ष कम
१६	नपुंसकवेद ,,	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
१७-१८	हास्य और रति (मोहनीय)	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में से १००० वर्ष कम
१९-२२	अरति, भय, शोक, जुगुप्सा	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
२३	नारकायु	अन्तमुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष	करोड पूर्व के तृतीय भाग अधिक ३३ सागरोपम	—	—
२४	तिर्यञ्चायु	अन्तमुहूर्त	करोड पूर्व का तीसरा भाग अधिक ३ पल्योपम	—	—
२५	मनुष्यायु	"	" " "	—	—
२६	देवायु	अन्तमुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष	करोड पूर्व के तृतीय भाग अधिक ३३ सागरोपम की	—	—
२७	नरकगतिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्रसागरोपम का ३/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
२८	तिर्यञ्चगतिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	" " "	"	"
२९	मनुष्यगतिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का [illegible]/७ भाग	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
३०	देवगतिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का १/७ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
३१	एकेन्द्रियजातिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
३२	द्वीन्द्रियजातिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का [illegible]/३५ भाग	१८ कोडाकोडी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
३३	त्रीन्द्रियजातिनाम	" " "	" " "	"	"
३४	चतुरिन्द्रियजातिनाम	" " "	" " "	"	"
३५	पञ्चेन्द्रियजातिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
३६	औदारिकशरीरनाम	" " "	" " "	"	"
३७	वैक्रियशरीरनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्रसागरोपम का ३/७ भाग	" " "	"	"
३८	आहारकशरीरनाम	अन्त कोडाकोडी सागरोपम	अन्त कोडाकोडी सागरोपम	—	—
३९-४०	तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
४१	औदारिकशरीरांगोपांगनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
४२	वैक्रियशरीरांगोपांगनाम	पूर्ववत्	" " "	"	"
४३	आहारकशरीरांगोपांगनाम	" " "	" " "	"	"
४४-४८	पंचशरीरबन्धननाम	" " "	" " "	"	"
४९-५३	पंचशरीरसंघातनाम	शरीरनामकर्म के समान	शरीरनामकर्मवत्	पूर्ववत्	पूर्ववत्
५४	वज्रऋषभनाराचसंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भागकम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
५५	ऋषभनाराचसंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{६}{३५}$ भाग	१२ कोडाकोडी सागरोपम	१२०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १२०० वर्ष कम
५६	नाराचसंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{७}{३५}$ भाग	१४ कोडाकोडी सागरोपम	१४०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १४०० वर्ष कम
५७	अर्द्धनाराचसंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भागकम सागरोपम का $\frac{८}{३५}$ भाग	१६ कोडाकोडी सागरोपम	१६०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १६०० वर्ष कम
५८	कीलिकासंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भागकम सागरोपम का $\frac{९}{३५}$ भाग	१८ कोडाकोडी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
५९	सेवार्त्तसंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम
६०-६५	छह प्रकार के संस्थाननाम	छह संहनननामकर्म के समान	" " "	षट्संहननवत्	षट्संहनन के समान
६६	शुक्लवर्णनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
६७	पीतवर्णनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{५}{२८}$ भाग	१२॥ कोडाकोडी सागरोपम	१२५० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १२५० वर्ष कम
६८	रक्तवर्णनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{६}{२८}$ भाग	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
६९	नीलवर्णनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{७}{२८}$ भाग	१७॥ कोडाकोडी सागरोपम	१७५० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १७५० वर्ष कम
७०	कृष्णवर्णनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
७१	सुरभिगन्धनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
७२	दुरभिगन्धनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
७३-७७	मधुर आदि पांच रस नाम	शुक्लवर्ण आदि पांच वर्णों की स्थिति के समान	शुक्लादि पंचवर्णवत्	पञ्चवर्णवत्	पंचवर्णवत्
७८-८१	अप्रशस्त स्पर्श चार (कर्कश, गुरु, रूक्ष, शीत)	सेवार्तसंहनन के समान	सेवार्तसंहननवत	सेवार्तवत्	सेवार्तवत
८२-८५	प्रशस्त स्पर्श चार (मृदु, लघु स्निग्ध उष्ण)	शुक्लवर्णनामकर्म की स्थिति के समान	शुक्लवर्णवत्	शुक्लवर्णवत्	शुक्लवर्णवत
८६	अगुरुलघुनाम	सेवार्तसंहनन के समान	सेवार्तवत्	सेवार्तवत्	सेवार्तवत
८७	उपघातनाम	" " "	"	"	"
८८	पराघातनाम	" , ,	,	"	,
८९	नरकानुपूर्वीनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम
९०	तिर्यंचानुपूर्वीनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग	, "	,	,
९१	मनुष्यानुपूर्वीनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{3}{14}$ भाग	१५ कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
९२	देवानुपूर्वीनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का $\frac{1}{7}$ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १००० वर्ष कम
९३	उच्छ्वासनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
९४	आतपनाम	, " "	" " "	"	"
९५	उद्योतनाम	" " "	" " "	"	,
९६	प्रशस्तविहायोगतिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{1}{7}$ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
९७	अप्रशस्तविहायोगतिनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
९८	त्रसनाम	" , "	" " "	"	"
९९	स्थावरनाम	, "	" "	"	"
१००	सूक्ष्मनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{9}{35}$ भाग	१८ कोडाकोडी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
१०१	बादरनाम	अप्रशस्तविहायोगति की स्थिति के समान	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २००० वर्ष कम

क्रम कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
१०२ पर्याप्तनाम	बादर के समान	बादरवत्	बादरवत्	बादरवत्
१०३ अपर्याप्तनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ९/३५ भाग	१८ कोडाकोडी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
१०४ साधारणशरीरनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,	,	,,
१०५ प्रत्येकशरीरनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
१०६ अस्थिरनाम	,, ,, ,	,, ,, ,,	,	,,
१०७ स्थिरनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का १/७ भाग	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
१०८ शुभनाम	,, ,, ,,	, ,, ,,	,,	,,
१०९ सुभगनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,
११० सुस्वरनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,
१११ आदेयनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,
११२ यशःकीर्तिनाम	आठ मुहूर्त	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	,
११३ अशुभनाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
११४ दुर्भगनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,
११५ दुःस्वरनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,
११६ अनादेयनाम	, ,, ,,	, ,, ,	,	,,
११७ अयशःकीर्तिनाम	,, ,, ,,	,, , ,,	,,	,
११८ निर्माणनाम	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,
११९ तीर्थंकरनाम	अन्तःकोडाकोडी सागरोपम	अन्तःकोडाकोडी सागरोपम	—	—
१२० उच्चगोत्र	आठ मुहूर्त	१० कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १००० वर्ष कम
१२१ नीचगोत्र	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
१२२ अन्तराय	अन्तर्मुहूर्त	३० कोडाकोडी सागरोपम	३००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम[१]

---

१ (क) विशेष स्पष्टीकरण के लिए कर्मग्रन्थ भा. ५ तथा टिप्पणी आदि देखें।

(ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ३७१ से ३७७ तक

[१७११-२] एकेन्द्रियजाति-नाम और पचेन्द्रियजाति-नाम का बधकाल नपु सकवेद के समान जानना चाहिए तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति नाम का बध जघन्य पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{9}{35}$ भाग बाधते हैं और उत्कृष्ट वही $\frac{9}{35}$ भाग पूरे बाधते हैं।

१७१२ एव जत्य जहण्णग दो सत्तभागा तिण्णि वा चत्तारि वा सत्तभागा अट्ठावीसतिभागा० भवति तत्य ण जहण्णेण ते चेव पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणगा भाणियव्वा, उक्कोसेण ते चेव पडिपुण्णे बधति। जत्य ण जहण्णेण एगो वा दिवड्ढो वा सत्तभागो तत्य जहण्णण त चेव भाणियव्व, उक्कोसेण त चेव पडिपुण्ण बधति।

[१७१२] जहाँ जघन्यत $\frac{2}{7}$ भाग, $\frac{3}{7}$ भाग या $\frac{4}{7}$ भाग अथवा $\frac{5}{28}$, $\frac{6}{28}$ एव $\frac{7}{28}$ भाग कहे हैं, वहाँ वे ही भाग जघन्य रूप से पल्योपम के असख्यातवें भाग कम कहने चाहिए और उत्कृष्ट रूप में वे ही भाग परिपूर्ण समझने चाहिए। इसी प्रकार जहाँ जघन्य रूप से $\frac{1}{7}$ या $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग है, वहाँ जघन्य रूप से वही भाग कहना चाहिए और उत्कृष्ट रूप से वही भाग परिपूर्ण कहना चाहिए।

१७१३ जसोकित्ति-उच्चागोयाण जहण्णेण सागरोवमस्स एग सत्तभाग पलिओवमस्स असखेज्जइभागेण ऊणय, उक्कोसेण त चेव पडिपुण्ण बधति।

[१७१३] यश कीर्तिनाम और उच्चगोत्र का एकेन्द्रिय जीव जघन्यत पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{1}{7}$ भाग का एव उत्कृष्टत सागरोपम के पूर्ण $\frac{1}{7}$ भाग का बध करते हैं।

१७१४ अतराइयस्स ण भते! ० पुच्छा।

गोयमा! जहा णाणावरणिज्जस्स जाव उक्कोसेण ते चेव पडिपुण्णे बधति।

[१७१४ प्र] भगवन्! एकेन्द्रिय जीव अन्तरायकर्म का बध कितने काल का करते हैं?

[१७१४ उ] गौतम! इनका अन्तरायकर्म का जघन्य और उत्कृष्ट बधकाल ज्ञानावरणीय कर्म के समान जानना चाहिए।

विवेचन—इससे पूर्व सभी कर्म-प्रकृतियों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति, अबाधाकाल एव निषेककाल का प्रतिपादन किया गया था। इस प्रकरण में एकेन्द्रिय जीव बधक को लेकर आठों कर्मों की स्थिति की प्ररूपणा की गई है। अर्थात् एकेन्द्रिय जीवों के ज्ञानावरणीयादि कर्म का जो बध होता है, उसकी स्थिति कितने काल तक की होती है?[1]

निम्नोक्त रेखाचित्र से एकेन्द्रिय जीवों के ज्ञानावरणीयादि कर्मों की जघन्य, उत्कृष्ट स्थिति का आसानी से भान हो जाएगा—

---

१ प्रज्ञापनासूत्र भा ५ (प्रमेयबोधिनी टीकासहित)

एकेन्द्रिय जीवों की बन्धस्थिति का रेखाचित्र

क्रम	कमप्रकृति का नाम	जघन्य बन्धस्थिति	उत्कृष्ट बन्धस्थिति
१	नानावरणीय (पचक) असातावेदनीय निद्रापचक,	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का ३/७ भाग	पूरे सागरोपम का ३/७ भाग
	दर्शनावरणचतुष्क अतरायपचक	" "	" "
२	तियञ्चायु	अन्तमुहूर्त की	सात हजार तथा एक हजार वर्ष का तृतीय भाग अधिक करोड पूर्व की
३	सातावेदनीय, स्त्रीवद मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम का १॥/७ भाग	पूरे सागरोपम का १॥/७ भाग
४	सम्यक्त्ववेदनीय और मिश्र वदनीय (मोहनीय) कम	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं
५	मिथ्यात्ववदनीय (मोहनीय)	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम एक सागरोपम की	पूरे सागरोपम की
६	कषायषोडशक (सोलह कषाय)	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ४/७ भाग की	पूरे सागरोपम के ४/७ भाग की
७	पुरुषवेद, हास्य, रति प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादिषटक समचतुरस्र-सस्थान, वज्रऋषभनाराचसहनन शुक्लवर्ण, सुरभिगन्ध, मधुररस और उच्चगोत्र, यश कीर्ति	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के १/७ भाग की	पूरे सागरोपम के १/७ भाग की
८	द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-जातिनाम	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ९/३५ भाग की	पूरे सागरोपम के ९/३५ भाग की
९	नरकायु, देवायु नरकगति, देवगति वैक्रियशरीर आहारकशरीर नरकानुपूर्वी, देवानुपूर्वी तीर्थकरनामकम	इन नौ पदों का बन्ध नहीं	बन्ध नहीं
१०	द्वितीय सस्थान, द्वितीय सहनन	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ६/३५ भाग की	पूरे सागरोपम के ६/३५ भाग की
११	तीसरा सस्थान, तीसरा सहनन	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ७/३५ भाग की	पूरे सागरोपम के ७/३५ भाग की
१२	रक्तवर्ण, कषायरस	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ६/२८ भाग की	पूरे सागरोपम के ६/२८ भाग की
१३	पीतवर्ण, अम्लरस	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ५/२८ भाग की	पूरे सागरोपम के ५/२८ भाग की
१४	नीलवर्ण, कटुकरस	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के ७/२८ भाग की	पूरे सागरोपम के ७/२८ भाग की
१५	नपुंसकवेद भय शोक जुगुप्सा अरति तियञ्चद्विक, औदारिकद्विक अन्तिम सस्थान, अन्तिम सहनन, कृष्णवर्ण, तिक्तरस, अगुरुलघु उपघात, पराघात, उच्छ्वास त्रस, बादर पर्याप्त, प्रत्येकशरीर अस्थिरादिषटक, स्थावर, आतप उद्योत अप्रशस्त विहायोगति निर्माण, एकेन्द्रिय पंचेन्द्रिय जाति तैजस, कामण शरीरनाम	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम सागरोपम के २/७ भाग की " " " "	पूरे सागरोपम के २/७ भाग की " "

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १
(ख) प्रज्ञापनासूत्र भा ५ (प्रमेयबोधिनी टीका) ...

द्वीन्द्रियजीवों में कर्मप्रकृतियों की स्थितिबन्ध-प्ररूपणा

१७१५. बेइंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपणुवीसाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति।

[१७१५ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म का कितने काल का बन्ध करते हैं ?

[१७१५ उ.] गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम के भाग (काल) का बन्ध करते हैं और उत्कृष्ट वही परिपूर्ण बांधते हैं।

१७१६. एवं णिद्दापंचगस्स वि।

[१७१६] इसी प्रकार निद्रापंचक (निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि) की स्थिति के विषय में जानना चाहिए।

१७१७. एवं जहा एगिंदियाणं भणियं तहा बेइंदियाण वि भाणियव्वं। णवरं सागरोवमपणुवीसाए सह भाणियव्वा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणा, सेसं तं चेव, जत्थ एगिंदिया ण बंधंति तत्थ एते वि ण बंधंति।

[१७१७] इसी प्रकार जैसे एकेन्द्रिय जीवों की बंधस्थिति का कथन किया है, वैसे ही द्वीन्द्रिय जीवों की बंधस्थिति का कथन करना चाहिए। जहाँ (जिन प्रकृतियों को) एकेन्द्रिय नहीं बांधते, वहाँ (उन प्रकृतियों को) ये भी नहीं बांधते हैं।

१७१८. बेइंदिया णं भंते ! जीवा मिच्छत्तवेयणिज्जस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपणुवीसं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

[१७१८ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव मिथ्यात्ववेदनीयकर्म का कितने काल का बन्ध करते हैं ?

[१७१८ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्टतः वही परिपूर्ण बांधते हैं।

१७१९. तिरिक्खजोणियाउअस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिं चउहिं वासेहिं अहियं बंधंति। एवं मणुयाउअस्स वि।

[१७१९] द्वीन्द्रिय जीव तिर्यञ्चायु को जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्टतः चार वर्ष अधिक पूर्वकोटिवर्ष की बांधते हैं। इसी प्रकार मनुष्यायु का कथन भी कर देना चाहिए।

१७२०. सेसं जहा एगिंदियाणं जाव अंतराइयस्स।

[१७२०] शेष यावत् अन्तरायकर्म तक एकेन्द्रियों के कथन के समान जानना चाहिए।

विवेचन—द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों का बन्ध कितने काल का करते

हैं ? इस प्रश्न का समाधान यहा किया गया है। नीचे लिखे रेखाचित्र से आसानी से समझ मे आ जाएगा—

कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य बन्धस्थिति	उत्कृष्टबन्धस्थिति
ज्ञानावरणीय, निद्रापचक	पल्योपम का असख्यातवा भाग कम २५ सागरोपम के ३/७ भाग की	२५ सागरोपम के ३/७ भाग की
शेषकर्म	एकेन्द्रिय के समान बन्ध-अबन्ध जानना	
मिथ्यात्वमोहनीय	पल्योपम के असख्यातवें भाग कम २५ सागरोपम की	पूर्ण पच्चीस सागरोपम की
तिर्यञ्चायु मनुष्यायु	अन्तर्मुहूर्त	४ वर्ष अधिक पूर्वकोटि की
नाम गोत्र अन्तरायादि	एकेन्द्रिय के समान	एकेन्द्रियवत् [1]

एकेन्द्रियों की अपेक्षा द्वीन्द्रिय जीवो के बन्धकाल की विशेषता—एक विशेषता यह है कि द्वीन्द्रिय जीवो का बन्धकाल एकेन्द्रिय जीवो से पच्चीस गुणा अधिक होता है। जैसे—एकेन्द्रिय के ज्ञानावरणीयकर्म का जघन्य बन्धकाल पल्योपम के असख्यातवे भाग कम एक सागरोपम के ३/७ भाग का है, जबकि द्वीन्द्रिय का जघन्य बन्धकाल पल्योपम के असख्यातवें भाग कम २५ सागरोपम के ३/७ भाग का है। इस प्रकार पच्चीस गुणा अधिक करके पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। जिन कर्मप्रकृतियो का बन्ध एकेन्द्रिय जीव नही करते, द्वीन्द्रिय जीव भी उनका बन्ध नही करते।

इस प्रकार जिस कर्म की जो जो उत्कृष्ट स्थिति पहले कही गई है, उस स्थिति का मोहनीयकर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी के साथ भाग करने पर जो सख्या लब्ध होती है, उसे पच्चीस से गुणा करने पर जो राशि आए उसमे से पल्योपम का असख्यातवा भाग कम करने पर द्वीन्द्रिय जीवो की जघन्य स्थिति का परिमाण आ जाता है। यदि उसमे से पल्योपम का असख्यातवाँ भाग कम न करें तो उत्कृष्ट स्थिति का परिमाण आ जाता है। उदाहरणार्थ—ज्ञानावरणीय पचक आदि के सागरोपम के ३/७ भाग का पच्चीस से गुणा किया जाय तो पच्चीस सागरोपम के ३/७ भाग हुए। अर्थात्—उनका उत्कृष्ट बन्धकाल पूरे पच्चीस सागरोपम के ३/७ भाग हुए। यदि पल्योपम का असख्यातवाँ भाग कम कर दिया जाए तो उनका जघन्य स्थिति बन्धकाल हुआ।[2]

त्रीन्द्रियजीवों मे कर्मप्रकृतियो की स्थिति-बन्धप्ररूपणा

१७२१ तेइंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपण्णासाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। एवं जस्स जइ भागा ते तस्स सागरोवमपण्णासाए सह भाणियव्वा।

---

१ पण्णवणासुत्त भाग १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ३७९

२ प्रज्ञापनासूत्र भाग ५ (प्रमेयबोधिनी टीका) पृ ४१९-४२०

[१७२१ प्र.] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म का कितने काल का बंध करते हैं ?

[१७२१ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पचास सागरोपम के ३/७ भाग का बंध करते हैं और उत्कृष्ट वही परिपूर्ण बांधते हैं। इस प्रकार जिसके जितने भाग हैं, वे उनके पचास सागरोपम के साथ कहने चाहिए।

१७२२. तेइंदिया णं मिच्छत्तवेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपण्णासं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

[१७२२ प्र.] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीव मिथ्यात्व वेदनीय कर्म का कितने काल का बन्ध करते हैं ?

[१७२२ उ.] गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पचास सागरोपम का और उत्कृष्ट पूरे पचास सागरोपम का बंध करते हैं।

१७२३. तिरिक्खजोणियाउअस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिं सोलसहिं राइंदिएहिं राइंदियतिभागेण य अहियं बंधंति। एवं मणुस्साउयस्स वि।

[१७२३] तिर्यञ्चायु का जघन्य अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्ट सोलह रात्रि दिवस तथा रात्रिदिवस के तीसरे भाग अधिक करोड़ पूर्व का बंधकाल है। इसी प्रकार मनुष्यायु का भी बंधकाल है।

१७२४. सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स।

[१७२४] शेष यावत् अन्तराय तक का बंधकाल द्वीन्द्रिय जीवों के बंधकाल के समान जानना चाहिए।

विवेचन—त्रीन्द्रिय जीवों के बंधकाल की विशेषता—त्रीन्द्रिय जीवों के बन्धकाल की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की है, किन्तु उनका बंधस्थितिकाल एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा ५० गुणा अधिक होता है।[1]

चतुरिन्द्रिय जीवों की कर्मप्रकृतियों की स्थितिबन्ध-प्ररूपणा

१७२५. चउरिंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसयस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। एवं जस्स जइ भागा ते तस्स सागरोवमसतेण सह भाणियव्वा।

[१७२५ प्र.] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म का कितने काल का बंध करते हैं ?

[१७२५ उ.] गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सौ सागरोपम के ३/७ भाग का और उत्कृष्ट पूरे सौ सागरोपम के ३/७ भाग का बंध करते हैं।

१. (क) पण्णवणासुत्तं भाग १, पृ. ३८०

(ख) प्रज्ञापनासूत्र भा. ५ (प्रमेयबोधिनी टीका) पृ. ४२०

१७२६ तिरिक्खजोणियाउअस्स कम्मस्स जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडिं दोहिं मासेहिं अहियं । एवं मणुस्साउअस्स वि ।

[१७२६] तिर्यञ्चायुकर्म का (बन्धकाल) जघन्य अन्तर्मुहूर्त का है और उत्कृष्ट दो मास अधिक करोड़-पूर्व का है । इसी प्रकार मनुष्यायु का बन्धकाल भी जानना चाहिए ।

१७२७ सेसं जहा बेइंदियाणं । णवरं मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमसतं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति । सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स ।

[१७२७] शेष यावत् अन्तराय द्वीन्द्रियजीवों के बन्धकाल के समान जानना चाहिए। विशेषता यह कि मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) का जघन्य पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम सौ सागरोपम और उत्कृष्ट परिपूर्ण सौ सागरोपम का बन्ध करते हैं । शेष कथन अन्तराय कर्म तक द्वीन्द्रियों के समान है ।

विवेचन—चतुरिन्द्रिय जीवों के बन्धकाल की विशेषता—उनका बन्धकाल एकेन्द्रियों की अपेक्षा सौ गुणा अधिक होता है ।[1]

असंज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवों की कर्मप्रकृतियों की स्थितिबन्ध-प्ररूपणा

१७२८ असण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति । एवं सो चेव गमो जहा बेइंदियाणं । णवरं सागरोवम-सहस्सेण समं भाणियव्वा जस्स जति भाग त्ति ।

[१७२८ प्र] भगवन् ! असंज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म कितने काल का बांधते हैं ?

[१७२८ उ] गौतम ! वे पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्रसागरोपम के ३/७ भाग काल का और उत्कृष्ट परिपूर्ण सहस्र सागरोपम के ३/७ भाग (काल) का बन्ध करते हैं । इस प्रकार द्वीन्द्रियों के (बन्धकाल के) विषय में जो गम (आलापक) कहा है वही यहाँ जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के प्रकरण में जिस कर्म का जितना भाग हो, उसका उतना ही भाग सहस्रसागरोपम से गुणित कहना चाहिए ।

१७२९ मिच्छत्तवेदणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमसहस्सं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं ।

[१७२९] वे मिथ्यात्ववेदनीयकर्म का जघन्य बन्ध पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का और उत्कृष्ट बन्ध परिपूर्ण सहस्र सागरोपम का (करते हैं) ।

---

१ (क) पण्णवणासुत्तं, भाग १, पृ ३८०
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५ पृ ४२१

१७३० [१] णेरइयाउअस्स जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग पुव्वकोडितिभागब्भहियं बंधंति।

[१७३०-१] वे नरकायुष्यकर्म का (बन्ध) जघन्य अन्तमुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट पूर्वकोटि के त्रिभाग अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग का बन्ध करते हैं।

[२] एवं तिरिक्खजोणियाउअस्स वि। णवरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं।

[१७३०-२] इसी प्रकार तिर्यञ्चायु का भी उत्कृष्ट बन्ध पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग का, किन्तु जघन्य अन्तमुहूर्त का करते हैं।

[३] एवं मणुस्साउअस्स वि।

[१७३०-२] इसी प्रकार मनुष्यायु के (बन्ध के) विषय में समझना चाहिए।

[४] देवाउअस्स जहा णेरइयाउअस्स।

[१७३०-४] देवायु का बन्ध नरकायु के समान समझना चाहिए।

१७३१ [१] असण्णी णं भंते! जीवा पंचेंदिया णिरयगतिणामए कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणए उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे।

[१७३१-१ प्र] भगवन्! असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव नरकगतिनाम का कितने काल का बन्ध करते हैं?

[१७३१-१ उ] गौतम! वे पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र-सागरोपम (मान) का $\frac{2}{7}$ भाग और उत्कृष्ट परिपूर्ण सहस्र सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग बांधते हैं।

[२] एवं तिरियगतीए वि।

[१७३१-२] इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिनाम के बन्ध के विषय में समझना चाहिए।

[३] मणुयगतिणामए वि एवं चेव। णवरं जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

[१७३१-३] मनुष्यगतिनामकर्म के बन्ध के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि इसका जघन्य बन्ध पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र-सागरोपम के $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग और उत्कृष्ट परिपूर्ण सहस्र सागरोपम के $\frac{1\frac{1}{2}}{7}$ भाग का करते हैं।

[४] एवं देवगतिणामए वि। णवरं जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं।

[१७३१-४] इसी प्रकार देवगतिनामकर्म के बन्ध के विषय में समझना। किन्तु विशेषता यह है कि इसका जघन्य बन्ध पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के $\frac{1}{7}$ भाग का और उत्कृष्ट पूरे उसी (सहस्र सागरोपम) के $\frac{1}{7}$ भाग का करते हैं।

[५] वेउव्वियसरीरणामए पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं दो पडिपुण्णे बंधंति ।

[१७३१-५ प्र.] भगवन् ! (असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव) वैक्रियशरीरनाम का बन्ध कितने काल का करते हैं ?

[१७३१-५ उ.] गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के 2/7 भाग का और उत्कृष्ट पूरे सहस्र सागरोपम के 2/7 का करते हैं ।

१७३२. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-आहारगसरीरणामए तित्थगरणामए य ण किंचि बंधंति ।

[१७३२] (असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव) सम्यक्त्वमोहनीय, सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीय, आहारकशरीर-नामकर्म और तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध करते ही नहीं हैं ।

१७३३. अवसिट्ठं जहा बेइंदियाणं । णवरं जस्स जत्तिया भागा तस्स ते सागरोवमसहस्सेण सह भाणियव्वा । सव्वेसिं आणुपुव्वीए जाव अंतराइयस्स ।

[१७३३] शेष कर्मप्रकृतियों का बन्धकाल द्वीन्द्रिय जीवों के कथन के समान जानना । विशेष यह है कि जिसके जितने भाग हैं वे सहस्र सागरोपम के साथ कहने चाहिए । इसी प्रकार अनुक्रम से यावत् अन्तरायकर्म तक सभी कर्मप्रकृतियों का यथायोग्य (बन्धकाल) कहना चाहिए ।

विवेचन—द्वीन्द्रियों के समान आलापक, किन्तु विशेष अन्तर भी—द्वीन्द्रिय जीवों के बन्धकाल से असंज्ञीपंचेन्द्रियों के प्रकरण में विशेषता यही है कि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल को सहस्र सागरोपम से गुणित कहना चाहिए । जिस कर्म का जितना भाग है उसका उतना ही भाग यहाँ सहस्र सागरोपम से गुणित कहना चाहिए ।[1]

संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों में कर्म-प्रकृतियों के स्थिति-बन्ध का निरूपण

१७३४. सण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा० ।

[१७३४ प्र.] भगवन् ! संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म का कितने काल का बन्ध करते हैं ?

[१७३४ उ.] गौतम ! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम (काल का) बन्ध करते हैं । इनका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है । (कर्मस्थिति में से अबाधा-काल कम करने पर इनका कर्मनिषेककाल है ।)

१७३५. [१] सण्णी णं भंते ! पंचेंदिया णिद्दापंचगस्स किं बंधंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा० ।

१. प्रज्ञापनासूत्र भा. ५ पृ. ४२६

[१७३५-१ प्र] भगवन् ! संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव निद्रापंचककर्म का कितने काल का बंध करते हैं ?

[१७३५-१ उ] गौतम ! वे जघन्य अन्त कोडाकोडी सागरोपम का और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम का बन्ध करते हैं। इनका तीन हजार वर्ष का अबाधाकाल है, इत्यादि पूर्ववत्।

[२] दंसणचउक्कस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

[१७३५-२] दर्शनचतुष्क का बन्धकाल ज्ञानावरणीयकर्म के बन्धकाल के समान है।

१७३६ [१] सातावेदणिज्जस्स जहा ओहिया ठिती भणिया तहेव भाणियव्वा इरियावहियबंधयं पडुच्च संपराइयबंधयं च।

[१७३६-१] सातावेदनीयकर्म का बन्धकाल उसकी जो औधिक (सामान्य) स्थिति कही है, उतना ही कहना चाहिए। ऐर्यापथिकबन्ध और साम्परायिकबन्ध की अपेक्षा से (सातावेदनीय का बन्धकाल पृथक्-पृथक्) कहना चाहिए।

[२] असातावेदणिज्जस्स जहा णिद्दापंचगस्स।

[१७३६-२] असातावेदनीय का बन्धकाल निद्रापंचक के समान (कहना चाहिए)।

१७३७ [१] सम्मत्तवेदणिज्जस्स सम्मामिच्छत्तवेदणिज्जस्स य जा ओहिया ठिती भणिया तं बंधंति।

[१७३७-१] वे सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय) और सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) की जो औधिक स्थिति कही है उतने ही काल का बांधते हैं।

[२] मिच्छत्तवेदणिज्जस्स जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साइं अबाहा०।

[१७३७-२] वे मिथ्यात्ववेदनीय का बंध जघन्य अन्त कोडाकोडी सागरोपम का और उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी सागरोपम का करते हैं। अबाधाकाल सात हजार वर्ष का है, इत्यादि पूर्ववत्।

[३] कसायबारसगस्स जहण्णेणं एवं चेव, उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तालीस य वाससहस्साइं अबाहा०।

[१७३७-३] कषायद्वादशक (बारह कषायों) का बन्धकाल जघन्य इसी प्रकार (अन्त कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण) है और उत्कृष्टतः चालीस कोडाकोडी सागरोपम का है। इनका अबाधाकाल चालीस हजार वर्ष का है, इत्यादि पूर्ववत्।

[४] कोह-माण-माया-लोभसंजलणाए य दो मासा मासो अद्धमासो अंतोमुहुत्तो एयं जहण्णगं, उक्कोसगं पुण जहा कसायबारसगस्स।

[१७३७-४] संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ का जघन्य बंध क्रमशः दो मास, एक मास, अर्द्ध मास और अन्तर्मुहूर्त का होता है तथा उत्कृष्ट बंध कषाय द्वादशक के समान होता है।

१७३८ चउण्ह वि आउआण जा ओहिया ठिती भणिया त बधति।

[१७३८] चार प्रकार के आयुष्य (नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु) कर्म की जो सामान्य (औघिक) स्थिति कही गई है, उसी स्थिति का वे (संज्ञीपंचेन्द्रिय) बन्ध करते हैं।

१७३९ [१] आहारगसरीरस्स तित्थगरणामए य जहण्णेण अतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेण वि अतोसागरोवमकोडाकोडीओ बधति।

[१७३९-१] वे आहारकशरीर और तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध जघन्यत अन्त कोटाकोटि सागरोपम का करते हैं और उत्कृष्टत भी उतने ही काल का बन्ध करते हैं।

[२] पुरिसवेदस्स जहण्णेण अट्ठ सवच्छराइ, उक्कोसेण दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइ अबाहा०।

[१७३९-२] पुरुषवेद का बन्ध वे जघन्य आठ वर्ष का और उत्कृष्ट दशकोटाकोटि सागरोपम का करते हैं। उनका अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है, इत्यादि पूर्ववत्।

[३] जसोकित्तिणामए उच्चागोयस्स य एव चेव। णवर जहण्णेण अट्ठ मुहुत्ता।

[१७३९-३] यश कीर्तिनाम और उच्चगोत्र का बन्ध भी इसी प्रकार (पुरुषवेदवत्) जानना चाहिए। विशेष यह है कि संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवो का जघन्य स्थितिबन्ध (-काल) आठ मुहूर्त का है।

१७४० अतराइयस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

[१७४०] अन्तरायकर्म का बन्धकाल ज्ञानावरणीयकर्म के (बन्धकाल के) समान है।

१७४१ सेसएसु सव्वेसु ठाणेसु सघयणेसु सठाणेसु वण्णेसु गधेसु य जहण्णेण अतोसागरोवम-कोडाकोडीओ, उक्कोसेण जा जस्स ओहिया ठिती भणिया त बधति, णवर इम णाणत्त—अबाहा अबाहूणिया ण वुच्चति। एव आणुपुव्वीए सव्वेसि जाव अतराइयस्स ताव भाणियव्व।

[१७४१] शेष सभी स्थानो मे तथा सहनन, सस्थान, वर्ण, गन्ध नामकर्मों मे बन्ध का जघन्य काल अन्त कोटाकोटि सागरोपम का है और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का काल, जो इनकी सामान्य स्थिति कही है, वही कहना चाहिए। विशेष अन्तर यह है कि इनका 'अबाधाकाल और अबाधाकालन्यून (कर्मनिषेककाल) नहीं कहा जाता।

इसी प्रकार अनुक्रम से सभी कर्मों का अन्तरायकर्म तक का स्थितिबन्धकाल कहना चाहिए।

विवेचन—कुछ स्पष्टीकरण—संज्ञीपंचेन्द्रिय बन्धक की अपेक्षा से ज्ञानावरणीयादि कर्मों का जो जघन्य स्थितिबन्धकाल कहा गया है, वह क्षपक जीव को उस समय होता है, जब उन कर्म-प्रकृतियों के बन्ध का चरम समय हो। निद्रापचक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, कषायद्वादश आदि का बन्ध क्षपण से पहले होता है, अतएव उनका जघन्य और उत्कृष्ट बन्ध भी अन्त कोटाकोटि

सागरोपम का होता है, जो अत्यन्त संक्लेशयुक्त मिथ्यादृष्टि के समझना चाहिए। चारों प्रकार के आयुष्यकर्म का उत्कृष्ट बन्ध उन-उनके बन्धकों में जो अतिविशुद्ध होते हैं, उनको होता है।[1]

कर्मों के जघन्य स्थितिबन्धक की प्ररूपणा

१७४२. णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितिबंधए के ?

गोयमा ! अण्णयरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवए वा, एस णं गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठितिबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे। एवं एतेणं अभिलावेणं मोहाऽऽउयवज्जाणं सेसकम्माणं भाणियव्वं।

[१७४२ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक (बांधने वाला) कौन है ?

[१७४२ उ.] गौतम ! वह अन्यतर (कोई एक) सूक्ष्मसम्पराय, उपशामक (उपशमश्रेणी वाला) या क्षपक (क्षपकश्रेणी वाला) होता है। हे गौतम ! यही ज्ञानावरणीयकर्म का जघन्य स्थिति-बन्धक होता है, उससे अतिरिक्त अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है। इस प्रकार इस अभिलाप से मोहनीय और आयुकर्म को छोड़ कर शेष कर्मों के विषय में कहना चाहिए।

१७४३. मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितिबंधए के ?

गोयमा ! अण्णयरे बायरसंपराए उवसामए वा खवए वा, एस णं गोयमा ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठितिबंधए, तव्वतिरित्ते अजहण्णे।

[१७४३ प्र.] भगवन् ! मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक कौन है ?

[१७४३ उ.] गौतम ! वह अन्यतर बादरसम्पराय, उपशामक अथवा क्षपक होता है। हे गौतम ! यह मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक होता है, उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है।

१७४४. आउयस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितिबंधए के ?

गोयमा ! जे णं जीवे असंखेप्पद्धप्पविट्ठे सव्वनिरुद्धे से आउए, सेसे सव्वमहंतीए आउयबंधद्धाए तीसे णं आउयबंधद्धाए चरिमकालसमयंसि सव्वजहण्णियं ठिइं पज्जत्तापज्जत्तियं णिव्वत्तेति। एस णं गोयमा ! आउयकम्मस्स जहण्णठितिबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे।

[१७४४ प्र.] भगवन् ! आयुष्यकर्म का जघन्यस्थिति-बन्धक कौन है ?

[१७४४ उ.] गौतम ! जो जीव असंक्षेप्य-अद्धाप्रविष्ट होता है, उसकी आयु सर्वनिरुद्ध (सबसे कम) होती है। शेष सबसे बड़े उस आयुष्य-बन्धकाल के अंतिम काल के समय में जो सबसे जघन्य स्थिति को तथा पर्याप्ति-अपर्याप्ति को बांधता है। हे गौतम ! यही आयुष्यकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक होता है, उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है।

विवेचन—निष्कर्ष - मोहनीय और आयुकर्म को छोड़कर शेष पांच कर्मों की जघन्य स्थिति का बन्धक जीव सूक्ष्मसम्पराय अवस्था से युक्त उपशामक अथवा क्षपक दोनों में से कोई एक (अन्यतर)

१. (मलय. टीका) पृ. ४३३-४३४

होता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानावरणीयादि कर्मों का बन्ध सूक्ष्मसम्पराय अवस्था में उपशमक और क्षपक दोनों का जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। अतएव दोनों का स्थितिबन्ध का काल समान होने से कहा गया है—उपशमक अथवा क्षपक दोनों में से कोई एक। यद्यपि उपशमक और क्षपक दोनों का स्थितिबन्धकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, तथापि दोनों के अन्तर्मुहूर्त के प्रमाण में अन्तर होता है। क्षपक की अपेक्षा उपशमक का बन्धकाल दुगुना समझना चाहिए। उदाहरणार्थ- दसवें गुणस्थान वाले क्षपक को जितने काल का ज्ञानावरणीय कर्म का स्थितिबन्ध होता है, उसकी अपेक्षा श्रेणी चढ़ते हुए उपशमक को दुगुने काल का स्थितिबन्ध होता है और फिर वह श्रेणी से गिरते हुए दसवें गुणस्थान में आता है, तो श्रेणी चढ़ते जीव की अपेक्षा भी दुगुना स्थितिबन्ध काल होता है। फिर भी उसका काल होता है- अन्तर्मुहूर्त ही। इस प्रकार वेदनीयकर्म के साम्परायिकबन्ध की प्ररूपणा करते समय क्षपक का जघन्य स्थितिबन्ध १२ मुहूर्त का और उपशमक का २४ मुहूर्त का कहा है। नाम और गोत्रकर्म का क्षपक जीव आठ मुहूर्त का स्थितिबन्ध करता है, जबकि उपशमक १६ मुहूर्त करता है। किन्तु उपशमक एवं क्षपक जीव का जघन्यबन्ध शेष सब बन्धों की अपेक्षा सर्वजघन्यबन्ध समझना चाहिए। इसीलिए कहा गया है—उपशमक एवं क्षपक जीव, जो सूक्ष्मसम्पराय अवस्था में हों वही ज्ञानावरणीयादि कर्मों का जघन्य स्थितिबन्धक है।[1]

मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक—बादरसम्पराय से युक्त उपशमक या क्षपक जीव मोहनीयकर्म की स्थिति का बन्धक होता है।[2]

आयुकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक कौन और क्यों?—जो जीव असंक्षेप्य-अद्धाप्रविष्ट होता है, उसकी आयु सर्वनिरुद्ध होती है। उसका आयुष्य आठ आकर्ष प्रमाण सबसे बड़ा काल होता है, आयु के बंध होते ही वह आयुष्य समाप्त हो जाता है। अतः असंक्षेप्याद्धाप्रविष्ट जीव आयुष्यबन्ध काल के चरम समय में अर्थात्—एक आकर्षप्रमाण अष्टम भाग में सर्वजघन्य स्थिति का बांधता है। वह स्थिति शरीर पर्याप्ति और इन्द्रिय-पर्याप्ति को सम्पन्न करने में समर्थ और उच्छ्वास-पर्याप्ति को निष्पन्न करने में असमर्थ होती है। यहाँ असंक्षेप्याद्धा, सर्वनिरुद्ध और चरमकाल आदि कुछ पारिभाषिक शब्द हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं- असंक्षेप्याद्धा—जिसका त्रिभाग आदि प्रकार से संक्षेप न हो सके ऐसा अद्धा-काल असंक्षेप्याद्धा कहलाता है। ऐसे जीव का आयुष्य सर्वनिरुद्ध होता है। अर्थात् उपक्रम के कारणों द्वारा आयुष्य अतिसंक्षिप्त किया हुआ होता है। ऐसा आयुष्य आयुष्यबन्ध के समय तक ही सीमित होता है, आगे नहीं। चरमकाल समय—इस शब्द से सूक्ष्म अंश का ग्रहण नहीं करना चाहिए किन्तु पूर्वोक्तकाल ही समझना चाहिए, क्योंकि उससे कम काल में आयु का बंध होना सम्भव नहीं।[3]

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति के बन्धकों की प्ररूपणा

१७४५. उक्कोसकालठितीयं णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं किं णेरइओ बंधइ तिरिक्खजोणिओ बंधइ तिरिक्खजोणिणी बंधइ मणूसो बंधइ मणूसी बंधइ देवो बंधइ देवी बंधइ?

गोयमा! णेरइओ वि बंधति जाव देवी वि बंधति।

---

१. प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ४ ...

२. वही भा. ५, पृ. ४४०

३. वही भा. ५, पृ. ४४०-४४१

सागरोपम का होता है, जो अत्यन्त संक्लेशयुक्त मिथ्यादृष्टि के समझना चाहिए। चारों प्रकार के आयुष्यकर्म का उत्कृष्ट बंध उन-उनके बंधकों में जो अतिविशुद्ध होते हैं, उनको होता है।[1]

कर्मों के जघन्य स्थितिबन्धक की प्ररूपणा

१७४२. णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितिबंधए के ?

गोयमा ! अण्णयरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवए वा, एस णं गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठितिबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे। एवं एतेणं अभिलावेणं मोहाऽऽउअवज्जाणं सेसकम्माणं भाणियव्वं।

[१७४२ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म की जघन्य स्थिति का बंधक (बांधने वाला) कौन है ?

[१७४२ उ.] गौतम ! वह अन्यतर (कोई एक) सूक्ष्मसम्पराय, उपशामक (उपशमश्रेणी वाला) या क्षपक (क्षपकश्रेणी वाला) होता है। हे गौतम ! यही ज्ञानावरणीयकर्म का जघन्य स्थिति-बंधक होता है, उससे अतिरिक्त अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है। इस प्रकार इस अभिलाप से मोहनीय और आयुकर्म को छोड़ कर शेष कर्मों के विषय में कहना चाहिए।

१७४३. मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितिबंधए के ?

गोयमा ! अण्णयरे बायरसंपराए उवसामए वा खवए वा, एस णं गोयमा ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठितिबंधए, तव्वतिरित्ते अजहण्णे।

[१७४३ प्र.] भगवन् ! मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बंधक कौन है ?

[१७४३ उ.] गौतम ! वह अन्यतर बादरसम्पराय, उपशामक अथवा क्षपक होता है। हे गौतम ! यह मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बंधक होता है, उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बंधक होता है।

१७४४. आउयस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितिबंधए के ?

गोयमा ! जे णं जीवे असंखेप्पद्धप्पविट्ठे सव्वणिरुद्धे से आउए, सेसे सव्वमहंतीए आउअबंधद्धाए तीसे णं आउअबंधद्धाए चरिमकालसमयंसि सव्वजहण्णियं ठिइं पज्जत्तापज्जत्तियं णिव्वत्तेति। एस णं गोयमा ! आउयकम्मस्स जहण्णठितिबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे।

[१७४४ प्र.] भगवन् ! आयुष्यकर्म का जघन्यस्थिति-बंधक कौन है ?

[१७४४ उ.] गौतम ! जो जीव असंक्षेप्य अद्धाप्रविष्ट होता है उसकी आयु सर्वनिरुद्ध (सबसे कम) होती है। शेष सबसे बड़े उस आयुष्य बंधकाल के अन्तिम काल के समय में जो सबसे जघन्य स्थिति का तथा पर्याप्ति अपर्याप्ति का बांधता है। हे गौतम ! यही आयुष्यकर्म की जघन्य स्थिति का बंधक होता है, उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बंधक होता है।

विवेचन—निष्कर्ष – मोहनीय और आयुकर्म को छोड़कर शेष पांच कर्मों की जघन्य स्थिति का बंधक जीव सूक्ष्मसम्पराय अवस्था से युक्त उपशामक अथवा क्षपक दोनों में से कोई एक (अन्यतर)

---

१. प्रज्ञापनासूत्र भाग ५, (प्रमेयबोधिनी टीका) पृ. ४३३-४३४

होता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानावरणीयादि कर्मों का बन्ध सूक्ष्मसम्पराय अवस्था में उपशमक और क्षपक दोनों का जघन्य अन्तमुहूर्तप्रमाण होना है। अतएव दोनों का स्थितिबन्ध का काल समान होने से कहा गया है—उपशमक अथवा क्षपक दोनों में से कोई एक। यद्यपि उपशमक और क्षपक दोनों का स्थितिबन्धकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण है, तथापि दोनों के अन्तमुहूर्त के प्रमाण में अन्तर होता है। क्षपक की अपेक्षा उपशमक का बन्धकाल दुगुना समझना चाहिए। उदाहरणार्थ- दसवें गुणस्थान वाले क्षपक को जितने काल का ज्ञानावरणीय कर्म का स्थितिबन्ध होता है, उसकी अपेक्षा श्रेणी चढते हुए उपशमक को दुगुने काल का स्थितिबन्ध होता है और फिर वह श्रेणी से गिरते हुए दसवें गुणस्थान में आता है, तो श्रेणी चढते जीव की अपेक्षा भी दुगुना स्थितिबन्ध काल होता है। फिर भी उसका काल होता है— अन्तर्मुहूर्त ही। इस प्रकार वेदनीयकर्म के साम्परायिकबन्ध की प्ररूपणा करते समय क्षपक का जघन्य स्थितिबन्ध १२ मुहूर्त का और उपशमक का २४ मुहूर्त का कहा है। नाम और गोत्रकर्म का क्षपक जीव आठ मुहूर्त का स्थितिबन्ध करता है, जबकि उपशमक १६ मुहूर्त करता है। किन्तु उपशमक एवं क्षपक जीव का जघन्यबन्ध शेष सब बन्धों की अपेक्षा सर्वजघन्यबन्ध समझना चाहिए। इसीलिए कहा गया है—उपशमक एवं क्षपक जीव, जो सूक्ष्म-सम्पराय अवस्था में हो वही ज्ञानावरणीयादि कर्मों का जघन्य स्थितिबन्धक है।[1]

मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक—बादरसम्पराय से युक्त उपशमक या क्षपक जीव मोहनीयकर्म की स्थिति का बन्धक होता है।[2]

आयुकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक कौन और क्यों ?—जो जीव असंक्षेप्य-अद्धाप्रविष्ट होता है, उसकी आयु सर्वनिरुद्ध होती है। उसका आयुष्य आठ आकर्ष प्रमाण सबसे बड़ा काल होता है, आयु के बन्ध होते ही वह आयुष्य समाप्त हो जाता है। अतः असंक्षेप्याद्धाप्रविष्ट जीव आयुष्यबन्ध काल के चरम समय में वर्तमान—एक आकर्षप्रमाण अष्टम भाग में सर्वजघन्य स्थिति का बांधता है। वह स्थिति शरीर पर्याप्ति और इन्द्रिय-पर्याप्ति को सम्पन्न करने में समर्थ और उच्छ्वास-पर्याप्ति को निष्पन्न करने में असमर्थ होती है। यहाँ असंक्षेप्याद्धा, सर्वनिरुद्ध और चरमकाल आदि कुछ पारिभाषिक शब्द हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं—असंक्षेप्याद्धा—जिसका त्रिभाग आदि प्रकार से संक्षेप न हो सके ऐसा अद्धा-काल असंक्षेप्याद्धा कहलाता है। ऐसे जीव का आयुष्य सर्वनिरुद्ध होता है। अर्थात् उपक्रम के कारणों द्वारा आयुष्य अतिसंक्षिप्त किया हुआ होता है। ऐसा आयुष्य आयुष्यबन्ध के समय तक ही सीमित होता है, आगे नहीं। चरमकाल समय—इस शब्द से सूक्ष्म अंश का ग्रहण नहीं करना चाहिए किन्तु पूर्वोक्तानुसार ही समझना चाहिए, क्योंकि उससे कम काल में आयु का बन्ध होना सम्भव नहीं।[3]

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति के बन्धकों की प्ररूपणा

१७४५. उक्कोसकालठितीयं णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं किं णेरइओ बंधइ तिरिक्खजोणिओ बंधइ तिरिक्खजोणिणी बंधइ मणुस्सो बंधइ मणुस्सी बंधइ देवो बंधइ देवी बंधइ ?

गोयमा ! णेरइओ वि बंधति जाव देवी वि बंधति।

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ४३७

२ वही भा. ५, पृ. ४४०

३ वही, भा. ५, पृ. ४४०-४४१

[१७४५-प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीयकर्म को क्या नारक बांधता है, तिर्यञ्च बांधता है, तिर्यञ्चिनी बांधती है, मनुष्य बांधता है, मनुष्य स्त्री बांधती है अथवा देव बांधता है या देवी बांधती है ?

[१७४५ उ] गौतम ! उसे नारक भी बांधता है यावत् देवी भी बांधती है।

१७४६ केरिसए णं भंते ! णेरइए उक्कोसकालठितीयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ ?

गोयमा ! सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्ते सागारे जागरे सुतोवउत्ते मिच्छद्दिट्ठी कण्हलेसे उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे ईसिमज्झिमपरिणामे वा, एरिसए णं गोयमा ! णेरइए उक्कोसकालठितीयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ।

[१७४६ प्र] भगवन् ! किस प्रकार का नारक उत्कृष्ट स्थिति वाला ज्ञानावरणीयकर्म बांधता है ?

[१७४६ उ] गौतम ! जो संज्ञीपंचेन्द्रिय, समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकारोपयोग वाला, जाग्रत, श्रुत में उपयोगवान्, मिथ्यादृष्टि, कृष्णलेश्यावान, उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला अथवा किञ्चित् मध्यम परिणाम वाला हो, ऐसा नारक, हे गौतम ! उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है।

१७४७ [१] केरिसए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठितीयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ ?

गोयमा ! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचेंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए, सेसं तं चेव जहा णेरइयस्स।

[१७४७-१ प्र] भगवन् ! किस प्रकार का तिर्यञ्च उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता है ?

[१७४७-१ उ] गौतम ! जो कर्मभूमि में उत्पन्न हो अथवा कर्मभूमिज के सदृश हो, संज्ञी-पंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकारोपयोग वाला, जाग्रत, श्रुत में उपयोगवान् मिथ्यादृष्टि, कृष्णलेश्यावान् एवं उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला हो तथा किञ्चित् मध्यम परिणाम वाला हो, हे गौतम ! इसी प्रकार का तिर्यञ्च उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है।

[२] एवं तिरिक्खजोणिणी वि, मणूसे वि मणूसी वि। देव देवी जहा णेरइए (सु. १७४६)।

[१७४७-२] इसी प्रकार की (पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) तिर्यञ्चिनी भी मनुष्य और मनुष्यस्त्री भी उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधती है। (पूर्वोक्त विशेषण युक्त) (सू. १७४६ में उक्त) नारक के सदृश देव और देवी (उत्कृष्ट ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हैं।)

१७४८ एवं आउअवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं।

[१७४८] आयुष्य को छोड़कर शेष (उत्कृष्ट स्थिति वाले) सात कर्मों के बन्ध के विषय में पूर्ववत् जानना चाहिए।

१७४९ उक्कोसकालठितीय णं भंते ! आउअं कम्मं किं णेरइओ बंधइ जाव देवी बंधइ ?
गोयमा ! णो णेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, णो तिरिक्खजोणिणी बंधइ, मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, णो देवो बंधइ, णो देवी बंधइ ।

[१७४९ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्यकर्म को क्या नैरयिक बांधता है, यावत् देवी बांधती है ?

[१७४९ उ.] गौतम ! उसे नारक नहीं बांधता, तिर्यञ्च बांधता है, किन्तु तिर्यञ्चिनी, देव या देवी नहीं बांधती, मनुष्य बांधता है तथा मनुष्य स्त्री भी बांधती है ।

१७५० केरिसए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठितीयं आउयं कम्मं बंधइ ?
गोयमा ! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचेंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए सागारे जागरे सुतोवउत्ते मिच्छद्दिट्ठी परमकिण्हलेस्से उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे, एरिसए णं गोयमा ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठितीयं आउअं कम्मं बंधइ ।

[१७५० प्र.] भगवन् ! किस प्रकार का तिर्यञ्च उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले आयुष्यकर्म को बांधता है ?

[१७५० उ.] गौतम ! जो कर्मभूमि में उत्पन्न हो अथवा कर्मभूमिज के समान हो, संज्ञी-पंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकारोपयोग वाला हो, जाग्रत हो, श्रुत में उपयोगवान् मिथ्या-दृष्टि, परमकृष्णलेश्यावान् एवं उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला हो, ऐसा तिर्यञ्च उत्कृष्ट स्थिति वाले आयुष्यकर्म को बांधता है ।

१७५१ केरिसए णं भंते ! मणूसे उक्कोसकालठितीयं आउयं कम्मं बंधइ ?
गोयमा ! कम्मभूमगे वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुतोवउत्ते सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छद्दिट्ठी वा कण्हलेसे वा सुक्कलेसे वा णाणी वा अण्णाणी वा उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे वा तप्पाउग्गविसुज्झमाणपरिणामे वा, एरिसए णं गोयमा ! मणूसे उक्कोसकालठिईयं आउअं कम्मं बंधइ ।

[१७५१ प्र.] भगवन् ! किस प्रकार का मनुष्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्यकर्म को बांधता है ?

[१७५१ उ.] गौतम ! जो कर्मभूमिज हो अथवा कर्मभूमिज के सदृश हो यावत् श्रुत में उपयोग वाला हो, सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि हो, कृष्णलेश्यी हो या शुक्ललेश्यी हो, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला हो, अथवा तत्प्रायोग्य विशुद्ध होते हुए परिणाम वाला हो, हे गौतम ! इस प्रकार का मनुष्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्यकर्म को बांधता है ।

१७५२ केरिसिया णं भंते ! मणूसी उक्कोसकालठितीयं आउयं कम्मं बंधइ ?
गोयमा ! कम्मभूमिगा वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुतोवउत्ता सम्मद्दिट्ठी सुक्कलेसा तप्पाउग्गविसुज्झमाणपरिणामा एरिसिया णं गोयमा ! मणूसी उक्कोसकालठितीयं आउयं कम्मं बंधइ ।

[१७५२ प्र.] भगवन् ! किस प्रकार की मनुष्य-स्त्री उत्कृष्ट काल की स्थितिवाले आयुष्यकर्म को बांधती है ?

[१७५२ उ.] गौतम ! जो कर्मभूमि में उत्पन्न हो अथवा कर्मभूमिजा के समान हो यावत् श्रुत में उपयोग वाली हो, सम्यग्दृष्टि हो, शुक्ललेश्यावाली हो, तत्प्रायोग्य विशुद्ध होते हुए परिणाम वाली हो, हे गौतम ! इस प्रकार की मनुष्य-स्त्री उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्यकर्म को बांधती है।

१७५३. अंतराइयं जहा णाणावरणिज्जं (१७४५-४७)।

[१७५३] उत्कृष्ट स्थिति वाले अन्तरायकर्म के बंध के विषय में (सू. १७४५-४७ में उक्त) ज्ञानावरणीयकर्म के समान जानना चाहिए।

[बीओ उद्देसओ समत्तो]

॥ पण्णवणाए भगवतीए तेवीसइमं कम्मे त्ति पदं समत्तं ॥

विवेचन—निष्कर्ष—आयुकर्म को छोड़कर शेष सातों उत्कृष्ट स्थिति वाले कर्मों को पूर्वोक्त विशेषता वाले नारक, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चिनी, मनुष्य, मानुषी, देव या देवी बांधती है। उत्कृष्ट स्थिति वाले आयुष्यकर्म को तिर्यञ्च, मनुष्य और मानुषी बांधते हैं, किन्तु नारक, तिर्यञ्चिनी, देव और देवी नहीं बांधती, क्योंकि इन चारों के उत्कृष्ट आयुकर्म का बन्ध नहीं होता।[1]

कठिन शब्दार्थ—कम्मभूमिगपलिभागी—जो कर्मभूमि में जन्मे हुए के समान हो। अर्थात् कर्मभूमिजा गर्भिणी तिर्यञ्चनी का अपहरण करके किसी ने यौगलिक क्षेत्र में रख दिया हो और उससे जो जन्मा हो ऐसा तिर्यञ्च। सागारे—साकारोपयोग वाला। सुतोवउत्ते—श्रुत (शास्त्र) में उपयोग वाला। सुक्कलेस्से—शुक्ललेश्यी। तप्पाउग्गविसुज्झमाण-परिणामे—उसके योग्य विशुद्ध परिणाम वाला हो।

॥ दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का तेईसवाँ कर्मप्रकृतिपद सम्पूर्ण ॥

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ. ३८३-३८४
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनीटीका) भा. ५, पृ. ४५१ से ४५६ तक

चउवीसइमं कम्मबंधपयं

चौवीसवाँ कर्मबन्धपद

ज्ञानावरणीयकर्म के बंध के समय अन्य कर्मप्रकृतियों के बन्ध की प्ररूपणा

१७५४ [१] कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ । तं जहा—णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं ।

[१७५४-१ प्र] भगवन् ! कर्म-प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?

[१७५४-१ उ] गौतम ! कर्म-प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

[१७५४-२] इसी प्रकार नैरयिकों (से लेकर) वैमानिकों तक (ये आठ कर्मप्रकृतियाँ हैं ।)

१७५५ जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा ।

[१७५५-प्र] भगवन् ! (एक) जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियों को बांधता है ?

[१७५५-उ] गौतम ! वह सात, आठ या छह कर्मप्रकृतियों का बन्धक होता है ।

१७५६ [१] णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा ।

[१७५६-१ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?

[१७५६-१ उ] गौतम ! वह सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ।

[२] एवं जाव वेमाणिए । णवरं मणूसे जहा जीवे (सु. १७५५) ।

[१७५६-२] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि मनुष्य सम्बन्धी कथन (सू. १७५५ उल्लिखित) समुच्चय-जीव के समान जानना चाहिए ।

१७५७ जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीओ बंधंति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३ ।

[१७५७-प्र] भगवन् ! (बहुत) जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

[१७५७-उ] गौतम ! १ सभी जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं, २ अथवा बहुत से जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के बन्धक और कोई एक जीव छह का बन्धक होता है, ३ अथवा बहुत से जीव सात, आठ या छह कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं।

१७५८ [१] णेरइया णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीओ बंधंति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य, ३ तिण्णि भंगा।

[१७५८-१ प्र] भगवन् ! (बहुत से) नैरयिक ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्म-प्रकृतियाँ बांधते हैं ?

[१७५८-१ उ] गौतम ! १ सभी नैरयिक सात कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं २ अथवा बहुत से नैरयिक सात कर्म-प्रकृतियों के बन्धक और एक नैरयिक आठ कर्म-प्रकृतियों का बन्धक होता है, ३ अथवा बहुत से नैरयिक सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं। ये तीन भंग होते हैं।

[२] एवं जाव थणियकुमारा।

[१७५८-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए।

१७५९ [१] पुढविक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबंधगा वि।

[१७५९-१ प्र] भगवन् ! (बहुत) पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

[१७५९-१ उ] गौतम ! वे सात कर्मप्रकृतियों के भी बन्धक होते हैं, आठ कर्मप्रकृतियों के भी।

[२] एवं जाव वणस्सइकाइया।

[१७५९-२] इसी प्रकार यावत् (बहुत) वनस्पतिकायिक जीवों के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

१७६० विगलाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण य तियभंगो— सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३।

[१७६०] विकलेन्द्रियों और तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रियजीवों के तीन भंग होते हैं—१ सभी सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक होते हैं, २ अथवा बहुत-से सात कर्मप्रकृतियों के और कोई एक आठ कर्मप्रकृतियों का बन्धक होता है, ३ अथवा बहुत-से सात के तथा बहुत से आठ कर्मप्रकृतियों के बन्धक होते हैं।

१७६१ मणूसा णं भंते ! णाणावरणिज्जस्स पुच्छा।

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधए य ४ अहवा सत्त

विहबधगा य छव्विहबधगा य ५ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधए य छव्विहबधए ६ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगे य छव्विहबधगा य ७ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबधए य ८ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबधगा य ९, एव एते णव भगा । सेसा वाणमतराइया जाव वेमाणिया जहा णेरइया सत्तविहादिबधगा भणिया (सु १७५८ [१]) तहा भाणियव्वा ।

[१७६१ प्र] भगवन् ! (बहुत-से) मनुष्य ज्ञानावरणीयकर्म को बाधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियो को बाधते हैं ?

[१७६१ उ] गौतम ! १ सभी मनुष्य सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक होते हैं, २ अथवा बहुत-से मनुष्य सात के बन्धक और कोई एक मनुष्य आठ का बन्धक होता है, ३ अथवा बहुत-से सात के तथा आठ के बन्धक होते हैं, ४ अथवा बहुत-से मनुष्य सात के और कोई एक मनुष्य छह का बन्धक होता है, ५ बहुत से मनुष्य सात के और बहुत-से छह के बन्धक होते हैं, ६ अथवा बहुत से सात के बन्धक होते ह तथा एक आठ का एव कोई एक छह का बन्धक होता है, ७ अथवा बहुत-से सात के बन्धक कोई एक आठ का बन्धक और बहुत-से छह के बन्धक होते ह, ८ अथवा बहुत-से सात के, बहुत से आठ के और एक छह का बन्धक होता है, ९ अथवा बहुत-से सात के, बहुत से आठ के और बहुत से छह के बन्धक होते हैं । इस प्रकार ये कुल नौ भग होते ह ।

शेष वाणव्यन्तरादि (से लेकर) यावत् वैमानिक-पर्यन्त जसे (सू १७५८-१ मे) नरयिक सात आदि कर्म प्रकृतियो के बन्धक कहे हैं, उसी प्रकार कहने चाहिए ।

दर्शनावरणीयकर्मबन्ध के साथ अन्य कर्मप्रकृतियो के बन्ध का निरूपण

१७६२ एव जहा णाणावरण बधमाणा जाहि भणिया दसणावरण पि बधमाणा ताहि जीवा-दीया एगत्त-पोहत्तेहि भाणियव्वा ।

[१७६२] जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म को बाधते हुए जिन कर्म-प्रकृतियो के बन्ध का कथन किया, उसी प्रकार दर्शनावरणीयकर्म को बाधते हुए जीव आदि के विषय मे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से उन कर्म प्रकृतियो के बन्ध का कथन करना चाहिए ।

विवेचन—ज्ञान दर्शनावरणीय कर्म-बन्ध के साथ अन्य कर्म प्रकृतियो के बन्ध का निरूपण (१) समुच्चयजीव—सात, आठ या छह कर्मप्रकृतियो के बन्धक कैसे ?—जीव जब ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध करता है, तब यदि आयुष्यकर्म का बन्ध न करे तो सात प्रकृतियाँ, यदि आयुष्य-बन्ध करे तो आठ कर्मप्रकृतियाँ बाधता है और जब मोहनीय और आयु दोनों का बन्ध नहीं करता, तब छह कर्मप्रकृतियो का बन्ध करता है । ऐसे जीव सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानवर्ती है जो मोहनीय और आयु को छोडकर शेष छह कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं । केवल एक सातावेदनीय कर्मप्रकृति बांधने वाला ग्यारहवें (उपशान्त मोहनीय), बारहवें (क्षीण मोहनीय) और तेरहवें (सयोगी केवली) गुणस्थानवर्ती जीव होता है । उस समय वे दो समय की स्थितिवाला सातावेदनीय बांधते हैं । ज्ञानावरणादि बन्ध नहीं होता, क्योंकि उपशान्तकषाय आदि जीवों के ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का विच्छेद सूक्ष्मसम्पराय नामक दसवें गुणस्थान के चरम समय में ही हो जाता है । (२) नारकादि जीव—

नारक जीव ज्ञानावरणीय का बन्ध करता हुआ जब आयुकर्म का बन्ध नहीं करता तब सात का बंध करता है और जब आयुष्यकर्म का बंध करता है, तब आठ कर्मप्रकृतियों का बंधक होता है। नारक जीव में छह कर्मप्रकृतियों के बंध का विकल्प सम्भव नहीं है, क्योंकि वह सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मनुष्य को छोड़कर शेष सभी प्रकार के जीवों (दण्डकों) में पूर्वोक्त दो विकल्प (सात या आठ के बंध के) ही समझने चाहिए, क्योंकि उन्हें सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान प्राप्त न होने से उनमें तीसरा (छह प्रकृतियों के बंध का) विकल्प सम्भव नहीं है। मनुष्य का कथन सामान्य जीव के समान है। अर्थात्—मनुष्य में तीनों भंग पाये जाते हैं। (३) बहुत्व की अपेक्षा से समुच्चय जीव के ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्मबन्ध के साथ अन्य कर्मबन्धन—सभी जीव आयुकर्म बंध के अभाव में सात के और उसके बंध के सद्भाव में आठ कर्मप्रकृतियों के बंधक होते हैं। बहुत्व-विवक्षा में सात या आठ के बंधक तो सदैव बहुसंख्या में पाये जाते हैं, किन्तु छह के बंधक किसी काल-विशेष में ही पाये जाते हैं और किसी काल में नहीं पाये जाते, क्योंकि उसका अन्तरकाल छह महीने तक का कहा गया है। जब एक षड्विधबंधक नहीं पाया जाता, तब प्रथम भंग होता है, जब एक पाया जाता है तो द्वितीय और जब बहुत षड्विधबंधक जीव पाये जाते हैं, तब तृतीय विकल्प होता है।

वेदनीय कर्मबन्ध के साथ अन्य कर्मप्रकृतियों के बन्ध का निरूपण

१७६३ [१] वेयणिज्जं बंधमाणे जीवे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा।

[१७६३-१ प्र.] भगवन् ! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ एक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?

[१७६३-१ उ.] गौतम ! सात का, आठ का, छह का अथवा एक प्रकृति का बन्धक होता है।

[२] एवं मणूसे वि।

[१७६३-२] मनुष्य के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना चाहिए।

[३] सेसा णारगादीया सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य जाव वेमाणिए।

[१७६३-३] शेष नारक आदि सप्तविध और अष्टविध बन्धक होते हैं, वैमानिक तक इसी प्रकार कहना चाहिए।

१७६४ जीवा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगे य १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य २।

[१७६४ प्र.] भगवन् ! बहुत जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं ?

[१७६४ उ.] गौतम ! सभी जीव सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकप्रकृतिबन्धक और एक जीव छहप्रकृतिबन्धक होता है १, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक या छहविधबन्धक होते हैं २।

१७६५ [१] अवसेसा णारगादीया जाव वेमाणिया जाओ णाणावरणं बंधमाणा बंधति ताहिं भाणियव्वा।

[१७६५-१] शेष नारकादि से वैमानिक पर्यन्त ज्ञानावरणीय को बांधते हुए जितनी प्रकृतियों को बांधते हैं, उतनी का बन्ध यहाँ भी कहना चाहिए।

[२] णवरं मणूसा णं भंते! वेदणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीओ बंधति ?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य १ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए २ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगे य ४ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ५ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य ६ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य ७ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य ८ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ९, एवं णव भंगा।

[१७६५-२] विशेष यह है कि भगवन्! मनुष्य वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

गौतम! सभी मनुष्य सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं १, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक और एक अष्टविधबन्धक होता है २, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक और बहुत अष्टविधबन्धक होते हैं ३, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है ४, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, बहुत षड्विधबन्धक होते हैं ५, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, एक अष्टविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है ६, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, एक अष्टविधबन्धक और बहुत षड्विधबन्धक होते हैं ७, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, बहुत अष्टविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है ८, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, बहुत अष्टविधबन्धक और बहुत षड्विधबन्धक होते हैं ९। इस प्रकार नौ भंग होते हैं।

मोहनीय आदि कर्मों के बन्ध के साथ अन्य कर्मप्रकृतियों के बन्ध का निरूपण

१७६६. मोहणिज्जं बंधमाणे जीवे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। जीवेगिंदिया सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबंधगा वि।

[१७६६ प्र.] भगवन्! मोहनीय कर्म बांधता जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

[१७६६ उ.] गौतम! सामान्य जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहना चाहिए। जीव और एकेन्द्रिय सप्तविधबन्धक भी और अष्टविधबन्धक भी होते हैं।

नारक जीव ज्ञानावरणीय का बन्ध करता हुआ जब आयुकर्म का बन्ध नही करता तब सात का बध करता है और जब आयुष्यकर्म का बध करता है, तब आठ कर्मप्रकृतियो का बधक होता है। नारक जीव मे छह कर्मप्रकृतियो के बध का विकल्प सम्भव नही है, क्योकि वह सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान को प्राप्त नही कर सकता। अत मनुष्य को छोडकर शेष सभी प्रकार के जीवो (दण्डको) मे पूर्वोक्त दो विकल्प (सात या आठ के बध के) ही समझने चाहिए, क्योकि उन्हें सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान प्राप्त न होने से उनमे तीसरा (छह प्रकृतियो के बध का) विकल्प सम्भव नही है। मनुष्य का कथन सामान्य जीव के समान है। अर्थात्—मनुष्य मे तीनो भग पाये जाते हैं। (३) बहुत्व की अपेक्षा से समुच्चय जीव के ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्मबन्ध के साथ अन्य कर्मबन्धन—सभी जीव आयुकर्म बध के अभाव मे सात के और उसके बध के सद्भाव में आठ कर्मप्रकृतियो के बधक होते है। बहुत्व-विवक्षा मे सात या आठ के बधक तो सदैव बहुसख्या मे पाये जाते हैं, किन्तु छह के बधक किसी काल-विशेष में ही पाये जाते हैं और किसी काल मे नही पाये जाते, क्योकि उसका अन्तरकाल छह महीने तक का कहा गया है। जब एक षड्विधबधक नही पाया जाता, तब प्रथम भग होता है, जब एक पाया जाता है तो द्वितीय और जब बहुत षड्विधबधक जीव पाये जाते हैं, तब तृतीय विकल्प होता है।

वेदनीय कर्मबन्ध के साथ अन्य कर्मप्रकृतियो के बन्ध का निरूपण

१७६३ [१] वेयणिज्जं बंधमाणे जीवे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा।

[१७६३-१ प्र] भगवन् ! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ एक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?

[१७६३-१ उ] गौतम ! सात का, आठ का, छह का अथवा एक प्रकृति का बन्धक होता है।

[२] एवं मणूसे वि।

[१७६३-२] मनुष्य के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना चाहिए।

[३] सेसा णारगादीया सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य जाव वेमाणिए।

[१७६३-३] शेष नारक आदि सप्तविध और अष्टविध बन्धक होते हैं, वैमानिक तक इसी प्रकार कहना चाहिए।

१७६४ जीवा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्म० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगे य १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य २।

[१७६४ प्र] भगवन् ! बहुत जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं ?

[१७६४ उ] गौतम ! सभी जीव सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकप्रकृतिबन्धक और एक जीव षट्प्रकृतिबन्धक होता है १, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक या षड्विधबन्धक होते हैं २।

१७६५ [१] श्रवसेसा णारगादीया जाव वेमाणिया जाओ णाणावरणं बंधमाणा बंधति ताहिं भाणियव्वा ।

[१७६५-१] शेष नारकादि से वैमानिक पर्यन्त ज्ञानावरणीय को बांधते हुए जितनी प्रकृतियों को बांधते हैं, उतनी का बन्ध यहाँ भी कहना चाहिए।

[२] णवरं मणूसा णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीश्रो बंधति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य १ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए २ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगे य ४ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ५ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य ६ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य ७ अहवा सत्तविहबंधगा य एग-विहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य ८ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविह-बंधगा य छव्विहबंधगा य ९, एवं णव भंगा ।

[१७६५-२] विशेष यह है कि भगवन् ! मनुष्य वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्म-प्रकृतियों को बांधते हैं ?

गौतम ! सभी मनुष्य सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं १, अथवा बहुत सप्तविध-बन्धक, बहुत एकविधबन्धक और एक अष्टविधबन्धक होता है २, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक और बहुत अष्टविधबन्धक होते हैं ३, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है ४, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, बहुत षड्-विधबन्धक होते हैं ५, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, एक अष्टविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक, होता है ६, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, एक अष्टविध-बन्धक और बहुत षड्विध बन्धक होते हैं ७, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, बहुत अष्टविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है ८, अथवा बहुत सप्तविधबन्धक, बहुत एकविधबन्धक, बहुत अष्टविधबन्धक और बहुत षड्विधबन्धक होते हैं ९ । इस प्रकार नौ भंग होते हैं ।

मोहनीय आदि कर्मों के बन्ध के साथ अन्य कर्मप्रकृतियों के बन्ध का निरूपण

१७६६ मोहणिज्जं बंधमाणे जीवे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो । जीवेगिंदिया सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबंधगा वि ।

[१७६६ प्र] भगवन् ! मोहनीय कर्म बांधता जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

[१७६६ उ] गौतम ! सामान्य जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहना चाहिए। जीव और एकेन्द्रिय सप्तविधबन्धक भी और अष्टविधबन्धक भी होते हैं।

१७६७ [१] जीवे ण भंते ! आउअं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! णियमा अट्ठ । एवं णेरइए जाव वेमाणिए ।

[१७६७-१ प्र.] भगवन् ! आयुकर्म को बांधता जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

[१७६७-१ उ.] गौतम ! नियम से आठ प्रकृतियाँ बांधता है । नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में इसी प्रकार कहना चाहिए ।

[२] एवं पुहत्तेण वि ।

[२] इसी प्रकार बहुतों के विषय में भी कहना चाहिए ।

१७६८ [१] णाम-गोय-अंतरायं बंधमाणे जीवे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! जाओ णाणावरणिज्जं बंधमाणे बंधइ ताहिं भाणियव्वो ।

[१७६८-१ प्र.] भगवन् ! नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म को बांधता जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?

[१७६८-१ उ.] गौतम ! ज्ञानावरणीय को बांधने वाला जिन कर्मप्रकृतियों को बांधता है, वे ही यहाँ कहनी चाहिए ।

[२] एवं णेरइए वि जाव वेमाणिए ।

[१७६८-२] इसी प्रकार नारक से लेकर वैमानिक तक कहना चाहिए ।

[३] एवं पुहत्तेण वि भाणियव्वं ।

[१७६८-३] इसी प्रकार बहुवचन में भी समझ लेना चाहिए ।

॥ पण्णवणाए भगवतीए चउवीसइमं कम्मबंधपयं समत्तं ॥

विवेचन—वेदनीयकर्मबंध के समय अन्य प्रकृतियों का बंध—वेदनीय बंध के साथ कोई जीव सात का कोई आठ का और कोई छह का बंधक होता है, उपशान्तमोह आदि वाला कोई एक ही प्रकृति का बंधक होता है । मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही कथन समझना चाहिए । नारकादि कोई सात और कोई आठ के बन्धक होते हैं ।

बहुत जीव (समुच्चय) पद में—सभी सात के या बहुत आठ के, बहुत-से एक के, कोई एक छह का बंधक होता है । अथवा बहुत सात के, बहुत आठ के, बहुत एक के और बहुत छह के बंधक होते हैं । शेष नारकों से वैमानिकों तक में ज्ञानावरणीयकर्मबंध के कथन के समान है । मनुष्यों के सम्बन्ध में ९ भंग मूल पाठ में उल्लिखित हैं ।

मोहनीय का बन्धक समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय [illegible] कर्मबंध के समय ७ या ८ के बंधक होते हैं । मोहनीयकर्म का बन्धक छह प्रकृतियों का [illegible] क्योंकि ६ प्रकृतियों का बंध सूक्ष्मसम्पराय नामक दसवें [illegible] होता है, मोह[illegible] नावें गुणस्थान तक ही होता है ।

आयुकर्मबन्ध के साथ अन्य कर्मों का बन्ध—आयुकर्मबंधक जीव नियम से ८ प्रकृतियों का बंध करता है। २४ दण्डकवर्ती जीवों का भी इसी प्रकार कथन जानना।

नाम, गोत्र व अन्तराय कर्म के साथ अन्य कर्मों का बन्ध—ज्ञानावरणीयकर्म के साथ जिन प्रकृतियों का बंध बताया है, उन्हीं प्रकृतियों का बंध इन तीनों कर्मों के बंध के साथ होता है।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का चौवीसवां कर्मबन्धपद समाप्त ॥

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (मू पा टि) भाग १, पृ ३८५ से ३८७ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५ पृ ४६७ से ४८४ तक
(ग) मलयगिरिवृत्ति, पत्र २४ पर

पंचवीसइमं कम्मबंधवेयपयं

पच्चीसवां कर्मबन्धवेदपद

जीवादि द्वारा ज्ञानावरणीयादि कर्मबन्ध के समय कर्म-प्रकृतिवेद का निरूपण

१७६९ [१] कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ । तं जहा—णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं ।

[१७६९-१ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?

[१७६९-१ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई हैं, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

[१७६९-२] इसी प्रकार नैरयिकों (से लेकर) यावत् वैमानिकों तक (के ये ही आठ कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं ।

१७७० [१] जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीओ वेदेइ ?

गोयमा ! णियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेदेइ ।

[१७७०-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध करता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

[१७७०-१ उ] गौतम ! वह नियम से आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ।

[२] एवं णेरइए जाव वेमाणिए ।

[१७७०-२] इसी प्रकार (एक) नैरयिक से लेकर एक वैमानिक पर्यन्त (जीवों में इन्हीं आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन जानना चाहिए) ।

१७७१ एवं पुहत्तेण वि ।

[१७७१] इसी प्रकार बहुत (नारकों से लेकर बहुत वैमानिकों तक) के विषय में (कहना चाहिए) ।

१७७२ एवं वेयणिज्जवज्जं जाव अंतराइयं ।

[१७७२] वेदनीयकर्म को छोड़कर शेष सभी (छह) कर्मों के सम्बन्ध में इसी प्रकार (ज्ञानावरणीयकर्म के समान जानना चाहिए) ।

१७७३ [१] जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ ?

गोयमा ! सत्तविहवेयए वा अट्ठविहवेयए वा चउव्विहवेयए वा ।

[१७७३-१ प्र] भगवन् ! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

[१७७३-१ उ] गौतम ! वह सात (कर्मप्रकृतियों) का, आठ का अथवा चार (कर्मप्रकृतियों) वेदन करता है।

[२] एवं मणूसे वि। सेसा णेरइयाई एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णियमा अट्ठ कम्मपगडीयो वेदेंति, जाव वेमाणिया।

[१७७३-२] इसी प्रकार मनुष्य के (द्वारा कर्मप्रकृतियों के वेदन के) सम्बन्ध में (कहना चाहिए)। शेष नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त एकत्व की विवक्षा से भी और बहुत्व की विवक्षा से भी जीव नियम से आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

१७७४ [१] जीवा णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीओ वेदेंति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य १ अहवा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य सत्तविहवेदगे य २ अहवा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य सत्तविहवेदगा य ३।

[१७७४-१ प्र] भगवन् ! बहुत जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ?

[१७७४-१ उ] गौतम ! १ सभी जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए आठ या चार कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं, २ अथवा बहुत जीव आठ या चार कर्मप्रकृतियों के और कोई एक जीव सात कर्मप्रकृतियों का वेदक होता है, ३ अथवा बहुत जीव आठ, चार या सात कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं।

[२] एवं मणूसा वि भाणियव्वा।

[१७७४-२] इसी प्रकार बहुत-से मनुष्यों द्वारा वेदनीयकर्मबंध के समय वेदन सम्बन्धी कथन करना चाहिए।

॥ पण्णवणाए भगवतीए पंचवीसइमं कम्मबंधवेदपयं समत्तं ॥

विवेचन—कर्मबन्ध के समय कर्मवेदन की चर्चा के पांच निष्कर्ष—१ समुच्चय जीव के सम्बन्ध में उल्लिखित वक्तव्यतानुसार नैरयिक, असुरकुमारादि भवनपति, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक भी एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से ज्ञानावरणीयकर्म का बंध करते हुए नियम से आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

२ इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सभी कर्मों (दर्शनावरणीय, नाम, गोत्र, आयुष्य, मोहनीय और अन्तराय) के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

३ समुच्चय जीव एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से वेदनीयकर्म का बंध करते हुए सात, आठ अथवा चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं। इसका कारण यह है कि उपशान्तमोह और क्षीणमोह जीव सात कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं, क्योंकि उनके मोहनीयकर्म का वेदन नहीं होता। मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसम्पराय (दसवें गुणस्थान) पर्यन्त जीव आठों कर्मप्रकृतियों का वेदन

करते हैं और सयोगी केवली चार अघाति कर्मप्रकृतियों का ही वेदन करते हैं, क्योंकि उनके चार घातिकर्मों का उदय नहीं होता।

४ समुच्चय जीव के समान एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से मनुष्य के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए। अर्थात्—एक या बहुत मनुष्य वेदनीयकर्म का बन्ध करते हुए सात, आठ या चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

५ मनुष्य के सिवाय शेष सभी नारक आदि जीव एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से वेदनीय कर्म का बन्ध करते हुए नियम से आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का पच्चीसवाँ कर्मबन्धवेदपद सम्पूर्ण ॥

१ (क) पण्णवणासुत्तं भाग १ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ३८८
(ख) प्रज्ञापनासूत्र भाग ५ (प्रमेयबोधिनी टीका) पृ ४८९-४९०

छव्वीसइमं कम्मवेयबंधपयं

छव्वीसवाँ कर्मवेदबन्धपद

ज्ञानावरणीयादि कर्मों के वेदन के समय अन्य कर्मप्रकृतियो के बन्ध का निरूपण

१७७५ [१] कति ण भते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ । त जहा—णाणावरणिज्ज जाव अतराइय ।

[१७७५-१ प्र] भगवन् ! कमप्रकृतिया कितनी कही हैं ?

[१७७५ १ उ] गौतम ! कमप्रकृतिया आठ कही हैं यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

[२] एव णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

[१७७५-२] इसी प्रकार नैरयिको से लेकर यावत् वमानिको तक आठ कमप्रकृतिया होती हैं ।

१७७६ जीवे ण भते ! णाणावरणिज्ज कम्म वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ बधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबधए वा अट्ठविहबधए वा छव्विहबधए वा एगविहबधए वा ।

[१७७६ प्र] भगवन् ! (एक) जीव ज्ञानावरणीयकम का वेदन करता हुआ कितनी कम-प्रकृतियो का ब ध करता है ?

[१७७६ उ] गौतम ! वह सात, आठ, छह या एक कमप्रकृति का बध करता है ।

१७७७ [१] णेरइए ण भते ! णाणावरणिज्ज कम्म वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ बधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबधए वा अट्ठविहबधए वा ।

[१७७७ १ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक जीव ज्ञानावरणीयकर्म को वेदता हुआ कितनी कमप्रकृतिया का ब ध करता है ?

[१७७७-१ उ] गौतम ! वह सात या आठ कमप्रकृतियो का बध करता है ।

[२] एव जाव वेमाणिए । णवर मणूसे जहा जीवे (सु १७७६) ।

[१७७७-२] इसी प्रकार (असुरकुमारादि भवनवासी से लेकर) वमानिक पय त जानना चाहिए । पर तु मनुष्य का कथन (सू १७७६ मे उल्लिखित) सामा य जीव के कथन के समान है ।

१७७८ जीवा ण भते ! णाणावरणिज्ज कम्म वेदेमाणा कति कम्मपगडीओ बधति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य १ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबधए य २ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य छव्विहबधगा य ३ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य एगविहबधगे य ४ अहवा सत्तविहबधगा य अट्ठविहबधगा य

एगविहबंधगा य ५ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य एगविहबंधए य ६ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य एगविहबंधगा य ७ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य एगविहबंधए य ८ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य एगविहबंधगा य ९, एवं एते नव भंगा।

[१७७८ प्र.] भगवन् ! (बहुत) जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं ?

[१७७८ उ.] गौतम ! १ सभी जीव सात या आठ कर्मप्रकृतियों के बंधक होते हैं, २ अथवा बहुत जीव सात या आठ के बंधक होते हैं और एक छह का बंधक होता है, ३ अथवा बहुत जीव सात, आठ और छह के बंधक होते हैं, ४ अथवा बहुत जीव सात के और आठ के तथा कोई एक प्रकृति का बंधक होता है, ५ अथवा बहुत जीव सात, आठ और एक के बंधक होते हैं, ६ या बहुत जीव सात के तथा आठ के, एक जीव छह का और एक जीव एक का बंधक होता है, ७ अथवा बहुत जीव सात के या आठ के, एक जीव छह का और बहुत जीव एक के बंधक होते हैं, ८ अथवा बहुत जीव सात के, आठ के, छह के तथा एक के बंधक होते हैं। ९ अथवा बहुत जीव आठ के, सात के, छह के और एक के बंधक होते हैं। इस प्रकार ये कुल नौ भंग हुए।

१७७९. अवसेसाणं एगिंदिय-मणूसवज्जाणं तियभंगो जाव वेमाणियाणं।

[१७७९] एकेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों को छोड़कर शेष जीवों यावत् वैमानिकों के तीन भंग कहने चाहिए।

१७८०. एगिंदिया णं सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य।

[१७८०] (बहुत-से) एकेन्द्रिय जीव सात के और आठ के बंधक होते हैं।

१७८१. मणूसाणं पुच्छा।

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधए य, एवं छव्विहबंधएण वि समं दो भंगा ५ एगविहबंधएण वि समं दो भंगा ७ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य चउभंगो ११ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य एगविहबंधए य चउभंगो १५ अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधगे य एगविहबंधए य चउभंगो १९ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य एगविहबंधए य भंगा अट्ठ २७ एवं एते सत्तावीसं भंगा।

[१७८१ प्र.] पूर्ववत् मनुष्यों के सम्बन्ध में प्रश्न है।

[१७८१ उ.] गौतम ! (१) सभी मनुष्य सात कर्मप्रकृतियों के बंधक होते हैं, (२) अथवा बहुत-से सात और एक आठ कर्मप्रकृति बांधता है, (३) अथवा बहुत-से मनुष्य सात के और एक छह का बन्धक है, (४-५) इसी प्रकार छह के बंधक के साथ भी दो भंग होते हैं, (६-७) तथा एक के बंधक के साथ भी दो भंग होते हैं, (८-११) अथवा बहुत-से सात के बंधक, एक आठ का और एक छह का बंधक, यों चार भंग हुए, (१२-१५) अथवा बहुत से सात के बंधक, एक आठ का और एक मनुष्य एक प्रकृति का बंधक, यों चार भंग हुए, (१६-१९) अथवा बहुत-से सात के बंधक तथा

एक छह का और एक, एक का ब धक, इसके भी चार भग हुए, (२०-२७) अथवा बहुत से सात के बधक, एक आठ का, एक छह का और एक, एक कमप्रकृति का ब धक होता है, यो इसके आठ भग होते हैं। कुल मिलाकर ये सत्ताईस भग होते हैं।

१७८२ एव जहा णाणावरणिज्ज तहा दरिसणावरणिज्ज पि अतराइय पि ।

[१७८२] जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकम के ब धक का कथन किया, उसी प्रकार दशनावरणीय एव अ तराय कम के ब धक का कथन करना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत पद मे कमसिद्धात के इस पहलू पर विचार किया गया है कि कौन जीव किस किस कम का वदन करता हुआ किस-किस कम का ब ध करता है ? अर्थात् किस कम का उदय होने पर किस कम का ब ध होता है, इस प्रकार कर्मोदय और कमबन्ध के सम्ब ध का निरूपण किया गया है।

ज्ञानावरणीयकम का वेदन और बन्ध—(१) कोई जीव आयु को छोडकर ७ कमप्रकृतियो का ब ध करता है (२) कोई आठो का बन्ध करता है, (३) कोई आयु और मोह को छोडकर छह कमप्रकृतियो का ब ध करता है, (४) उपशा तमोह और क्षीणमोह केवल एक वेदनीयकम का ब ध करता है, (५) सयोगीकेवली ज्ञानावरणीयकम का वेदन ही नही करते।

नैरयिक से लेकर वैमानिक तक पूर्वोक्त युक्ति से ज्ञानावरण का वेदन करते हुए ७ या ८ कम-प्रकृतियो का ब ध करते हैं।

मनुष्य सम्ब धी कथन—मनुष्य सामान्य जीववत् ज्ञानावरणीयकम का वेदन करता हुआ सात, आठ, छह या एक प्रकृति का बन्ध करता है।

बहुत्व की विवक्षा से—बहुत समुच्चय जीवों के विषय मे नौ भग

(१) सभी ज्ञानावरणीयकमवेदक जीव ७ या ८ कर्मो के ब धक होते हैं।

(२) अथवा बहुत-से सात के ब धक, बहुत-से आठ के बन्धक और कोई एक जीव छह का ब धक होता है। (सूक्ष्मसम्पराय की अपेक्षा से)।

(३) बहुत-से सात के, बहुत से आठ के और बहुत-से छह के ब धक होते हैं।

(४) अथवा बहुत से सात के और बहुत,से आठ के बन्धक होते हैं और कोई एक जीव (उपशान्तमोह या क्षीणमोह) एक का ब धक होता है।

(५) अथवा बहुत-से सात के, बहुत-से आठ के और बहुत से एक के ब धक होते हैं।

(६) अथवा बहुत-से सात के और बहुत से आठ के ब धक होते है तथा एक जीव छह का और एक जीव एक का ब धक होता है।

(७) अथवा बहुत-से जीव सात के और बहुत से जीव आठ के बन्धक होते हैं तथा एक छह का ब धक होता है एव बहुत से (उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थान वाले) एक के बन्धक होते हैं।

(८) अथवा बहुत-से सात के, बहुत-से आठ के एव बहुत से छह के ब धक होते हैं और कोई एक जीव एक का ब धक होता है।

(९) अथवा बहुत-से सात के, बहुत-से आठ के, बहुत से छह के और बहुत से एक के बंधक होते हैं।

इस प्रकार समुच्चय जीवों के विषय में ये (उपर्युक्त) ९ भंग होते हैं। छह और एक प्रकृति के बंध का तथा इन दोनों के अभाव में सात अथवा आठ प्रकृतियों के बंध का कारण पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए।

एकेन्द्रियों और मनुष्यों के सिवाय शेष नैरयिक आदि दण्डकों के तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रियों में कोई विकल्प (भंग) नहीं होता, अर्थात्—वे सदैव बहुत संख्या में होते हैं, इसलिए बहुत सात के और बहुत आठ के बंधक ही होते हैं। मनुष्यों में २७ भंगों का चार्ट इस प्रकार है—(ब से बहुत और ए से एक समझना चाहिए।)

क्रम								
	१	२	३	४	५	६	७	= असंयोगी = १ भंग
१	सभी ७	ब एक ७ ८	ब ब ७ ८	ब एक ७ ६	ब ब ७ ६	ब एक ७ १	ब ब ७ १	= द्विकसंयोगी ६ भंग, कुल ७ भंग
	८	९	१०	११				
२	ब एक एक ७ ८ ६	ब ब ब ७ ८ ६	ब ब एक ७ ८ ६	ब एक ब ७ ८ ६				= आठ और छह के बंधक के त्रिकसंयोगी भंग ४
	१२	१३	१४	१५				
३	ब एक एक ७ ८ १	ब ब ब ७ ८ १	ब ब एक ७ ८ १	ब एक ब ७ ८ १				= आठ और एक के बंधक के त्रिकसंयोगी भंग ४
	१६	१७	१८	१९				
४	ब एक एक ७ ६ १	ब ब ब ७ ६ १	ब ब एक ७ ६ १	ब एक ब ७ ६ १				= सात और एक के बंधक के त्रिकसंयोगी भंग ४
	२०	२१	२२	२३				
५	ब ए ए ए ७ ८ ६ १	ब ब ब ब ७ ८ ६ १	ब ब ए ए ७ ८ ६ १	ब ब ब ए ७ ८ ६ १				
	२४	२५	२६	२७				= ८, ६, १ बंधक चतुष्कसंयोगी भंग ८[1]
	ब ब ए ब ७ ८ ६ १	ब ए ब ब ७ ८ ६ १	ब ए ए ब ७ ८ ६ १	ब ए ब ए ७ ८ ६ १				

वेदनीयकर्म के वेदन के समय अन्य कर्मप्रकृतियों के बन्ध की प्ररूपणा

१७८३ [१] जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा अबंधए वा।

[१७८३-१ प्र] भगवन् ! (एक) जीव वेदनीयकर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करता है ?

---

1. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मू. पा. टि.), पृ. ३८९
(ख) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति (अभिधान राजेन्द्रकोष भा. ३) पृ. २६ पृ. २९४-२९५
(ग) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ५०१ से ५११ तक

[१७८३-१ उ] गौतम ! वह सात, आठ, छह या एक का बन्धक होता है, अथवा अबन्धक होता है।

[२] एवं मणूसे वि। अवसेसा णारगादीया सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य। एवं जाव वेमाणिए।

[१७८३-२] इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी समझ लेना चाहिए। शेष नारक आदि वैमानिक पर्यन्त सात के बंधक हैं या आठ के बन्धक हैं।

१७८४ [१] जीवा णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं वेदेमाणा कति कम्मपगडीओ बंधंति ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३ अबंधगेण वि समं दो भंगा भाणियव्वा ५ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अबंधए य चउभंगो ९, एवं एते णव भंगा।

[१७८४-१ प्र] भगवन् ! (बहुत) जीव वेदनीयकर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्म-प्रकृतियाँ बाँधते हैं ?

[१७८४-१ उ] गौतम ! १ सभी जीव सात के, आठ के और एक के बन्धक होते हैं, २ अथवा बहुत जीव सात, आठ या एक के बन्धक होते हैं और एक छह का बन्धक होता है। ३ अथवा बहुत जीव सात, आठ, एक तथा छह के बन्धक होते हैं, ४-५ अबन्धक के साथ भी दो भंग कहने चाहिए, ६-९ अथवा बहुत जीव सात के, आठ के, एक के बंधक होते हैं तथा कोई एक छह का बन्धक होता है तथा कोई एक अबन्धक भी होता है, यों चार भंग होते हैं। कुल मिलाकर ये नौ भंग हुए।

[२] एगिंदियाणं अभंगयं।

[१७८४-२] एकेन्द्रिय जीवों को इस विषय में अभंगक जानना चाहिए।

[३] णारगादीणं तियभंगो जाव वेमाणियाणं। णवरं मणूसाणं पुच्छा।

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य १ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अट्ठविहबंधए य अबंधए य, एवं एते सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा जहा किरियासु पाणाइवायविरतस्स (सु १६४३)।

[१७८४-३] नारक आदि वैमानिकों तक के तीन तीन भंग कहने चाहिए।

[प्र] मनुष्यों के विषय में वेदनीयकर्म के वेदन के साथ कर्मप्रकृतियों के बन्ध की पृच्छा है।

[उ] गौतम ! १—बहुत-से सात के अथवा एक के बन्धक होते हैं। २—अथवा बहुत से मनुष्य सात के और एक के बन्धक तथा कोई एक छह का, एक आठ का बन्धक है या फिर अबन्धक होता है। इस प्रकार ये कुल मिलाकर सत्ताईस भंग (सू. १६४३ में उल्लिखित हैं) जैसे—प्राणातिपात-विरत की क्रियाओं के विषय में कहे हैं, उसी प्रकार कहने चाहिए।

विवेचन—वेदनीयकर्म के वेदन के क्षणों में अन्य कर्मों का बन्ध—(१) एक जीव और मनुष्य—सात, आठ, छह या एक प्रकृति का बन्धक होता है अथवा अबन्धक होता है। तात्पर्य यह है कि सयोगीकेवली, उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानवर्ती जीव वेदनीयकर्म का वेदन करते हुए केवल एक वेदनीय प्रकृति का बन्ध करते हैं, क्योंकि सयोगीकेवली में भी वेदनीयकर्म का उदय और बंध पाया जाता है। अयोगीकेवली अबन्धक होते हैं। उनमें वेदनीयकर्म का वेदन होता है, किन्तु योगों का भी अभाव हो जाने से उसका या अन्य किसी भी कर्म का बन्ध नहीं होता।

(२) मनुष्य के सिवाय नारक से वैमानिक तक—वेदनीयकर्म का वेदन करते हुए ७ या ८ कर्मप्रकृतियों का बन्ध करते हैं।

(३) बहुत से जीव—तीन भंग— सभी (१) ७ ८ १ | (२) ब ब ब ए ७ ८ १ ६ | (३) ब ब ब ब ७ ८ १ ६ | = तीन भंग

अबंधक के साथ एकत्व—बहुत्व की अपेक्षा = दो भंग (एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा)

अथवा ब ब ब ए ए
७ ८ १ ६ अ ब = ४ भंग = कुल ९ भंग समुच्चय जीवों के एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा।

(४) एकेन्द्रिय जीव—कोई विकल्प नहीं। बहु और बहु के बंध होते हैं।
७ ८

(५) मनुष्य को छोड़कर नारक से वैमानिक तक = पूर्ववत् तीन भंग।

(६) मनुष्य—(एकत्व या बहुत्व की अपेक्षा) = २७ भंग (ज्ञानावरणीयकर्म बंधवत्)[1] आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म के सम्बन्ध में वेदनीय कर्मवत्।

आयुष्यादि कर्मवेदन के समय कर्मप्रकृतियों के बन्ध की प्ररूपणा

१७८५. एवं जहा वेदणिज्जं तहा आउयं णामं गोयं च भाणियव्वं।

[१७८५] जिस प्रकार वेदनीयकर्म के वेदन के साथ कर्मप्रकृतियों के बन्ध का कथन किया गया है, उसी प्रकार आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म के विषय में भी कहना चाहिए।

१७८६. मोहणिज्जं वेदेमाणे जहा बंधे णाणावरणिज्जं तहा भाणियव्वं (सु. १७५५-६१)।

[१७८६] जिस प्रकार (सू. १७५५-६१ में) ज्ञानावरणीय कर्मप्रकृति के बन्ध का कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ मोहनीयकर्म के वेदन के साथ बन्ध का कथन करना चाहिए।

---

१. (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, ५१३ से ५१७ तक
(ख) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति (अभिधानराजेन्द्रकोष भा. ३) पद २६ पृ. २९६
(ग) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मू. पा. टि.) पृ. ३९०

॥ पण्णवणाए भगवईए छव्वीसइम कम्मवेयबधपय समत्त ॥

विवेचन—मोहनीयकर्मवेदन के साथ कर्मबन्ध—ज्ञानावरणीय के समान अर्थात्—मोहनीयकर्म का वेदन करता हुआ जीव ७,८ या ६ का बन्धक होता है, क्योंकि सूक्ष्मसम्पराय अवस्था में भी मोहनीयकर्म का वेदन होता है मगर बन्ध नही होता। इसी प्रकार का कथन मनुष्य पद में भी करना चाहिए। नारक आदि पदों में सूक्ष्मसम्परायावस्था प्राप्त न होने से वे ७ या ८ के ही बन्धक होते हैं।

बहुत्व की अपेक्षा से—जीव पद में पूर्ववत् तीन भंग—

१		२		३	
ब	ब	ब	ए	ब	ब
७	८	७	६	७	६

नारकों और भवनवासी देवों में—| ब ७ | ब ८ ए ८ |—तीन भंग

पृथ्वीकायादि स्थावरों में—प्रथम भंग—| ब ७ | ब ८ |

विकलेन्द्रिय से वैमानिक तक में—नारकों के समान तीन भंग।

मनुष्यों में—नौ भंग ज्ञानावरणीयकर्म के साथ बन्धक के समान।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का छब्बीसवाँ पद समाप्त ॥

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १ (मू पा टि) पृ ३९०
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५ पृ ५१७ से ५१९ तक
(ग) प्रज्ञापना (मलय टीका) पत्र २६ (अभि राज कोष भा ३, पृ २९६)

सत्तावीसइमं कम्मवेयवेयगपयं

सत्ताईसवाँ कर्मवेदवेदकपद

ज्ञानावरणीयादिकर्मों के वेदन के साथ अन्य कर्मप्रकृतियों के वेदन का निरूपण

१७८७ [१] कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ । तं जहा— णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं ।

[१७८७-१ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?
[१७८७-१ उ] गौतम ! वे आठ कही गई हैं यथा ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

[२] एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

[१७८७-२] इसी प्रकार नारकों (से लेकर) यावत् वैमानिकों तक (ये आठ कर्मप्रकृतियाँ हैं ।

१७८८ [१] जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ वेदेइ ?

गोयमा ! सत्तविहवेदए वा अट्ठविहवेदए वा ।

[१७८८-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता हुआ (एक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

[१७८८-१ उ] गौतम ! वह सात या आठ (कर्मप्रकृतियों) का वेदक होता है ।

[२] एवं मणूसे वि । अवसेसा एगत्तेण वि पुहत्तेण वि नियमा अट्ठविहकम्मपगडीओ वेदेंति जाव वेमाणिया ।

[१७८८-२] इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी जानना चाहिए । (मनुष्य के अतिरिक्त) शेष सभी जीव (नारक से लेकर) वैमानिक पर्यन्त एकत्व और बहुत्व की विवक्षा में नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ।

१७८९ जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं [illegible] ओ [illegible]

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा अट्ठविहवेदगा १ [illegible] य [illegible]

अहवा अट्ठविहवेदगा य सत्तविहवेदगा य ३ । एवं मणूसा

[१७८९ प्र] [illegible] जीव [illegible] वेदा [illegible]
कर्मप्रकृतियों का वेदन करते [illegible]

[१७८९ उ] [illegible] आठ [illegible] होते [illegible]
जीव आठ कर्मप्रकृतियों के [illegible] वा [illegible]

३ अथवा कई जीव आठ और कई सात कर्मप्रकृतियो के वेदक होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यपद मे भी ये तीन भंग होते हैं।

१७९० दरिसणावरणिज्ज अंतराइयं च एवं चेव भाणियव्वं।

[१७९०] दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म के साथ अन्य कर्मप्रकृतियो के वेदन के विषय मे भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

१७९१ वेदणिज्ज-आउअ-णाम-गोयाइं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ वेदेइ ?

गोयमा ! जहा बंधगवेयगस्स वेदणिज्जं (सु १७७३-७४) तहा भाणियव्वं।

[१७९१ प्र] भगवन् ! वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म का वेदन करता हुआ (एक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

[१७९१ उ] गौतम ! जैसे (सू १७७३-७४ मे) बन्धक-वेदक के वेदनीय का कथन किया गया है, उसी प्रकार वेद-वेदक के वेदनीय का कथन करना चाहिए।

१७९२ [१] जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ वेदेइ ?

गोयमा ! णियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेदेइ।

[१७९२-१ प्र] भगवन् ! मोहनीयकर्म का वेदन करता हुआ (एक) जीव कितनी कर्म-प्रकृतियो का वेदन करता है ?

[१७९२-१ उ] गौतम ! वह नियम से आठ कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है।

[२] एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

[१७९२-२] इसी प्रकार नारक से लेकर वैमानिक पर्यन्त (आठो ही कर्मप्रकृतियो का) वेदन होता है।

[३] एवं पुहत्तेण वि।

[१७९२-३] इसी प्रकार बहुत्व की विवक्षा से भी समो जीवो और नारक से वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए।

।। पण्णवणाए भगवतीए सत्तावीसतिमं कम्मवेदवेदयपयं समत्तं ।।

विवेचन—वेद वेदक चर्चा का निष्कर्ष—इस पद का प्रतिपाद्य यह है कि जीव ज्ञानावरणीय आदि किसी एक कर्म का वेदन करता हुआ, अन्य कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

(१) ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता हुआ कोई जीव या कोई मनुष्य यानी उपशान्तमोह या क्षीणमोह मनुष्य मोहनीयकर्म का वेदक न होने से सात कर्मप्रकृतियो का वेदक होता है, इसके अतिरिक्त सूक्ष्मसम्पराय तक सभी जीव या मनुष्य आठ कर्मप्रकृतियो का वेदन करते हैं।

(२) बहुत जीवो की अपेक्षा से तीन भंग होते है—(१) सभी जीव आठ कर्मप्रकृतियो के वेदक होते हैं, (२) अथवा कई आठ के वेदक होते हैं और कोई एक सात का वेदक होता है, (३) अथवा कई आठ के और कई सात के वेदक होते हैं।

(३) दर्शनावरणीय और अन्तरायकर्म-सम्बन्धी वक्तव्यता भी ज्ञानावरणीय के समान कहनी चाहिए।

(४) वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, इन कर्मों का वेदन करता हुआ जीव बन्ध-वेदकवत् आठ, सात या चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है।

(५) मोहनीयकर्म का वेदन करता हुआ समुच्चय जीव व नैरयिक से वैमानिक तक के जीव एकत्व या बहुत्व की अपेक्षा से नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का सत्ताईसवाँ कर्मवेदवेदकपद सम्पूर्ण ॥

❖❖

---

१ (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. १, पृ. ३९१
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ५२१ से ५२७ तक
(ग) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति पद २७, अभिधान राजेन्द्र कोष भा. ३, पृ. २९४-२९५

अट्ठावीसइमं आहारपयं

अट्ठाईसवाँ आहारपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र के आहारपद मे सासारिक जीवो और सिद्धो के आहार-अनाहार की दो उद्देशको के ग्यारह और तेरह द्वारो के माध्यम से विस्तृत चर्चा की गई है।

- आत्मा मूल स्वभावत निराहारी है, क्योकि शुद्ध-आत्मा (सिद्ध-बुद्ध-मुक्त परमात्मा) के शरीर, कम मोह आदि नही होते। निरजन-निराकार होने से उसे आहार की कदापि इच्छा नही होती। जैसा सिद्धो का स्वरूप है, वैसा ही निश्चयनय दृष्टि से आत्मा का स्वरूप है। अत विविध दार्शनिको, साधको और विचारको के मन मे प्रश्न का उदभव हुआ कि जब आत्मा अनाहारी है तो भूख क्यो लगती है? मनुष्य, पशु-पक्षी आदि क्षुधानिवृत्ति के लिए आहार क्यो करते हैं? यदि शरीर और क्षुधावेदनीय आदि कर्मों के कारण प्राणियो को आहार करना पडता है, तब ये प्रश्न उठते हैं कि सिद्ध तो अनाहारक होते हैं, किन्तु नारक से लेकर वमानिक तक चौवीस दण्डकवर्ती जीव सचित्त, अचित्त या मिश्र, किस प्रकार का आहार करते हैं? उन्हे आहार की इच्छा होती है या नही? इच्छा होती है तो कितने काल के पश्चात् होती है? कौनसा जीव किस वस्तु का आहार करता है? क्या वे सर्व आत्मप्रदेशो से आहार लेते हैं या एकदेश से? क्या वे जीवन मे वार-बार आहार करते हैं या एक बार? वे कितने भाग का आहार करते हैं, कितने भाग का आस्वादन करते हैं? क्या वे ग्रहण किये हुए सभी पुद्गलो का आहार करते हैं? गृहीत आहार्य-पुद्गलो को वे किस रूप मे परिणत करते हैं? क्या वे एकेन्द्रियादि के शरीर का आहार करते हैं? तथा उनमे से कौन लोमाहारी है, कौन प्रक्षेपाहारी (कवलाहारी) है तथा कौन ओज आहारी है, कौन मनोभक्षी है? ये और इनसे सम्बन्धित आहार-सम्बन्धी चर्चाएँ इस पद के दो उद्देशको मे से प्रथम उद्देशक मे की गई है।

- इसके अतिरिक्त आहार-सम्बन्धी कई प्रश्न अवशिष्ट रह जाते हैं कि एक या अनेक जीव या चौवीस दण्डकवर्ती सभी जीव आहारक ही होते है या कोई जीव अनाहारक भी होता है/होते है? यदि कोई जीव किसी अवस्था मे अनाहारक होता है तो किस कारण से होता है?[1] इन दो प्रश्नो के परिप्रेक्ष्य मे भव्यता, सज्ञा, लेश्या, दृष्टि, सयम, कषाय, ज्ञान-अज्ञान, योग, उपयोग, वेद शरीर, पर्याप्ति, इन १३ द्वारो के मध्यम से आहारक-अनाहारक की सागोपाग चर्चा द्वितीय उद्देशक मे की गई है।

- प्रथम उद्देशक के उत्तरो को देखते हुए बहुत-से रहस्यमय एव गूढ तथ्य साधक के समक्ष समाधान के रूप मे मुखरित होते है। जसे कि वैक्रियशरीरधारी का आहार अचित्त ही

---

१ पण्णवणासुत्त भा १, पृ ३९२

होता है और औदारिकशरीरधारी का आहार सचित्त, अचित्त और मिश्र नाना प्रकार का होता है। जो आहार ग्रहण किया जाता है, वह दो प्रकार का है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। अपनी इच्छा हो और आहार लिया जाए, वह आभोगनिर्वर्तित तथा बिना ही इच्छा के आहार हो जाए, वह अनाभोगनिर्वर्तित आहार है। इच्छापूर्वक आहार तत्तत् विभिन्न जीवों की पृथक्-पृथक् काल-मर्यादाएँ हैं। परन्तु इच्छा के बिना लिया जाने वाला आहार तो निरन्तर लिया जाता है। फिर यह भी स्पष्ट किया गया है कि कौन जीव किस प्रकार का आहार लेता है? वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श गुणों से युक्त आहार लिया जाता है उसमें भी बहुत विविधता है। नारकों द्वारा लिया जाने वाला आहार अशुभवर्णादि वाला है और देवों द्वारा लिया जाने वाला आहार शुभवर्णादि वाला है। कोई ६ दिशा से तथा कोई तीन, चार पांच दिशाओं से आहार लेता है। आहाररूप में ग्रहण किए गये पुद्गल पांच इन्द्रियों के रूप में तथा अंगोपांगों के रूप में परिणत होते हैं। शरीर भी आहारानुरूप होता है। आहार के लिए लिये जाने वाले पुद्गलों का असंख्यातवाँ भाग आहाररूप में परिणत होता है तथा उनके अनन्तवें भाग का आस्वादन होता है।

- अन्तिम प्रकरण में यह भी बताया गया है कि चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में से कौन लोमाहार और कौन प्रक्षेपाहार (कवलाहार) करता है? तथा किसके ओज आहार होता है, किसके मनोभक्षण आहार होता है?

- कौन जीव किस जीव के शरीर का आहार करता है? इस तथ्य को यहाँ स्थूल रूप से प्ररूपित किया गया है। सूत्रकृतांगसूत्र श्रुत २, अ ३ आहारपरिज्ञा अध्ययन में तथा भगवतीसूत्र में इस तथ्य की विशेष विश्लेषणपूर्वक चर्चा की गई है कि पृथ्वीकायिकादि विभिन्न जीव वनस्पतिकाय आदि के अचित्त शरीर को विध्वस्त करके आहार करते हैं, गर्भस्थ मनुष्य आदि जीव अपने माता की रज और पिता के शुक्र आदि का आहार करते हैं।[1]

- स्थानांगसूत्र के चतुर्थ स्थान में तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों का चार चार प्रकार का आहार बताया है जैसे—तिर्यञ्चों का चार प्रकार का आहार—(१) कंकोपम, (२) बिलोपम, (३) पाण (मातंग) मांसोपम और (४) पुत्रमांसोपम। मनुष्यों का चार प्रकार का आहार—अशन, पान, खादिम और स्वादिम। देवों का चार प्रकार का आहार है—वर्णवान, रसवान, गन्धवान, और स्पर्शवान्।[2]

- आहार की अभिलाषा में देवों की आहाराभिलाषा जिसमें वैमानिक देवों की आहाराभिलाषा बहुत लम्बे काल की, उत्कृष्ट ३३ हजार वर्ष तक की बताई गई है। इसलिए ज्ञात होता है कि चिरकाल के बाद होने वाली आहारेच्छा किसी न किसी पूर्वजन्म में कृत संयम साधना या पुण्यकार्य का सुफल है।[3]

---

१ पण्णवणासुत्त (मू पा टि) भा १, पृ ३९३ से ४०४

२ स्थानांगसूत्र स्था ४

३ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १ पृ ३९७-९८

- मनुष्य चाहे तो तपश्चर्या के द्वारा दीर्घकाल तक निराहार रह सकता है और अनाहारकता ही रत्नत्रयसाधना का अन्तिम लक्ष्य है। इसी के लिए संयतासंयत तथा संयत होकर अन्त में नो-संयत नोअसंयत-नोसंयतासंयत बनता है। यह इसके संयतद्वार में स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।[1]
- कुल मिलाकर आहार-सम्बन्धी चर्चा साधकों और श्रावकों के लिए ज्ञानवर्द्धक, रसप्रद, आहार-विज्ञान सम्मत एवं आत्मसाधनाप्रेरक है।

१ पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. १, पृ. ४०३

होता है और औदारिकशरीरधारी का आहार सचित्त, अचित्त और मिश्र तीनों प्रकार का होता है। जो आहार ग्रहण किया जाता है, वह दो प्रकार का है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। अपनी इच्छा से और आहार लिया जाए, वह आभोगनिर्वर्तित तथा बिना ही इच्छा के आहार हो जाए, वह अनाभोगनिर्वर्तित आहार है। इच्छापूर्वक आहार लेने में विभिन्न जीवों की पृथक्-पृथक् काल-मर्यादाएँ हैं। परन्तु इच्छा के बिना लिया जाने वाला आहार तो निरन्तर लिया जाता है। फिर यह भी स्पष्ट किया गया है कि कौन जीव किस प्रकार का आहार लेता है? वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श गुणों से युक्त आहार लिया जाता है उसमें भी बहुत विविधता है। नारकों द्वारा लिया जाने वाला आहार अशुभवर्णादि वाला है और देवों द्वारा लिया जाने वाला आहार शुभवर्णादि वाला है। कोई ६ दिशा से तथा कोई तीन, चार पांच दिशाओं से आहार लेता है। आहाररूप में ग्रहण किए गये पुद्गल पांच इन्द्रियों के रूप में तथा अंगोपांगों के रूप में परिणत होते हैं। शरीर भी आहारानुरूप होता है। आहार के लिए लिये जाने वाले पुद्गलों का असंख्यातवां भाग आहाररूप में परिणत होता है तथा उनके अनन्तवें भाग का आस्वादन होता है।[1]

- अंतिम प्रकरण में यह भी बताया गया है कि चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में से कौन लोमाहार और कौन प्रक्षेपाहार (कवलाहार) करता है? तथा किसके ओज आहार होता है, किसके मनोभक्षण आहार होता है?

- कौन जीव किस जीव के शरीर का आहार करता है? इस तथ्य को यहाँ स्थूल रूप से प्रदर्शित किया गया है। सूत्रकृतांगसूत्र श्रुत. २, अ. ३ आहारपरिज्ञा अध्ययन में तथा भगवतीसूत्र में इस तथ्य की विशेष विश्लेषणपूर्वक चर्चा की गई है कि पृथ्वीकायिकादि विभिन्न जीव वनस्पतिकाय आदि के अचित्त शरीर को विध्वस्त करके आहार करते हैं, गर्भस्थ मनुष्य आदि जीव अपने माता की रज और पिता के शुक्र आदि का आहार करते हैं।

- स्थानांगसूत्र के चतुर्थ स्थान में तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों का चार चार प्रकार का आहार बताया है जैसे—तिर्यञ्चों का चार प्रकार का आहार—(१) कंकोपम, (२) बिलोपम, (३) पाण (मातंग) मांसोपम और (४) पुत्रमांसोपम। मनुष्यों का चार प्रकार का आहार—अशन, पान, खादिम और स्वादिम। देवों का चार प्रकार का आहार है—वर्णवान्, रसवान, गन्धवान, और स्पर्शवान्।[2]

- आहार की अभिलाषा में देवों की आहाराभिलाषा जिसमें वैमानिक देवों की आहाराभिलाषा बहुत लम्बे काल की, उत्कृष्ट ३३ हजार वर्ष तक की बताई गई है। इसलिए ज्ञात होता है कि चिरकाल के बाद होने वाली आहारेच्छा किसी न किसी पूर्वजन्म में कृत संयम साधना या पुण्यकार्य का सुफल है।[3]

---

१ पण्णवणासुत्त (मू. पा. टि.) भा. १, पृ. ३९३ से ४०४

२ स्थानांगसूत्र स्था. ४

३ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १ पृ. ३९७-९८

- मनुष्य चाहे तो तपश्चर्या के द्वारा दीर्घकाल तक निराहार रह सकता है और अनाहारकता ही रत्नत्रयसाधना का अन्तिम लक्ष्य है। इसी के लिए संयतासंयत तथा संयत होकर अन्त में नो-संयत नोअसंयत-नोसंयतासंयत बनता है। यह इसके संयतद्वार में स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।[1]
- कुल मिलाकर आहार-सम्बन्धी चर्चा साधकों और श्रावकों के लिए ज्ञानवर्द्धक, रसप्रद, आहार-विज्ञान सम्मत एवं आत्मसाधनाप्रेरक है।

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ. ४०३

अट्ठावीसइमं आहारपयं

अट्ठाईसवाँ आहारपद

पढमो उद्देसओ प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे उल्लिखित ग्यारह द्वार

१७९३ सच्चित्ता १ ऽऽहारट्ठी २ केवति ३ किं वा वि ४ सव्वओ चेव ५।
कतिभाग ६ सव्वे खलु ७ परिणामे चेव ८ बोद्धव्वे ॥ २१७ ॥
एगिंदिसरीरावी ९ लोमाहारे १० तहेव मणभक्खी ११।
एतेसिं तु पयाण विभावणा होइ कायव्वा ॥ २१८ ॥

[१७९३ गाथार्थ-] [प्रथम उद्देशक मे] इन (निम्नोक्त) ग्यारह पदो पर विस्तृत रूप से विचारणा करनी है—(१) सचित्ताहार, (२) आहारार्थी, (३) कितने काल से (आहारार्थ)?, (४) क्या आहार (करते हैं?), (५) सब प्रदेशो से (सर्वत), (६) कितना भाग?, (७) (क्या) सभी आहार (करते हैं?) और (८) (सतत) परिणत (करते हैं?) (९) एकेन्द्रियशरीरादि, (१०) लोमाहार एव (११) मनोभक्षी (ये ग्यारह द्वार जानने चाहिए) ॥ ॥ २१७ २१८ ॥

विवेचन—प्रथम उद्देशक मे आहार-सम्बन्धी ग्यारह द्वार—प्रस्तुत दो सग्रहणी गाथाओं द्वारा प्रथम उद्देशक मे प्रतिपाद्य ग्यारह द्वारो (पदो) का उल्लेख किया गया है। प्रथमद्वार—इसमे नरयिक से लेकर वैमानिक तक के विषय मे प्रश्नोत्तर हैं कि वे सचित्ताहारी होते हैं, अचित्ताहारी होते हैं या मिश्राहारी?, द्वितीयद्वार से अष्टमद्वार तक—क्रमश (२) नारकादि जीव आहारार्थी हैं या नही?, (३) कितने काल मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है?, (४) किस वस्तु का आहार करते हैं?, (५) क्या वे सर्वत (सब प्रदेशो से) आहार करते हैं?, सर्वत उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं, क्या वे बार बार आहार करते हैं? बार-बार उसे परिणत करते हैं? इत्यादि, (६) कितने भाग का आहार या आस्वादन करते हैं?, (७) क्या सभी गृहीत पुद्गलो का आहार करते हैं?, (८) गृहीत आहार्य पुद्गलो को किस-किस रूप मे बार-बार परिणत करते हैं? (९) क्या वे एकेन्द्रियादि के शरीरो का आहार करते हैं?, (१०) नारकादि जीव लोमाहारी हैं या प्रक्षेपाहारी (कवलाहारी)? तथा (११) वे ओजाहारी होते हैं या मनोभक्षी? प्रथम उद्देशक मे इन ग्यारह द्वारों का प्रतिपादन किया गया है।[1]

---

१ (क) प्रज्ञापना (मलय वृत्ति) अभि रा को भा २, पृ ५००
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ ५४१, ५६३, ६१३

चौबीस दण्डकों में प्रथम सचित्ताहारद्वार

१७९४ [१] णेरइया णं भंते ! किं सचित्ताहारा अचित्ताहारा मीसाहारा ?

गोयमा ! णो सचित्ताहारा, अचित्ताहारा, णो मीसाहारा ।

[१७९४-१ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक सचित्ताहारी होते हैं, अचित्ताहारी होते हैं या मिश्राहारी होते हैं ?

[१७९४-१ उ.] गौतम ! नैरयिक सचित्ताहारी नहीं होते और न मिश्राहारी (सचित्त-अचित्ताहारी) होते हैं किन्तु अचित्ताहारी होते हैं ।

[२] एवं असुरकुमारा जाव वेमाणिया ।

[१७९४-२] इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर वैमानिकों पर्यन्त (जानना चाहिए ।)

[३] ओरालियसरीरी जाव मणूसा सचित्ताहारा वि अचित्ताहारा वि मीसाहारा वि ।

[१७९४-३] औदारिकशरीरी यावत् मनुष्य सचित्ताहारी भी हैं, अचित्ताहारी भी हैं और मिश्राहारी भी हैं ।

विवेचन—सचित्ताहारी, अचित्ताहारी या मिश्राहारी ?—समस्त सांसारिक जीव भवधारणीय शरीर की अपेक्षा से दो भागों में विभक्त हैं—(१) वैक्रियशरीरी और (२) औदारिकशरीरी । वैक्रियशरीरधारी जो नारक, देव आदि जीव हैं, वे वैक्रियशरीर-परिपोषण-योग्य पुद्गलों का आहार करते हैं और वे पुद्गल अचित्त ही होते हैं, सचित्त (जीवपरिगृहीत) और मिश्र नहीं । इसलिए प्रस्तुत में नैरयिक, असुरकुमारादि भवनवासीदेव, वाणव्यन्तरदेव, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों (जो कि वैक्रियशरीरी हैं) को एकान्ततः अचित्ताहारी बताया है तथा इनके अतिरिक्त एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त तिर्यञ्च और मनुष्य जो औदारिकशरीरधारी हैं, वे औदारिकशरीर के परिपोषणयोग्य पुद्गलों का आहार करते हैं, जो तीनों ही प्रकार के होते हैं । इसलिए इन्हें सचित्ताहारी, अचित्ताहारी और मिश्राहारी बताया गया है ।[1]

नैरयिकों में आहारार्थी आदि द्वितीय से अष्टमद्वार पर्यन्त

१७९५ णेरइया णं भंते ! आहारट्ठी ?

हंता गोयमा ! आहारट्ठी ।

[१७९५ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक आहारार्थी (आहाराभिलाषी) होते हैं ?

[१७९५ उ.] हाँ, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं ।

१७९६ णेरइयाणं भंते ! केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति ?

गोयमा ! णेरइयाणं आहारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिए य अणाभोगणिव्वत्तिए य । तत्थ णं जे से अणाभोगणिव्वत्तिए से णं अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जति । तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आहारट्ठे समुप्पज्जति ।

---

१ प्रज्ञापना, मलयवृत्ति पत्र अभि. रा. कोष, भा. २, पृ. ५००

अट्ठावीसइमं आहारपयं

अट्ठाईसवाँ आहारपद

पढमो उद्देसओ   प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे उल्लिखित ग्यारह द्वार

१७९३ सच्चित्ता १ ऽऽहारट्ठी २ केवति ३ किं वा वि ४ सव्वओ चेव ५।
कतिभाग ६ सव्वे खलु ७ परिणामे चेव ८ बोद्धव्वे ॥ २१७ ॥
एगिंदिसरीरादी ९ लोमाहारे १० तहेव मणभक्खी ११।
एतेसिं तु पयाण विभावणा होइ कायव्वा ॥ २१८ ॥

[१७९३ गाथार्थ-] [प्रथम उद्देशक मे] इन (निम्नोक्त) ग्यारह पदो पर विस्तृत रूप मे विचारणा करनी है—(१) सचित्ताहार, (२) आहारार्थी, (३) कितने काल से (आहारार्थ)?, (४) क्या आहार (करते हैं?), (५) सब प्रदेशो से (सर्वत), (६) कितना भाग?, (७) (क्या) सभी आहार (करते हैं?) और (८) (सतत) परिणत (करते हैं?) (९) एकेन्द्रियशरीरादि, (१०) लोमाहार एव (११) मनोभक्षी (ये ग्यारह द्वार जानने चाहिए) ॥ ॥ २१७-२१८ ॥

विवेचन—प्रथम उद्देशक मे आहार-सम्बन्धी ग्यारह द्वार—प्रस्तुत दो सग्रहणी गाथाओ द्वारा प्रथम उद्देशक म प्रतिपाद्य ग्यारह द्वारो (पदो) का उल्लेख किया गया है। प्रथमद्वार—इसमे नरयिक से लेकर वैमानिक तक के विषय मे प्रश्नोत्तर हैं कि वे सचित्ताहारी होते हैं, अचित्ताहारी होते हैं या मिश्राहारी?, द्वितीयद्वार स अष्टमद्वार तक—क्रमश (२) नारकादि जीव आहारार्थी हैं या नही?, (३) कितने काल मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है?, (४) किस वस्तु का आहार करते हैं?, (५) क्या वे सर्वत (सब प्रदेशो से) आहार करते हैं?, सर्वत उच्छ्वास नि श्वास लेते हैं, क्या वे बार बार आहार करते हैं? बार-बार उसे परिणत करते हैं? इत्यादि, (६) कितने भाग का आहार या आस्वादन करते हैं?, (७) क्या सभी गृहीत पुद्गलों का आहार करते हैं?, (८) गृहीत आहार्य पुद्गलो को किस किस रूप मे बार-बार परिणत करते हैं? (९) क्या वे एकेन्द्रियादि के शरीरो का आहार करते हैं?, (१०) नारकादि जीव लोमाहारी हैं या प्रक्षेपाहारी (कवलाहारी)? तथा (११) वे ओजाहारी होते हैं या मनोभक्षी? प्रथम उद्देशक मे इन ग्यारह द्वारों का प्रतिपादन किया गया है।[1]

---

१ (क) प्रज्ञापना (मलय वृत्ति) अभि रा को भा २, पृ ५००
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५ पृ ५४१, ५६३, ६११

[१७९८-२ उ] गौतम ! वे एक गुण काले पुदगलो का भी आहार करते हैं यावत् अनन्तगुण काले पुद्गलो का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार (रक्तवर्ण से लेकर) यावत् शुक्लवर्ण के विषय मे पूर्वोक्त प्रश्न और समाधान जानना चाहिए।

१७९९ एव गधओ वि रसओ वि।

[१७९९] इसी प्रकार गन्ध और रस की अपेक्षा से भी पूर्ववत् आलापक कहने चाहिए।

१८०० [१] जाइ भावओ फासमताइ ताइ णो एगफासाइ आहारेंति, णो दुफासाइ आहारेंति, णो तिफासाइ आहारेंति, चउफासाइ आहारेंति जाव अट्ठफासाइ पि आहारेंति, विहाणमग्गण पडुच्च कक्खडाइ पि आहारेंति जाव लुक्खाइ पि।

[१८००-१] जो जीव भाव से स्पर्शवाले पुद्गलो का आहार करते हैं, वे न तो एक स्पर्श वाले पुदगलो का आहार करते हैं, न दो और तीन स्पर्शवाले पुद्गलो का आहार करते हैं अपितु चतु स्पर्शी यावत् अष्टस्पर्शी पुदगलो का आहार करते हैं। विधान (भेद) मार्गणा की अपेक्षा वे कर्कश यावत् रूक्ष पुद्गलो का भी आहार करते हैं।

[२] जाइ फासओ कक्खडाइ आहारेंति ताइ किं एगगुणकक्खडाइ आहारेंति जाव अणतगुण-कक्खडाइ आहारेंति।

गोयमा ! एगगुणकक्खडाइ पि आहारेंति जाव अणतगुणकक्खडाइ पि आहारेंति ? एव अट्ठ वि फासा भाणियव्वा जाव अणतगुणलुक्खाइ पि आहारेंति।

[१८००-२ प्र] भगवन् ! वे जिन कर्कशस्पर्शवाले पुद्गलो का आहार करते हैं, क्या वे एकगुण कर्कशपुद्गलो का आहार करते हैं, यावत् अनन्तगुण कर्कशपुदगलो का आहार करते हैं ?

[१८००-२ उ] गौतम ! वे एकगुण कर्कशपुद्गलो का भी आहार करते हैं यावत अनन्तगुण कर्कशपुद्गलो का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार क्रमश आठो ही स्पर्शो के विषय मे 'अनन्तगुण रूक्षपुद्गलो का भी आहार करते हैं', तक (कहना चाहिए)।

[३] जाइ भते ! अणतगुणलुक्खाइ आहारेंति ताइ किं पुट्ठाइ आहारेंति अपुट्ठाइ आहारेंति ?

गोयमा ! पुट्ठाइ आहारेंति, णो अपुट्ठाइ आहारेंति, जहा भासुद्देसए (सु ८७७ [१५—२३]) जाव णियमा छद्दिसि आहारेंति।

[१८००-३ प्र] भगवन् ! वे जिन अनन्तगुण रूक्षपुद्गलो का आहार करते हैं क्या वे स्पृष्ट पुद्गलो का आहार करते हैं या अस्पृष्ट पुदगलो का आहार करते हैं ?

[१८००-३ उ] गौतम ! वे स्पृष्ट पुदगलो का आहार करते है, अस्पृष्ट पुद्गलो का नही। (सू ८७७-१५-२३ मे उक्त) भाषा-उद्देशक मे जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार व यावत् नियम से छहो दिशाओ मे से आहार करते हैं।

१८०१ ओसण्णकारण पडुच्च वण्णओ काल-नीलाइ गधओ दुब्भिगधाइ रसतो तित्तरस-कडुयाइ फासओ कक्खड गरुय सीय लुक्खाइ तेसिं पोराणे वण्णगुणे गधगुणे फासगुणे विप्परिणामइत्ता परिपीलइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गधगुणे रसगुणे फासगुणे उप्पाएत्ता आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति।

[१७९६ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा (आहारार्थ) समुत्पन्न होती है ?

[१७९६ उ.] गौतम ! नैरयिकों का आहार दो प्रकार का कहा गया है। यथा— (१) आभोगनिर्वर्तित, (उपयोगपूर्वक किया गया) और (२) अनाभोगनिर्वर्तित। उनमें जो अनाभोगनिर्वर्तित (बिना उपयोग के किया हुआ) है, उस आहार की अभिलाषा प्रति समय निरन्तर उत्पन्न होती रहती है, किन्तु जो आभोगनिर्वर्तित (उपयोगपूर्वक किया हुआ) आहार है, उस आहार की अभिलाषा असंख्यात-समय के अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न होती है।

१७९७. णेरइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति ?

गोयमा ! दव्वओ अणंतपदेसियाइं, खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं, कालतो अण्णतरठितियाइं, भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं।

[१७९७ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कौन-सा आहार ग्रहण करते हैं ?

[१७९७ उ.] गौतम ! वे द्रव्यतः—अनन्तप्रदेशी (पुद्गलों का) आहार ग्रहण करते हैं, क्षेत्रतः—असंख्यातप्रदेशों में अवगाढ (रहे हुए), कालतः—किसी भी (अन्यतर) कालस्थिति वाले और भावतः—वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान् पुद्गलों का आहार करते हैं।

१७९८. [१] जाइं भावओ वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति जाव किं पंचवण्णाइं आहारेंति ?

गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइं पि आहारेंति जाव पंचवण्णाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइं पि आहारेंति जाव सुक्किलाइं पि आहारेंति।

[१७९८-१ प्र.] भगवन् ! भाव से (नैरयिक) वर्ण वाले जिन पुद्गलों का आहार करते हैं, क्या वे एक वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् क्या वे पंच वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं ?

[१७९८-१ उ.] गौतम ! वे स्थानमार्गणा (सामान्य) की अपेक्षा से एक वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् पांच वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं तथा विधान (भेद) मार्गणा की अपेक्षा से काले वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् शुक्ल (श्वेत) वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

[२] जाइं वण्णओ कालवण्णाइं आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति संखेज्जगुणकालाइं असंखेज्जगुणकालाइं अणंतगुणकालाइं आहारेंति ?

गोयमा ! एगगुणकालाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकालाइं पि आहारेंति। एवं जाव सुक्किलाइं पि।

[१७९८-२ प्र.] भगवन् ! वे वर्ण से जिन काले वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं क्या वे एक गुण काले पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् दस गुण काले, संख्यातगुण काले, असंख्यातगुण काले या अनन्तगुण काले वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं ?

गोयमा ! सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अणिट्ठत्ताए अकंतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए अहत्ताए णो उड्ढत्ताए दुक्खत्ताए णो सुहत्ताए एएसिं (ते तेसिं) भुज्जो भुज्जो परिणमंति ।

[१८०५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जिन पुद्गलो का आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, वे उन पुद्गलो को बार-बार किस रूप मे परिणत करते हैं ?

[१८०५ उ] गौतम ! वे उन पुद्गलो को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप मे यावत स्पर्शेन्द्रिय के रूप मे, अनिष्टरूप से, अकान्तरूप से, अप्रियरूप से, अशुभरूप से, अमनोज्ञरूप से, अमनामरूप से, अनिश्चितता से (अथवा अनिच्छित रूप से,) अनभिलषितरूप से, भारीरूप से, हल्केरूप से नही, दु खरूप से सुखरूप से नही, उन सबका बारबार परिणमन करते है ।

विवेचन—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित का स्वरूप—नारको का आहार दो प्रकार का है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित । **आभोगनिर्वर्तित** का अर्थ है—इच्छापूर्वक—उपयोगपूर्वक होने वाला आहार तथा **अनाभोगनिर्वर्तित** का अर्थ है—बिना इच्छा के—बिना उपयोग के होने वाला आहार । अनाभोगनिर्वर्तित आहार, भव पर्यन्त प्रतिसमय निरन्तर होता रहता है । यह आहार ओजआहार आदि के रूप मे होता है । आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा असख्यात समय प्रमाण अन्तमुहूर्त मे उत्पन्न होती है । मैं आहार करूँ, इस प्रकार की अभिलाषा एक अन्तमुहूर्त के अदर पदा हो जाती है । यही कारण है कि नारको की आहारेच्छा अन्तमुहूर्त की कही गई हैं । यह तीसरा द्वार है ।[१]

नरयिक किस वस्तु का आहार करते हैं ?—द्रव्य से वे अनन्तप्रदेशी पुद्गलो का आहार करते है, क्योकि सख्यातप्रदेशी या असख्यातप्रदेशी स्कन्ध जीव के द्वारा ग्रहण नही किये जा सकते, उनका ग्रहण होना सम्भव नही है । क्षेत्र की अपेक्षा से वे असख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धो का आहार करते हैं । काल की अपेक्षा से वे जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट किसी भी स्थिति वाले स्कन्धो को ग्रहण करते हैं । भाव से वे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले द्रव्यो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, क्योकि प्रत्येक परमाणु मे एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श अवश्य पाए जाते हैं । इसके पश्चात एकादि वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से अनेक वर्णादियुक्त आहार ग्रहण करने के विकल्प बताये गए हैं । तदनन्तर यह भी बताया गया है कि वे (नारक) आत्मप्रदेशो से स्पृष्ट द्रव्यो (सम्बद्ध पुद्गलो) का तथा नियमत छह दिशाओ से आहार करते हैं ।[२]

विविध पहलुओ से नारका के आहार के विषय मे प्ररूपणा—नारक वर्ण की अपेक्षा प्राय काले-नीले वर्णवाले, रस की अपेक्षा तिक्त और कटुक रसवाले, गन्ध की अपेक्षा दुर्गन्धवाले तथा स्पर्श से कर्कश, गुरु, शीत और रूक्ष स्पर्शवाले अशुभ द्रव्यो का आहार करते हैं । यहा बहुलतासूचक शब्द—'ओसन्न' का प्रयोग किया गया है । जिसका आशय यह है कि अशुभ अनुभाव वाले मिथ्यादृष्टि नारक ही प्राय उक्त कृष्णवर्ण आदि वाले द्रव्यो का आहार करते हैं । किन्तु जो नारक आगामी भव मे तीर्थंकर आदि होने वाले हैं, वे ऐसे द्रव्यो का आहार नही करते है ।

१, २ प्रज्ञापना (हरिभद्रीय टीका) भा ५, पृ ५४९ से ५५२

[१८०१] बहुल कारण की अपेक्षा से जो वर्ण से काले-नीले, गन्ध से दुर्गन्ध वाले, रस से तिक्त (तीखे) और कटुक (कडुए) रस वाले और स्पर्श से कर्कश, गुरु (भारी), शीत (ठंड) और रूक्ष स्पर्श हैं, उनके पुराने (पहले के) वर्णगुण, गन्धगुण, रसगुण और स्पर्शगुण का विपरिणमन (परिवर्तन) कर, परिपीडन परिशाटन और परिविध्वस्त करके अन्य (दूसरे) अपूर्व (नये) वर्णगुण, गन्धगुण, रसगुण और स्पर्शगुण को उत्पन्न करके अपने शरीरक्षेत्र में अवगाहन किये हुए पुद्गलों का पूर्णरूपेण (सर्वात्मना) आहार करते हैं।

१८०२ णेरइया णं भंते ! सव्वओ आहारेंति, सव्वओ परिणामेंति, सव्वओ ऊससंति, सव्वओ णीससंति, अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं ऊससंति अभिक्खणं णीससंति, आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति आहच्च ऊससंति आहच्च णीससंति ?

हंता गोयमा ! णेरइया सव्वओ आहारेंति एवं तं चेव जाव आहच्च णीससंति।

[१८०२ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक सर्वतः (समग्रता से) आहार करते हैं ? पूर्णरूप में परिणत करते हैं ? सर्वतः उच्छ्वास तथा सर्वतः निःश्वास लेते हैं ? बार-बार आहार करते हैं ? बार-बार परिणत करते हैं ? बार-बार उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ? अथवा कभी कभी आहार करते हैं ? कभी-कभी परिणत करते हैं ? और कभी-कभी उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ?

[१८०२ उ] हाँ, गौतम ! नैरयिक सर्वतः आहार करते हैं, इसी प्रकार वही पूर्वोक्त यावत् कभी-कभी निःश्वास लेते हैं।

१८०३ णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कतिभागं आहारेंति कतिभागं आसाएंति ?

गोयमा ! असंखेज्जइभागं आहारेंति अणंतभागं अस्साएंति।

[१८०३ प्र] भगवन् ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलों का आगामी काल में कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वादन करते हैं ?

[१८०३ उ] गौतम ! वे असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं।

१८०४ णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति णो सव्वे आहारेंति ?

गोयमा ! ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति।

[१८०४ प्र] भगवन् ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या उन सबका आहार कर लेते हैं अथवा सबका आहार नहीं करते हैं ?

[१८०४ उ] गौतम ! शेष बचाये बिना उन सबका आहार कर लेते हैं।

१८०५ णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो २ परिणमंति ?

गोयमा ! सोइदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अणिट्ठत्ताए अकंतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए अहत्ताए णो उड्ढत्ताए दुक्खत्ताए णो सुहत्ताए एएसिं (ते तेसिं) भुज्जो भुज्जो परिणमंति ।

[१८०५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, वे उन पुदगलो को बार-बार किस रूप मे परिणत करते हैं ?

[१८०५ उ] गौतम ! वे उन पुद्गलो को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप मे यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप मे, अनिष्टरूप से, अकान्तरूप से, अप्रियरूप से, अशुभरूप से, अमनोज्ञरूप से, अमनामरूप से, अनिश्चितता से (अथवा अनिच्छित रूप से,) अनभिलषितरूप से, भारीरूप से, हल्केरूप मे नही, दु खरूप से सुखरूप से नहीं, उन सबका बारबार परिणमन करते हैं ।

विवेचन—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित का स्वरूप—नारको का आहार दो प्रकार का है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित । **आभोगनिर्वर्तित** का अर्थ है—इच्छापूर्वक—उपयोगपूर्वक होने वाला आहार तथा **अनाभोगनिर्वर्तित** का अर्थ है—बिना इच्छा के—बिना उपयोग के होने वाला आहार । अनाभोगनिर्वर्तित आहार, भव पयन्त प्रतिसमय निरन्तर होता रहता है । यह आहार ओजआहार आदि के रूप मे होता है । आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा असख्यात समय प्रमाण अन्तमुहूर्त मे उत्पन्न होती है । मैं आहार करू , इस प्रकार की अभिलाषा एक अन्तमुहूर्त के अदर पैदा हो जाती है । यही कारण है कि नारको की आहारेच्छा अन्तमुहूत की कही गई है । यह तीसरा द्वार है ।[1]

नैरयिक किस वस्तु का आहार करते हैं ?—द्रव्य से वे अनन्तप्रदेशी पुद्गलो का आहार करते है, क्योकि सख्यातप्रदेशी या असख्यातप्रदेशी स्कन्ध जीव के द्वारा ग्रहण नही किये जा सकते, उनका ग्रहण होना सम्भव नही है । क्षेत्र की अपेक्षा से वे असख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धो का आहार करते हैं । काल की अपेक्षा से वे जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट किसी भी स्थिति वाले स्कन्धो को ग्रहण करते हैं । भाव से वे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले द्रव्यो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, क्योकि प्रत्येक परमाणु मे एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श अवश्य पाए जाते हैं । इसके पश्चात् एकादि वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से अनेक वर्णादियुक्त आहार ग्रहण करने के विकल्प बताये गए हैं । तदनन्तर यह भी बताया गया है कि वे (नारक) आत्मप्रदेशो से स्पृष्ट द्रव्यो (सम्बद्ध पुद्गलो) का तथा नियमत छह दिशाओ से आहार करते हैं ।[2]

विविध पहलुओ से नारको के आहार के विषय मे प्ररूपणा—नारक वर्ण की अपेक्षा प्राय काले-नीले वर्णवाले, रस की अपेक्षा तिक्त और कटुक रसवाले, गन्ध की अपेक्षा दुर्गन्धवाले तथा स्पर्श से कर्कश, गुरु, शीत और रूक्ष स्पर्शवाले अशुभ द्रव्यो का आहार करते हैं । यहा बहुलतासूचक शब्द—'ओसन्न' का प्रयोग किया गया है । जिसका आशय यह है कि अशुभ अनुभाव वाले मिथ्यादृष्टि नारक ही प्राय उक्त कृष्णवर्ण आदि वाले द्रव्यों का आहार करते हैं । किन्तु जो नारक आगामी भव मे तीर्थंकर आदि होने वाले हैं, वे ऐसे द्रव्यो का आहार नही करते है ।

१, २ प्रज्ञापना (हरिभद्रीय टीका) भा ५, पृ ५४९ से ५५२

नारक आहार किस प्रकार से करते हैं ?—आहार किये जाने वाले पुद्गलों के पुराने वर्ण गन्ध-रस-स्पर्शगुण का परिणमन, परिपीडन, परिशाटन एवं विध्वंस करके, अर्थात्—उन्हें पूरी तरह से बदल कर, उनमें नये वर्ण-गन्ध रस-स्पर्शगुण को उत्पन्न करके, अपने शरीर क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों का समस्त आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं।[1]

सर्वत आहारादि का अर्थ—सर्वत आहार अर्थात्—समस्त आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं, सर्व-आत्मप्रदेशों से आहार परिणमाते हैं, सर्वत उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं, सदा आहार करते हैं, सदा परिणत करते है, सदा उच्छ्वास नि श्वास लेते हैं। कदाचित् आहार और परिणमन करते हैं तथा उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं।

आहार और आस्वादन कितने कितने भाग का ?—नारक आहार के रूप मे जितने पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, उनके असख्यातवें भाग का आहार करते हैं, शेष पुद्गलों का आहार नहीं हो पाता। वे जितने पुद्गलों का आहार करते हैं, उनके अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं। शेष का आस्वादन न होने पर भी शरीर के रूप मे परिणत हो जाते हैं।[2] (छठा द्वार)

सभी आहाररूप मे गृहीत पुद्गलों का या उनके एक भाग का आहारी—जिन त्यक्त शेष एव शरीर-परिणाम के योग्य पुद्गलों को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, उन सभी पुद्गलों का आहार करते है, सबके एक भाग का नहीं, क्योंकि वे आहार्यपुद्गल त्यक्तशेष और आहारपरिणाम के योग्य ही ग्रहण किये हुए होते हैं।[3]

आहाररूप में गृहीत पुद्गल किस रूप मे पुन परिणत ?—आहार के रूप मे नारकों द्वारा ग्रहण किये हुए वे पुद्गल श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय आदि पाचों इन्द्रियों के रूप में पुन पुन परिणत होते हैं। किन्तु इन्द्रियरूप मे परिणत होने वाले वे पुद्गल शुभ नहीं, अशुभरूप ही होते हैं अर्थात् वे पुद्गल अनिष्टरूप मे परिणत होते हैं। जैसे मक्खियों को कपूर, चन्दन आदि शुभ होने पर भी अनिष्ट प्रतीत होते हैं, वैसे ही शुभ होने पर भी किन्हीं जीवों को वे पुद्गल अनिष्ट प्रतीत होते हैं। बल्कि अकान्त (अकमनीय—देखते समय सुन्दर न लगें), अप्रिय (देखते समय भी अन्त करण को प्रिय न लगें), अशुभ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले, अमनोज्ञ—विपाक के समय क्लेशजनक होने के कारण) मन म आह्लाद उत्पन्न करने वाले नहीं होते हैं।[4]

अमनाम—जो भोज्यरूप मे प्राणियों को ग्राह्य न हो, अनीप्सित—जो आस्वादन करने योग्य नहीं होते, अभिध्यत—जिनके विषय मे अभिलाषा भी उत्पन्न न हो, इस रूप म परिणत होते हैं तथा वे पुद्गल भारीरूप म परिणत होते हैं, लघुरूप मे नहीं। (अष्टमद्वार)

भवनपतियों के सम्बन्ध मे आहारार्थी आदि सात द्वार (२-८)

१८०६ [१] असुरकुमारा ण भंते ! आहारट्ठी ?

हंता ! आहारट्ठी। एवं जहा णेरइयाणं तहा असुरकुमाराण वि भाणियव्वं जाव ते तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति। तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स उक्कोसेणं

---

१ से ३ प्रज्ञापना (हरिभद्रीय टीका) भा २, पृ ५४९ से ५५२

४ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५, पृ ५५५ से ५५७ तक

सातिरेगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ । ओसण्णकारण पडुच्च वण्णओ हालिद्द-सुक्किलाइ गधओ सुब्भिगधाइ रसओ अबिल-महुराइ फासओ मउय लहुअ-णिद्धुण्हाइ तेसिं पोराणे वण्णगुणे जाव फासिदियत्ताए जाव मणामत्ताए इच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए उड्ढत्ताए णो अहत्ताए सुहत्ताए णो दुहत्ताए ते तेसिं भुज्जो २ परिणमति । सेस जहा णेरइयाण ।

[१८०६-१ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमार आहारार्थी होते है ?

[१८०६-१ उ] हा, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं ।

जैसे नारको की वक्तव्यता कही, वैसे ही असुरकुमारो के विषय मे यावत् 'उनके पुद्गलो का बार-बार परिणमन होता हैं' यहाँ तक कहना चाहिए। उनमे जो आभोगनिर्वतित आहार है उस आहार की अभिलाषा जघन्य चतुर्थ-भक्त पश्चात् एव उत्कृष्ट कुछ अधिक सहस्रवर्ष मे उत्पन्न होती है ।

बाहुल्यरूप कारण की अपेक्षा से वे वर्ण से—पीत और श्वेत, गन्ध से—सुरभिगन्ध वाले, रस से—अम्ल और मधुर तथा स्पर्श से—मृदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण पुद्गलो का आहार करते है। (आहार किये जाने वाले) उन (पुद्गलो) के पुराने वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-गुण को विनष्ट करके, अर्थात् पूर्णतया परिवर्तित करके, अपूर्व यावत्—वर्ण गन्ध-रस-स्पर्श गुण को उत्पन्न करके (अपने शरीर-क्षेत्र मे अवगाढ पुद्गलो का सर्व-आत्मप्रदेशो से आहार करते हैं । आहाररूप मे गृहीत वे पुदगल श्रोत्रेन्द्रियादि पाच इन्द्रियो के रूप मे तथा इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ,) मनोज्ञ, मनाम इच्छित अभिलाषित रूप मे परिणत होते है । भारीरूप मे नही हल्के रूप मे, सुखरूप मे परिणत होते हैं, दु खरूप मे नही । (इस प्रकार असुरकुमारो द्वारा गृहीत) वे आहार्य पुद्गल उनके लिए पुन पुन परिणत होते हैं । शेष कथन नारको के कथन के समान जानना चाहिए ।

[२] एव जाव थणियकुमाराण । णवर आभोगणिव्वत्तिए उक्कोसेण दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति ।

[१८०६-२] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक का कथन असुरकुमारो के समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि इनका आभोगनिर्वतित आहार उत्कृष्ट दिवस पृथक्त्व से होता है ।

विवेचन—असुरकुमारो आदि की आहाराभिलाषा—असुरकुमारो को बीच-बीच मे एक एक दिन छोड कर आहार की अभिलाषा होती है, यह कथन दस हजार वर्ष की आयु वाले असुरकुमारो की अपेक्षा से समझना चाहिए । उत्कृष्ट अभिलाषा कुछ अधिक सातिरेक सागरोपम की स्थिति वाले बलीन्द्र की अपेक्षा से है । शेष भवनपतियो का आभोगनिर्वतित आहार उत्कृष्ट दिवस-पृथक्त्व से होता है । यह कथन पल्योपम के असख्यातवें भाग की आयु तथा उससे अधिक आयु वालो की अपेक्षा से समझना चाहिए । असुरकुमार त्रसनाडी मे ही होते हैं । अतएव वे छहो दिशाओ से पुद्गलो का आहार कर सकते हैं । आहार-सम्बन्धी शेष कथन मूलपाठ मे स्पष्ट है ।[1]

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा ५, पृ ५५५ से ५५९ तक

एकेन्द्रियों मे आहारार्थी आदि सात द्वार (२-८)

१८०७ पुढविकाइया ण भते ! आहारट्ठी ?

हता ! आहारट्ठी ।

[१८०७ प्र] भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव आहारार्थी होते हैं ?

[१८०७ उ] हाँ, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं।

१८०८ पुढविक्काइयाण भते ! केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

गोयमा ! अणुसमय अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

[१८०८ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों को कितने काल मे आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

[१८०८ उ] गौतम ! उन्हे प्रतिसमय बिना विरह के आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

१८०९ पुढविक्काइया ण भते ! किमाहारमाहारेंति ?

एव जहा णेरइयाण (सु १७९७-१८००) जाव ताइ भते ! कति दिसिं आहारेंति ?

गोयमा ! णिव्वाघाएण छद्दिसिं, वाघाय पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पचदिसिं, णवर ओसण्णकारण ण भवति, वण्णतो काल-णील-लोहिय हालिद्द सुक्किलाइ, गधओ सुब्भिगध दुब्भिगधाइ, रसओ तित्त-कडुय-कसाय-अबिल-महुराइ, फासतो कक्खड-मउय गरुय-लहुय-सीय-उसिण णिद्ध-लुक्खाइ, तेसिं पोराणे वण्णगुणे सेस जहा णेरइयाण (सु १८०१ २) जाव आहच्च णीससति ।

[१८०९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव किस वस्तु का आहार करते हैं ?

[१८०९ उ] गौतम ! इस विषय का कथन (सू १७९७ १८०० मे उक्त) नरयिकों के कथन के समान जानना चाहिए, यावत्—[प्र] पृथ्वीकायिक जीव कितनी दिशाओं से आहार करते हैं ? [उ] गौतम ! यदि व्याघात (रुकावट) न हो तो वे (नियम से) छहों दिशाओं (में स्थित और छहों दिशाओं) से (आगत द्रव्यों का) आहार करते हैं। यदि व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित चार दिशाओं से और कदाचित् पाच दिशाओं से आगत द्रव्यों का आहार करते हैं। विशेष यह है कि (पृथ्वीकायिकों के सम्बन्ध मे) बाहुल्य कारण नहीं कहा जाता। (पृथ्वीकायिक जीव) वर्ण से—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत, गन्ध से—सुगन्ध और दुर्गन्ध वाले, रस से—तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाले और स्पर्श से—कर्कश, मृदु, गुरु (भारी), लघु (हल्का), शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले (द्रव्यों का आहार करते हैं) तथा उन (आहार किये जाने वाले पुद्गलद्रव्यों) के पुराने वर्ण आदि गुण नष्ट हो जाते है, इत्यादि शेष सब कथन (सू १८०१-२ मे उक्त) नारकों के कथन के समान यावत् कदाचित उच्छ्वास और नि श्वास लेते हैं, (यहाँ तक जानना चाहिए।)

१८१० पुढविक्काइया ण भते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति तेसिं ण भते ! पोग्गलाणं केयालसि कतिभाग आहारेंति कतिभागं आसाएंति ?

गोयमा ! असखेज्जइभाग आहारेंति अणतभागं आसाएंति ।

[१८१० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलो मे से भविष्यकाल मे कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वादन करते हैं ?

[१८१० उ] गौतम ! (आहार के रूप मे गृहीत पुदगलो के) असख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते है।

१८११ पुढविक्काइया ण भते ! जे पुग्गले आहारत्ताए गिण्हति ते कि सव्वे आहारेंति णो सव्वे आहारेंति ? जहेव णेरइया (सु १८०४) तहेव।

[१८११ प्र] भगवन ! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, क्या उन सभी का आहार करते है अथवा उन सबका आहार नही करते हैं ? (अर्थात सबके एक भाग का आहार करते हैं ?)

[१८११ उ] गौतम ! जिस प्रकार (सू १८०४ मे) नैरयिको की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे कहना चाहिए।

१८१२ पुढविक्काइया ण भते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हति ते ण तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

गोयमा ! फासेंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति।

[१८१२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल (पृथ्वीकायिको मे) किस रूप मे पुन -पुन परिणत होते हैं ?

[१८१२ उ] गौतम ! (वे पुद्गल) स्पर्शेन्द्रिय की विषम मात्रा के रूप मे (अर्थात् इष्ट एव अनिष्ट रूप मे) बार बार परिणत होते हैं।

१८१३ एव जाव वणस्सइकाइयाण।

[१८१३] इसी प्रकार (पृथ्वीकायिको) की वक्तव्यता के समान (अप्कायिको से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिको की (वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।)

विवेचन—पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियो की आहार सम्बन्धी विशेपता—पृथ्वीकायिक प्रतिसमय अविरतरूप से आहार करते है। वे निर्व्याघात की अपेक्षा छहो दिशाओ से और व्याघात की अपेक्षा कदाचित् तीन, चार या पाच दिशाओ से आहार लेते हैं। इनमे एकान्त शुभानुभाव या अशुभानुभावरूप बाहुल्य नही पाया जाता। पृथ्वीकायिको के द्वारा आहार के रूप मे गृहीत पुद्गल उनमे स्पर्शेन्द्रिय की विषममात्रा के रूप मे परिणत होते है। इसका आशय यह है कि नारको के समान एकान्त अशुभरूप मे तथा देवो के समान एकान्त शुभरूप मे उनका परिणमन नही होता, किन्तु बार-बार कभी इष्ट और कभी अनिष्ट रूप मे उनका परिणमन होता है। यही नारको से पृथ्वीकायिको की विशेपता है।

शेष सब कथन नारकों के समान समझ लेना चाहिए। पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक आहार-सम्बन्धी वक्तव्यता एक-सी है।[1]

विकलेन्द्रियों में आहारार्थी आदि सात द्वार (२-८)

१८१४. बेइंदिया णं भंते! आहारट्ठी?

हंता गोयमा! आहारट्ठी।

[१८१४ प्र.] भगवन्! क्या द्वीन्द्रिय जीव आहारार्थी होते हैं?

[१८१४ उ.] हाँ, गौतम! वे आहारार्थी होते हैं।

१८१५. बेइंदियाणं भंते! केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति? जहा णेरइयाणं (सु. १७९६)। णवरं तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सेसं जहा पुढविक्काइयाणं (सु. १८०९) जाव आहच्च णीससंति, णवरं णियमा छद्दिसिं।

[१८१५ प्र.] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है?

[१८१५ उ.] गौतम! इनका कथन (सू. १७९६ में उक्त) नारकों के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि उनमें जो आभोगनिर्वर्तित आहार है, उस आहार की अभिलाषा असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त में विमात्रा से उत्पन्न होती है। शेष सब कथन पृथ्वीकायिकों के समान "कदाचित् निःश्वास लेते हैं" यहाँ तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि वे नियम से छह दिशाओं से (आहार लेते हैं।)

१८१६. बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कतिभागं आहारेंति कतिभागं अस्साएंति? एवं जहा णेरइयाणं (सु. १८०३)।

[१८१६ प्र.] भगवन्! द्वीन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे भविष्य में उन पुद्गलों के कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वादन करते हैं?

[१८१६ उ.] गौतम! इस विषय में (सू. १८०३ में उक्त) नारकों के समान कहना चाहिए।

१८१७. बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति?

गोयमा! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पण्णत्ते। तं जहा—लोमाहारे य पक्खेवाहारे य। जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गेण्हंति ते सव्वे अपरिसेसे आहारेंति, जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गेण्हंति तेसिं असंखे

---

1. (क) पण्णवणासुत्तं, भा. १ (मू. [illegible]) पृ. ३९४-३९५
   (ख) प्रज्ञापनासूत्र ([illegible]) [illegible] पृ. २५३

ज्जइमाणमाहारेंति णेगाइ च ण भागसहस्साइ अफासाइज्जमाणाण अणासाइज्जमाणाण विद्धसमागच्छंति ।

[१८१७ प्र] भगवन्! द्वीन्द्रिय जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सबका आहार करते ह अथवा उन सबका आहार नही करते? (अर्थात् उन सबके एक भाग का आहार करते है?)

[१८१७ उ] गौतम! द्वीन्द्रिय जीवो का आहार दो प्रकार का कहा है। यथा—लोमाहार और प्रक्षेपाहार। वे जिन पुद्गलो को लोमाहार के रूप मे ग्रहण करते है, उन सबका समग्ररूप से आहार करते हैं और जिन पुद्गलो को प्रक्षेपाहाररूप मे ग्रहण करते हैं, उनमे से असख्यातवे भाग का ही आहार करते हैं उनके बहुत से (अनेक) सहस्र भाग यो ही विध्वस को प्राप्त हो जाते हैं, न ही उनका बाहर भीतर स्पश हो पाता है और न ही आस्वादन हो पाता है।

१८१८ एतेसि ण भंते! पोग्गलाण अणासाइज्जमाणाण अफासाइज्जमाणाण य कतरे कतरेहिंतो ४?[1]

गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

[१८१८ प्र] भगवन्! इन पूर्वोक्त प्रक्षेपाहारपुद्गलो मे से आस्वादन न किये जाने वाले तथा स्पृष्ट न होने वाले पुद्गलो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक ह?

[१८१८ उ] गौतम! सबसे कम आस्वादन न किये जाने वाले पुद्गल हैं, उनमे अनन्तगुणे (पुद्गल) स्पृष्ट न होने वाले हैं।

१८१९ बेइंदिया ण भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए० पुच्छा।

गोयमा! जिब्भिदिय फासिंदियवेमायत्ताए ते तेसिं भुज्जो २ परिणमंति।

[१८१९ प्र] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीव जिन पुद्गलो का आहार के रूप मे ग्रहण करते है, वे पुद्गल किस किस रूप मे पुन पुन परिणत होते हैं? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१८१९ उ] गौतम! वे पुद्गल जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा के रूप मे पुन पुन परिणत होते हैं।

१८२० एव जाव चउरिंदिया। णवर णेगाइ च ण भागसहस्साइ अणग्घाइज्जमाणाइ अफासाइज्जमाणाइ अणस्साइज्जमाणाइ विद्धसमागच्छंति।

[१८२०] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय तक के विषय मे कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके (त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) द्वारा प्रक्षेपाहाररूप मे गृहीत पुद्गलो के अनेक सहस्र भाग अनाघ्रायमाण (नहीं सूघे हुए), अस्पृश्यमान (बिना छुए हुए) तथा अनास्वाद्यमान (स्वाद लिये बिना) ही विध्वस को प्राप्त हो जाते हैं।

१८२१ एतेसि ण भंते! पोग्गलाण अणाघाइज्जमाणाण अणासाइज्जमाणाण अफासाइज्जमाणाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४?

१ ४ सूचक चिह्न—'अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?' इस पाठ का सूचक है —स

गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा, अणस्साइज्जमाणा अणंतगुणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा ।

[१८२१ प्र.] भगवन् ! इन अनाघ्रायमाण, अस्पृश्यमान और अनास्वाद्यमान पुद्गलों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[१८२१ उ.] गौतम ! अनाघ्रायमाण पुद्गल सबसे कम हैं, उससे अनन्तगुणे पुद्गल अनास्वाद्यमान हैं और अस्पृश्यमान पुद्गल उससे अनन्तगुणे हैं ।

१८२२. तेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गला० पुच्छा ।

गोयमा ! घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियवेमायत्ताए ते तेसिं भुज्जो २ परिणमंति ।

[१८२२ प्र.] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल उनमें किस रूप में पुनः पुनः परिणत होते हैं ?

[१८२२ उ.] गौतम ! वे पुद्गल घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा से (अर्थात्—इष्ट—अनिष्टरूप से) पुनः पुनः परिणत होते हैं ।

१८२३. चउरिंदियाणं चक्खिदिय-घाणिदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियवेमायत्ताए ते तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति, सेसं जहा तेइंदियाणं ।

[१८२३] (चतुरिन्द्रिय द्वारा आहार के रूप में गृहीत पुद्गल) चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा से पुनः पुनः परिणत होते हैं । चतुरिन्द्रियों का शेष कथन त्रीन्द्रियों के कथन के समान समझना चाहिए ।

विवेचन—विकलेन्द्रियों के आहार के विषय में स्पष्टीकरण—लोमाहार—लोमों या रोमों (रोओं) द्वारा किया जाने वाला आहार लोमाहार कहलाता है । प्रक्षेपाहार अर्थात् कवलाहार, मुख में डाल (प्रक्षिप्त) कर या कौर (ग्रास) के रूप में मुख द्वारा किया जाने वाला आहार प्रक्षेपाहार है । वर्षा आदि के मौसम में ओघरूप से पुद्गलों का शरीर में प्रवेश हो जाता है, जिसका अनुमान मूत्र आदि से किया जाता है वह लोमाहार है । द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय जीव लोमाहार के रूप में जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, उन सबका पूर्णरूप से आहार करते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा होता है । तथा जिन पुद्गलों को वे प्रक्षेपाहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उनके असंख्यातवें भाग का ही आहार कर पाते हैं । उनमें से बहुत से सहस्रभाग उनके द्वारा बिना स्पर्श किये बिना आस्वादन किये यों ही विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि उनमें से कोई पुद्गल अतिस्थूल होने के कारण और कोई अतिसूक्ष्म होने के कारण आहृत नहीं हो पाते ।[1]

आहार्य पुद्गलों का अल्पबहुत्व—प्रक्षेपाहार रूप से ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों में सबसे कम पुद्गल अनास्वाद्यमान होते हैं, आशय यह है कि एक-एक स्पर्शयोग्य भाग में अनन्तवाँ भाग आस्वाद के योग्य होता है और उसका भी अनन्तवाँ भाग आघ्राण—(सूँघने के) योग्य होता है । अतः

1 प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ४ पृ. १८४

सबसे कम अनाघ्रायमाण पुद्गल होते है । उनसे अनन्तगुणे पुद्गल अनास्वाद्यमान होते हैं और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल अस्पृश्यमान होते हैं ।[1]

पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों, मनुष्यो, ज्योतिष्को एव वाणव्यन्तरों मे आहारार्थी आदि सात द्वार

१८२४ पचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा तेइंदिया । णवर तत्थ ण जे से आभोगणिव्वत्तिए से जहण्णेण अतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेण छट्ठभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति ।

[१८२४] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो का कथन त्रीन्द्रिय जीवो के समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि उनमे जो आभोगनिर्वर्तित आहार है, उस आहार की अभिलाषा उन्हे जघन्य अन्तमुहूर्त से और उत्कृष्ट षष्ठभक्त से (अर्थात् दो दिन छोड कर) उत्पन्न होती है ।

१८२५ पचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते । जे पोग्गले आहारत्ताए० पुच्छा ।

गोयमा ! सोइंदिय-चक्खिदिय-घाणिंदिय-जिब्भिदिय फासेंदियवेमायत्ताए भुज्जो २ परिणमति ।

[१८२५ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तियञ्चयोनिक जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल उनमे किस रूप मे पुन -पुन प्राप्त होते हैं ?

[१८२५ उ] गौतम ! आहाररूप मे गृहीत वे पुद्गल श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा के रूप मे पुन -पुन परिणत होते है ।

१८२६ मणूसा एव चेव । णवर आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण अतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेण अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

[१८२६] मनुष्यो की आहार-सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि उनकी आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य अन्तमुहूर्त मे होती है और उत्कृष्ट अष्टमभक्त (तीन दिन काल व्यतीत) होने पर उत्पन्न होती है ।

१८२७ वाणमतरा जहा णागकुमारा (सु १८०६ [२]) ।

[१८२७] वाणव्यन्तर देवो का आहार-सम्बन्धी कथन नागकुमारो के समान जानना चाहिए ।

१८२८ एव जोइसिया वि । णवर आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण दिवस-पुहत्तस्स, उक्कोसेण वि दिवसपुहत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

[१८२८] इसी प्रकार ज्योतिष्कदेवो का भी कथन है । किन्तु उन्हे आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस-पृथक्त्व मे और उत्कृष्ट भी दिवस-पृथक्त्व मे उत्पन्न होती है ।

विवेचन—**तियञ्च पचेन्द्रिय आदि की आहारसम्बन्धी विशेषता**—उनको आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य अन्तमुहूर्त मे और उत्कृष्ट षष्ठभक्त मे (दो दिन के बाद) होती है । यह कथन देवकुरु—उत्तरकुरु क्षेत्रो के तियञ्च पचेन्द्रियो की अपेक्षा से समझना चाहिए । मनुष्यो को

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ ५८४

आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य अन्तर्मुहूर्त से और उत्कृष्ट अष्टमभक्त से (तीन दिन के बाद) होती है। यह कथन भी देवकुरु—उत्तरकुरु क्षेत्रों के मनुष्यों की अपेक्षा से समझना चाहिए। इन दोनों द्वारा गृहीत आहार्य पुद्गल भी पंचेन्द्रियों की विमात्रा के रूप में पुनः पुनः परिणत होते हैं। वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का अन्य सब कथन तो नागकुमार के समान है, लेकिन आभोगनिर्वर्तित आहाराभिलाषा जघन्य और उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्व (दो दिन से लेकर नौ दिन) से होती है। इन दोनों प्रकार के देवों की आयु पल्योपम के आठवें भाग की होने से स्वभाव से ही दिवसपृथक्त्व व्यतीत होने पर इन्हें आहार की अभिलाषा होती है।[1]

वैमानिक देवों में आहारादि सात द्वारों की प्ररूपणा (२-८)

१८२९. एवं वेमाणिया वि। णवरं आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं दिवस-पुहत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सेसं जहा असुरकुमाराणं (सु. १८०६ [१]) जाव ते तेसिं भुज्जो २ परिणमंति।

[१८२९] इसी प्रकार वैमानिक देवों की भी आहारसम्बन्धी वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेषता यह है कि इनका आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस-पृथक्त्व में और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में उत्पन्न होती है। शेष वक्तव्यता (सू. १८०६-१ में उक्त) असुरकुमारों के समान 'उनके उन पुद्गलों का बार-बार परिणमन होता है', यहाँ तक कहनी चाहिए।

१८३०. सोहम्मे आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं दिवसपुहत्तस्स, उक्कोसेणं दोण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

[१८३०] सौधर्मकल्प में आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य दिवस-पृथक्त्व से और उत्कृष्ट दो हजार वर्ष से समुत्पन्न होती है।

१८३१. ईसाणाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दिवसपुहत्तस्स सातिरेगस्स, उक्कोसेणं सातिरेगाणं दोण्हं वाससहस्साणं।

[१८३१ प्र.] ईशानकल्प-सम्बन्धी पूर्ववत् प्रश्न है।

[१८३१ उ.] गौतम! जघन्य कुछ अधिक दिवस-पृथक्त्व में और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार वर्ष में (उनको आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।)

१८३२. सणंकुमाराणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दोण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं सत्तण्हं वाससहस्साणं।

[१८३२ प्र.] सनत्कुमार सम्बन्धी पूर्ववत् प्रश्न है।

[१८३२ उ.] गौतम! जघन्य दो हजार वर्ष में और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

---

१. प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ५, पृ. ५८९ से ५९१ तक

१८३३ माहिंदे पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दोण्ह वाससहस्साण सातिरेगाण, उक्कोसेण सत्तण्ह वाससहस्साण सातिरेगाण ।

[१८३३ प्र] माहेन्द्रकल्प के विषय मे पूर्ववत् प्रश्न है ।

[१८३३ उ] गौतम ! जघन्य कुछ अधिक दो हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात हजार वर्ष मे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३४ बम्भलोए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण दसण्ह वाससहस्साण ।

[१८३४ प्र] गौतम ! ब्रह्मलोक-सम्बन्धी प्रश्न है ।

[१८३४ उ] गौतम ! (वहाँ) जघन्य सात हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष मे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३५ लतए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण चोद्दसण्ह वाससहस्साण आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

[१८३५ प्र] लान्तककल्प सम्बन्धी पूर्ववत् पृच्छा है ।

[१८३५ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष मे उन्हे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३६ महासुक्के ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चोद्दसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण सत्तरसण्ह वाससहस्साण ।

[१८३६ प्र] महाशुक्रकल्प के सम्बन्ध मे प्रश्न है ।

[१८३६ उ] गौतम ! वहा जघन्य चौदह हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट सत्तरह हजार वर्ष मे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३७ सहस्सारे ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तरसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण अट्ठारसण्ह वाससहस्साण ।

[१८३७ प्र] सहस्रारकल्प के विषय मे पृच्छा है ।

[१८३७ उ] गौतम ! जघन्य सत्तरह हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष मे उनको आहारेच्छा उत्पन्न होती है ।

१८३८ आणए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठारसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण एगूणवीसाए वाससहस्साण ।

[१८३८ प्र] आनतकल्प के विषय मे आहारसम्बन्धी प्रश्न है ।

[१८३८ उ] गौतम ! जघन्य अठारह हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट उन्नीस हजार वर्ष मे आहारेच्छा पैदा होती है ।

आभोगनिर्वतित आहार की अभिलाषा जघन्य अन्तमुहूर्त से और उत्कृष्ट अष्टमभक्त से (तीन दिन के बाद) होती है। यह कथन भी देवकुरु—उत्तरकुरु क्षेत्रों के मनुष्यों की अपेक्षा से समझना चाहिए। इन दोनों द्वारा गृहीत आहार्य पुद्गल भी पचेन्द्रियो की विमात्रा के रूप मे पुन पुन परिणत होते हैं। वाणव्य तर और ज्योतिष्क देवो का अन्य सब कथन तो नागकुमार के समान है, लेकिन आभोग निर्वतित आहाराभिलाषा जघन्य और उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्व (दो दिन से लेकर नौ दिनो) से होती है। इन दोनो प्रकार के देवो की आयु पल्योपम के आठवें भाग की होने से स्वभाव से ही दिवस पृथक्त्व व्यतीत होने पर इन्हें आहार की अभिलाषा होती है।[1]

वैमानिक देवो मे आहारादि सात द्वारो की प्ररूपणा (२-८)

१८२९ एव वेमाणिया वि। णवर आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स, उक्कोसेण तेत्तीसाए वाससहस्साण आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सेस जहा असुरकुमाराण (सु १८०६ [१]) जाव ते तेसिं भुज्जो २ परिणमति।

[१८२९] इसी प्रकार वैमानिक देवो की भी आहारसम्बन्धी वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेषता यह है कि इनको आभोगनिर्वतित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस-पृथक्त्व मे और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों मे उत्पन्न होती है। शेष वक्तव्यता (सू १८०६-१ मे उक्त) असुरकुमारो के समान 'उनके उन पुद्गलो का बार-बार परिणमन होता है', यहाँ तक कहनी चाहिए।

१८३० सोहम्मे आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स, उक्कोसेण दोण्ह वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

[१८३०] सौधर्मकल्प मे आभोगनिर्वतित आहार की इच्छा जघन्य दिवस-पृथक्त्व से और उत्कृष्ट दो हजार वर्ष से समुत्पन्न होती है।

१८३१ ईसाणाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स सातिरेगस्स, उक्कोसेण सातिरेगाण दोण्ह वाससहस्साण।

[१८३१ प्र] ईशानकल्प-सम्बन्धी पूर्ववत् प्रश्न है।

[१८३१ उ] गौतम ! जघन्य कुछ अधिक दिवस-पृथक्त्व मे और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार वर्ष मे (उनको आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।)

१८३२ सणकुमाराण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण दोण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण सत्तण्ह वाससहस्साण।

[१८३२ प्र] सनत्कुमार-सम्बन्धी पूर्ववत् प्रश्न है।

[१८३२ उ] गौतम ! जघन्य दो हजार वर्ष म और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष म आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा ५, पृ ५८९ से ५९१ तक

१८३३ माहिंदे पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दोण्ह वाससहस्साण सातिरेगाण, उक्कोसेण सत्तण्ह वाससहस्साण सातिरेगाण ।

[१८३३ प्र] माहेन्द्रकल्प के विषय मे पूर्ववत् प्रश्न है ।

[१८३३ उ] गौतम ! जघन्य कुछ अधिक दो हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात हजार वर्ष मे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३४ बम्भलोए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण दसण्ह वाससहस्साण ।

[१८३४ प्र] गौतम ! ब्रह्मलोक सम्बन्धी प्रश्न है ।

[१८३४ उ] गौतम ! (वहाँ) जघन्य सात हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष मे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३५ लतए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण चोद्दसण्ह वाससहस्साण आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

[१८३५ प्र] लान्तककल्प-सम्बन्धी पूर्ववत् पृच्छा है ।

[१८३५ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष मे उन्हे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३६ महासुक्के ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चोद्दसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण सत्तरसण्ह वाससहस्साण ।

[१८३६ प्र] महाशुक्रकल्प के सम्बन्ध मे प्रश्न है ।

[१८३६ उ] गौतम ! वहा जघन्य चौदह हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट सत्तरह हजार वर्ष मे आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८३७ सहस्सारे ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तरसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण अट्ठारसण्ह वाससहस्साण ।

[१८३७ प्र] सहस्रारकल्प के विषय मे पृच्छा है ।

[१८३७ उ] गौतम ! जघन्य सत्तरह हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष मे उनको आहारेच्छा उत्पन्न होती है ।

१८३८ आणए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठारसण्ह वाससहस्साण, उक्कोसेण एगूणवीसाए वाससहस्साण ।

[१८३८ प्र] आनतकल्प के विषय मे आहारसम्बन्धी प्रश्न है ।

[१८३८ उ] गौतम ! जघन्य अठारह हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट उन्नीस हजार वर्ष मे आहारेच्छा पैदा होती है ।

१८३९ पाणए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एगूणवीसाए वाससहस्साण, उक्कोसेण वीसाए वाससहस्साण ।

[१८३९ प्र] प्राणतकल्प के देवो की आहारविषयक पृच्छा है ।

[१८३९ उ] गौतम ! वहाँ जघन्य उन्नीस हजार वर्ष मे और उत्कृष्ट बीस हजार वष म आहाराभिलापा उत्पन्न होती है ।

१८४० आरणे ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वीसाए वाससहस्साण, उक्कोसेण एक्कवीसाए वाससहस्साण ।

[१८४० प्र] आरणकल्प मे आहारेच्छा सम्बन्धी पूर्ववत् प्रश्न है ।

[१८४० उ] गौतम ! जघन्य बीस हजार वष मे और उत्कृष्ट इक्कीस हजार वष मे आहाराभिलापा उत्पन्न होती है ।

१८४१ अच्चुए ण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीसाए वाससहस्साण, उक्कोसेण बावीसाए वाससहस्साण ।

[१८४१ प्र] भगवन् ! अच्युतकल्प के देवो को कितने काल मे आहार की अभिलापा उत्पन्न होती है ?

[१८४१ उ] गौतम ! जघन्य २१ हजार वष और उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष मे उनको आहारा भिलाषा उत्पन्न होती है ।

१८४२ हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण बावीसाए वाससहस्साण, उक्कोसेण तेवीसाए वाससहस्साण । एव सव्वत्थ सहस्साणि भाणियव्वाणि जाव सव्वट्ठ ।

[१८४२ प्र] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन (सबसे निचले) ग्रैवेयक देवो की आहारसम्बन्धी पृच्छा है ।

[१८४२ उ] गौतम ! जघन्य २२ हजार वष मे और उत्कृष्ट २३ हजार वष मे देवो को आहाराभिलापा उत्पन्न होती है । इस प्रकार सर्वार्थसिद्ध विमान तक (एक-एक) हजार वष अधिक कहना चाहिए ।

१८४३ हेट्ठिममज्झिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण तेवीसाए, उक्कोसेण चउवीसाए ।

[१८४३ प्र] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयको के विषय मे पृच्छा है ।

[१८४३ उ] गौतम ! जघन्य २३ हजार वष और उत्कृष्ट २४ हजार वर्ष म उन्हें आहारेच्छा उत्पन्न होती है ।

१८४४ हेट्ठिमउवरिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउवीसाए, उक्कोसेण पणुवीसाए ।

[१८४४ प्र] भगवन् ! अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयकों के विषय में आहाराभिलापा की पृच्छा है।

[१८४४ उ] गौतम ! जघन्य चौवीस हजार वर्ष और उत्कृष्ट २५ हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

१८४५ मज्झिमहेट्ठिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण पणुवीसाए, उक्कोसेण छव्वीसाए ।

[१८४५ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयकों के विषय में प्रश्न है।

[१८४५ उ] गौतम ! जघन्य २५ हजार वर्ष में और उत्कृष्ट २६ हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

१८४६ मज्झिममज्झिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण छव्वीसाए, उक्कोसेण सत्तावीसाए ।

[१८४६ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयकों को आहाराभिलाषा कितने काल में उत्पन्न होती है ?

[१८४६ उ] गौतम ! जघन्य २६ हजार वर्ष में और उत्कृष्ट २७ हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

१८४७ मज्झिमउवरिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीसाए उक्कोसेण अट्ठावीसाए ।

[१८४७ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरिम ग्रैवेयकों की आहारेच्छा सम्बन्धी पृच्छा है।

[१८४७ उ] गौतम ! जघन्य २७ हजार वर्ष और उत्कृष्ट २८ हजार वर्ष में उन्हें आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

१८४८ उवरिमहेट्ठिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीसाए, उक्कोसेण एगूणतीसाए ।

[१८४८ प्र] भगवन् ! उपरिम अधस्तन ग्रैवेयकों की आहारेच्छा-सम्बन्धी पृच्छा है।

[१८४८ उ] गौतम ! जघन्य २८ हजार वर्ष में और उत्कृष्ट २९ हजार वर्ष में उन्हें आहार करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८४९ उवरिममज्झिमाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एक्कूणतीसाए, उक्कोसेण तीसाए ।

[१८४९ प्र] भगवन् ! उपरिम-मध्यम ग्रैवेयकों को आहारेच्छा कितने काल में उत्पन्न होती है ?

[१८४९ उ] गौतम ! जघन्य २९ हजार वर्षों में और उत्कृष्ट ३० हजार वर्षों में उन्हें आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

१८५० उवरिमउवरिमगेवेज्जगाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण तीसाए, उक्कोसेण एक्कतीसाए ।

[१८५० प्र] भगवन् ! उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकों को कितने काल में आहारेच्छा उत्पन्न होती है ?

[१८५० उ] गौतम ! जघन्य ३० हजार वर्ष में और उत्कृष्ट ३१ हजार वर्ष में उन्हें आहार करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८५१ विजय वेजयंत जयंत-अपराजियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कत्तीसाए, उक्कोसेणं तेत्तीसाए।

[१८५१ प्र] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

[१८५१ उ] गौतम ! उन्हें जघन्य ३१ हजार वर्ष में और उत्कृष्ट ३३ हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

१८५२ सव्वट्ठगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जति।

[१८५२ प्र] भगवन् ! सर्वार्थक (सर्वार्थसिद्ध) देवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

[१८५२ उ] गौतम ! उन्हें अजघन्य अनुत्कृष्ट (जघन्य उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

विवेचन—वैमानिक देवों की आहार सम्बन्धी वक्तव्यता—वैमानिक देवों की वक्तव्यता ज्योतिष्क देवों के समान समझनी चाहिए, किन्तु इसमें विशेषता यह है कि वैमानिक देवों को आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य दिवसपृथक्त्व में होती है, और उत्कृष्ट ३३ हजार वर्षों में। ३३ हजार वर्षों में आहार की इच्छा का जो विधान किया गया है, वह अनुत्तरोपपातिक देवों की अपेक्षा से समझना चाहिए। शेष कथन जैसा असुरकुमारों के विषय में किया गया है, वैसा ही वैमानिकों के विषय में जान लेना चाहिए।

शुभानुभावरूप बाहुल्य कारण की अपेक्षा से वर्ण से—पीत और श्वेत, गन्ध से सुरभिगन्ध वाले, रस से—अम्ल और मधुर, स्पर्श से—मृदु, लघु स्निग्ध और रूक्ष पुद्गलों के पुरातन वर्ण गन्ध रस-स्पर्श-गुणों को रूपान्तरित करके अपने शरीरक्षेत्र में अवगाढ़ पुद्गलों का समस्त आत्मप्रदेशों से वैमानिक आहार करते हैं उन आहार किये हुए पुद्गलों को वे श्रोत्रेन्द्रियादि पांच इन्द्रियों के रूप में, इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ, मनाम, इष्ट और विशेष अभीष्ट रूप में, हल्के रूप में, भारी रूप में नहीं, सुखदरूप में, दुःखदरूप में नहीं, परिणत करते हैं।[1]

विशेष स्पष्टीकरण—जिन वैमानिक देवों की जितने सागरोपम की स्थिति है, उन्हें उतने ही हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है। इस नियम के अनुसार सौधर्म, ईशान आदि देवलोकों में आहारेच्छा की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का परिमाण समझ लेना चाहिए। इसे स्पष्ट-

---

१ (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. ५, पृ. ५१२-५१३
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. २, पृ. ५०६

रूप से समझने के लिए नीचे एक तालिका दी जा रही है, जिससे आसानी से वैमानिक देवों की आहारेच्छा के काल को समझा जा सके।

क्रम	वैमानिकदेव का नाम	जघन्य आहारेच्छाकाल	उत्कृष्ट आहारेच्छाकाल
१	सौधर्मकल्प के देव	दिवस पृथक्त्व	दो हजार वर्ष
२	ईशानकल्प के देव	कुछ अधिक दिवस-पृथक्त्व	कुछ अधिक दो हजार वर्ष
३	सनत्कुमारकल्प के देव	दो हजार वर्ष	सात हजार वर्ष
४	माहेन्द्रकल्प के देव	कुछ अधिक दो हजार वर्ष	कुछ अधिक ७ हजार वर्ष
५	ब्रह्मलोक के देव	सात हजार वर्ष	दस हजार वर्ष
६	लान्तककल्प के देव	दस हजार वर्ष	चौदह हजार वर्ष
७	महाशुक्रकल्प के देव	चौदह हजार वर्ष	सत्तरह हजार वर्ष
८	सहस्रारकल्प के देव	सत्तरह हजार वर्ष	अठारह हजार वर्ष
९	आनतकल्प के देव	अठारह हजार वर्ष	उन्नीस हजार वर्ष
१०	प्राणतकल्प के देव	उन्नीस हजार वर्ष	बीस हजार वर्ष
११	आरणकल्प के देव	बीस हजार वर्ष	इक्कीस हजार वर्ष
१२	अच्युतकल्प के देव	इक्कीस हजार वर्ष	बाईस हजार वर्ष
१३	अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक देव	बाईस हजार वर्ष	तेईस हजार वर्ष
१४	अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देव	तेईस हजार वर्ष	चौबीस हजार वर्ष
१५	अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक देव	चौबीस हजार वर्ष	पच्चीस हजार वर्ष
१६	मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक देव	पच्चीस हजार वर्ष	छब्बीस हजार वर्ष
१७	मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देव	छब्बीस हजार वर्ष	सत्ताईस हजार वर्ष
१८	मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक देव	सत्ताईस हजार वर्ष	अट्ठाईस हजार वर्ष
१९	उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक देव	अट्ठाईस हजार वर्ष	उनतीस हजार वर्ष
२०	उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक देव	उनतीस हजार वर्ष	तीस हजार वर्ष
२१	उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक देव	तीस हजार वर्ष	इकतीस हजार वर्ष
२२	विजय-वैजयन्त जयन्त अपराजित देव	इकतीस हजार वर्ष	तेतीस हजार वर्ष
२३	सर्वार्थसिद्ध देव	अजघन्य-अनुत्कृष्ट	तेतीस हजार वर्ष

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति अ. रा. कोष ५०६
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. ५, पृ. ५९२-६०२

नौवां एकेन्द्रियशरीरादिद्वार

१८५३ णेरइया णं भंते ! किं एगिंदियसरीराइं आहारेंति जाव पंचेंदियसरीराइं आहारेंति ?

गोयमा ! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियसरीराइं पि आहारेंति जाव पंचेंदियसरीराइं पि, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा पंचेंदियसरीराइं आहारेंति ।

[१८५३ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक एकेन्द्रियशरीरों का यावत् पंचेन्द्रियशरीरों का आहार करते हैं ?

[१८५३ उ] गौतम ! पूर्वभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से वे एकेन्द्रियशरीरों का भी आहार करते हैं, यावत् पंचेन्द्रियशरीरों का भी तथा वर्तमानभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से नियम से वे पंचेन्द्रियशरीरों का आहार करते हैं।

१८५४ एवं जाव थणियकुमारा ।

[१८५४] (असुरकुमारों से लेकर) स्तनितकुमारों तक इसी प्रकार (समझना चाहिए।)

१८५५ पुढविक्काइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा एगिंदिय सरीराइं आहारेंति ।

[१८५५ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के विषय में पूर्ववत् प्रश्न है ।

[१८५५ उ] गौतम ! पूर्वभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से नारकों के समान वे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक का आहार करते हैं। वर्तमानभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से नियम से वे एकेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं।

१८५६ बेइंदिया पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एयं चेव, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा बेइंदियसरीराइं आहारेंति ।

[१८५६] द्वीन्द्रियजीवों के सम्बन्ध में पूर्वभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से इसी प्रकार (पूर्ववत् कहना चाहिए।) वर्तमानभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से वे नियम से द्वीन्द्रियशरीरों का आहार करते हैं।

१८५७ एवं जाव चउरिंदिया ताव पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एयं, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा जस्स जति इंदियाइं तइंदियसरीराइं ते आहारेंति ।

[१८५७] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियपर्यन्त पूर्वभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से पूर्ववत् (कथन जानना चाहिए।) वर्तमानभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से जिसके जितनी इन्द्रियां हैं, उतनी ही इन्द्रियों वाले शरीर का आहार करते हैं।

१८५८ सेसा जहा णेरइया जाव वेमाणिया ।

[१८५८] वैमानिकों तक शेष जीवों का कथन नै ... [illegible]

कौन सा जीव किनके शरीरो का आहार करता है ?—प्रस्तुत प्रकरण मे नैरयिक आदि चौवीस दण्डकवर्ती जीव जिन-जिन जीवो के शरीर का आहार करते हैं, उसकी प्ररूपणा की गई है, दो अपेक्षाओ से—पूर्वभावप्रज्ञापना (अर्थात् अतीतकालीन पर्यायो की प्ररूपणा) की अपेक्षा से और प्रत्युत्पन्न वर्तमानकालिक भाव की प्ररूपणा की अपेक्षा से।[1]

प्रश्न के समाधान का आशय—प्रश्न तो मूलपाठ से स्पष्ट है, किन्तु उसके समाधान मे जो कहा गया कि नारकादि जीव पूर्वभावप्रज्ञापना की अपेक्षा से—एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के शरीरो का आहार करते हैं और वर्तमानभावप्रज्ञापना की अपेक्षा नरयिकादि पचेन्द्रिय नियम से पचेन्द्रियशरीरो का, चतुरिन्द्रिय चतुरिन्द्रियशरीरो का, त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रियशरीरो का, द्वीन्द्रिय द्वीन्द्रियशरीरो का और पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय एकेन्द्रियशरीरो का ही आहार करते हैं। अर्थात्—जो प्राणी जितनी इन्द्रियो वाला है, वह उतनी ही इन्द्रियो वाले शरीरो का आहार करते हैं। इस समाधान का आशय वृत्तिकार लिखते है कि आहार्यमाण पुद्गलो के अतीतभाव (पर्याय) की दृष्टि से विचार किया जाए तो निष्कर्ष यह निकलता है कि उनमे से कभी कोई एकेन्द्रियशरीर के रूप मे परिणत थे, कोई द्वीन्द्रियशरीर के रूप मे परिणत थे, कोई त्रीन्द्रियशरीर या चतुरिन्द्रियशरीर के रूप म और कोई पचेन्द्रियशरीर के रूप मे परिणत थे। उस पूर्वभाव का यदि वर्तमान म आरोप करके विवक्षा की जाए तो नारकजीव एकेन्द्रियशरीरो का तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एव पचेन्द्रिय शरीरो का भी आहार करते हैं। किन्तु जब ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से वर्तमान-भव की विवक्षा की जाती है, तब ऋजुसूत्रनय क्रियमाण को कृत, आहार्यमाण को आहृत और परिणम्यमान पुद्गलो को परिणत स्वीकार करता है, जो स्वशरीर के रूप मे परिणत हो रहे हैं। इस प्रकार ऋजुसूत्रनय के मत से स्वशरीर का ही आहार किया जाता है। नारको, देवो, मनुष्यो और पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो का स्वशरीर पचेन्द्रिय है। शेष जीवो (एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय) के विषय म भी इसी प्रकार स्थिति के अनुसार कहना चाहिए।[2]

दसवाँ लोमाहारद्वार

१८५९. णेरइया ण भंते ! कि लोमाहारा पक्खेवाहारा ?

गोयमा ! लोमाहारा, णो पक्खेवाहारा।

[१८५९ प्र] भगवन् ! नारक जीव लोमाहारी हैं या प्रक्षेपाहारी हैं ?

[१८५९ उ] गौतम ! वे लोमाहारी हैं, प्रक्षेपाहारी नही हैं।

१८६०. एव एगिदिया सव्वे देवा य भाणियव्वा जाव वेमाणिया।

[१८६०] इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवो, वैमानिको तक सभी देवो के विषय मे कहना चाहिए।

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ३९९

(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५, पृ ६०५-६०६

२ वही भा ५ पृ ६०६ से ६०९ तक।

१८६१ बेइंदिया जाव मणूसा लोमाहारा वि पक्खेवाहारा वि ।

[१८६१] द्वीन्द्रियों से लेकर मनुष्यों तक लोमाहारी भी हैं, प्रक्षेपाहारी भी हैं ।

विवेचन—चौवीस दण्डकों मे लोमाहारी प्रक्षेपाहारी-प्ररूपणा—लोमाहारी का अर्थ है—रोमों (रोओं) द्वारा आहार ग्रहण करने वाले तथा प्रक्षेपाहारी का अर्थ है—कवलाहारी—ग्रास (कौर) हाथ मे लेकर मुख मे डालने वाले जीव । चौवीस दण्डकों मे नारक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक और एकेन्द्रिय जीव लोमाहारी हैं, प्रक्षेपाहारी नही, क्योंकि नारक और चारों प्रकार के देव वैक्रियशरीरधारी होते हैं, इसलिए तथाविध स्वभाव से ही वे लोमाहारी होते हैं । उनमे कवलाहार का अभाव है । पृथ्वीकायिकादि पाच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवो के मुख नहीं होता, अतएव उनमे प्रक्षेपाहार का अभाव है । किन्तु द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च एव मनुष्य लोमाहारी भी होते हैं और कवलाहारी (प्रक्षेपाहारी) भी । नारको का लोमाहार भी पर्याप्त नारको का ही जानना चाहिए, अपर्याप्तकों का नही ।[1]

ग्यारहवाँ मनोभक्षीद्वार

१८६२ णेरइया णं भंते ! किं ओयाहारा मणभक्खी ?

गोयमा ! ओयाहारा, णो मणभक्खी ।

[१८६२ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव ओज-आहारी होते हैं, अथवा मनोभक्षी ?

[१८६२ उ] गौतम ! वे ओज-आहारी होते हैं, मनोभक्षी नहीं ।

१८६३ एवं सव्वे ओरालियसरीरा वि ।

[१८६३] इसी प्रकार सभी औदारिकशरीरधारी जीव भी ओज आहार वाले होते हैं ।

१८६४ देवा सव्वे जाव वेमाणिया ओयाहारा वि मणभक्खी वि । तत्थ णं जे ते मणभक्खी देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ 'इच्छामो णं मणभक्खणं करित्तए' तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकते समाणे खिप्पामेव जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव मणामा ते तेसिं मणभक्खत्ताए परिणमंति, से जहाणामए सीता पोग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अतिवइत्ताणं चिट्ठंति । एवामेव तेहिं देवेहिं मणभक्खणे कते समाणे गोयमा ! से इच्छामणे खिप्पामेव अवेति ।

[१८६४] असुरकुमारों से वैमानिकों तक सभी (प्रकार के) देव ओज आहारी भी होते हैं और मनोभक्षी भी । देवों में जो मनोभक्षी देव होते हैं उनको इच्छामन (अर्थात्—मन में आहार करने की इच्छा) उत्पन्न होती है । जैसे कि—वे चाहते हैं कि हम मनो—(मन में चिन्तित वस्तु का) भक्षण करें । तत्पश्चात् उन देवों के द्वारा मन में इस प्रकार की इच्छा किये जाने पर शीघ्र ही जो पुद्गल इष्ट, कान्त (कमनीय), यावत् मनोज्ञ, मनाम होते हैं, वे उनके मनोभक्ष्यरूप में परिणत हो जाते हैं । (यथा—मन से अमुक वस्तु के भक्षण की इच्छा से) तदनन्तर जिस किसी नाम

---

[1] प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५, पृ ६०९-६१० —

वाले शीत (ठडे) पुद्गल, शीतस्वभाव को प्राप्त होकर रहते है अथवा उष्ण पुद्गल, उष्णस्वभाव को पाकर रहते हैं।

हे गौतम ! इसी प्रकार उन देवो द्वारा मनोभक्षण किये जाने पर, उनका इच्छाप्रधान मन शीघ्र ही सन्तुष्ट—तृप्त हो जाता है।

॥ पण्णवणाए भगवतीए आहारपदे पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

विवेचन—ओज-आहारी का अर्थ—उत्पत्तिप्रदेश मे आहार के योग्य पुद्गलो का जो समूह होता है, वह 'ओज' कहलाता है। मन मे उत्पन्न इच्छा से आहार करने वाले मनोभक्षी कहलाते हैं।[1]

निष्कर्ष—जितने भी औदारिकशरीरी जीव है, वे सब तथा नारक ओज आहारी होते है तथा वैक्रियशरीरी जीवो मे चारो जाति के देव मनोभक्षी भी होते तथा ओज-आहारी भी होते है। मनोभक्षी देवो का स्वरूप इस प्रकार का है कि वे विशेष प्रकार की शक्ति से, मन मे शरीर को पुष्टिकर, सुखद, अनुकूल एव रुचिकर जिन आहार्य-पुद्गलो के आहार की इच्छा करते हैं, तदनुरूप आहार प्राप्त हो जाता है और उसकी प्राप्ति के पश्चात् वे परम सतोष एव तृप्ति का अनुभव करते हैं। नारको को ऐसा आहार प्राप्त नही होता, क्योंकि प्रतिकूल अशुभकर्मो का उदय होने से उनमे वैसी शक्ति नही होती।[2]

सूत्रकृतागनियुक्ति गाथाओं का अर्थ—ओजाहार शरीर के द्वारा होता है रोमाहार त्वचा (चमडी) द्वारा होता है और प्रक्षेपाहार कवल (कौर) करके किया जाने वाला होता है ॥ १ ॥ सभी अपर्याप्त जीव ओज-आहार करते हैं, पर्याप्त जीवो के तो रोमाहार और प्रक्षेपाहार (कवलाहार) की भजना होती है ॥ २ ॥ एकेन्द्रिय जीवो, नारको और देवो के प्रक्षपाहार (कवलाहार) नही होता, शेष सब ससारी जीवो के कवलाहार होता है ॥ ३ ॥ एकेन्द्रिय और नारकजीव तथा असुरकुमार आदि का गण रोमाहारी होता है, शेष जीवो का आहार रोमाहार एव प्रक्षेपाहार होता है ॥ ४ ॥ सभी प्रकार के देव ओज-आहारी और मनोभक्षी होते हैं। शेष जीव रोमाहारी और प्रक्षेपाहारी होते हैं ॥ ५ ॥[3]

॥ अट्ठाईसवाँ आहारपद प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ६१२

२ वही, भा ५, पृ ६१३

३ सरीरेणोयाहारो तयाय फासेण लोम-आहारो।
पक्खेवाहारो कावलिओ होइ नायव्वो ॥ १७१ ॥
ओयाहारा जीवा सव्वे अपज्जत्तगा मुणेयव्वा।
पज्जत्तगा य लोमे पक्खेवे होति भइयव्वा ॥ १७२ ॥
एगिंदियदेवाण नेरइयाण च नत्थि पक्खेवो।
सेसाण जीवाण ससारत्थाण पक्खेवो ॥ १७३ ॥
लोमाहारा एगिंदिया उ नेरइय सुरगणा चेव।
सेसाण आहारो लोमे पक्खेवओ चेव ॥ ४ ॥
ओयाहारा मणभक्खिणो य सव्वे वि सुरगणा होति।
सेसा हवति जीवा लोमे पक्खेवओ चेव ॥ ५ ॥ —सूत्रकृताग श्रु २, अ ३ निर्युक्ति

बीओ उद्देसओ

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक के तेरह द्वारो की सग्रहणी गाथा

१८६५ आहार १ भविय २ सण्णी ३ लेस्सा ४ दिट्ठी य ५ सजय ६ कसाए ७ ।
णाणे ८ जोगुवओगे ९-१० वेदे य ११ सरीर १२ पज्जत्ती १३ ॥ २१९ ॥

[१८६५ सग्रहणी-गाथार्थ] द्वितीय उद्देशक मे निम्नोक्त तेरह द्वार है—(१) आहारद्वार, (२) भव्यद्वार, (३) सज्ञीद्वार, (४) लेश्याद्वार, (५) दृष्टिद्वार, (६) सयतद्वार, (७) कषायद्वार, (८) ज्ञानद्वार, (९-१०) योगद्वार, उपयोगद्वार, (११) वेदद्वार, (१२) शरीरद्वार और (१४) पर्याप्तिद्वार।

विवेचन—द्वितीय उद्देशक मे इन तेरह द्वारो के आधार पर आहार का प्ररूपण किया जाएगा। यहाँ 'भव्य' आदि शब्दो के ग्रहण से उनके विरोधी 'अभव्य' आदि का भी ग्रहण हो जाता है।

प्रथम आहारद्वार

१८६६ [१] जीवे ण भंते ! किं आहारए अणाहारए ?
गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए ।

[१८६६ प्र] भगवन् ! जीव आहारक है या अनाहारक है ?
[१८६६ उ] गौतम ! वह कथचित् आहारक है, कथचित् अनाहारक है।

[२] एव नेरइए जाव असुरकुमारे जाव वेमाणिए ।

[१८६६-२] नैरयिक (से लेकर) यावत् असुरकुमार और वैमानिक तक इसी प्रकार जानना चाहिए।

१८६७ सिद्धे ण भंते ! किं आहारए अणाहारए ?
गोयमा ! णो आहारए, अणाहारए।

[१८६७ प्र] भगवन् ! एक सिद्ध (जीव) आहारक होता है या अनाहारक होता है ?
[१८६७ उ] गौतम ! एक सिद्ध (जीव) आहारक नहीं होता, अनाहारक होता है।

१८६८ जीवा ण भंते ! किं आहारया अणाहारया ?
गोयमा ! आहारगा वि अणाहारगा वि ।

[१८६८ प्र] भगवन् ! (बहुत) जीव आहारक होते है, या अनाहारक होते है ?
[१८६८ उ] गौतम ! वे आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं।

१८६९ [१] णेरइयाण पुच्छा।

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा आहारगा १ अहवा आहारगा य अणाहारगे य २ अहवा आहारगा य अणाहारगा य ३।

[१८६९-१ प्र] भगवन् ! (बहुत) नैरयिक आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

[१८६९-१ उ] गौतम ! (१) वे सभी आहारक होते हैं, (२) अथवा बहुत आहारक और कोई एक अनाहारक होता है, (३) या बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं।

[२] एवं जाव वेमाणिया। णवरं एगिदिया जहा जीवा।

[१८७०] इसी तरह वैमानिक-पर्यन्त जानना चाहिये। विशेष यह है कि एकेन्द्रिय जीवों का कथन बहुत जीवों के समान समझना चाहिए।

१८७० सिद्धाण पुच्छा।

गोयमा ! णो आहारगा, अणाहारगा। दारं १।

[१८७० प्र] (बहुत) सिद्धों के विषय में पूर्ववत् प्रश्न है।

[१८७० उ] गौतम ! सिद्ध आहारक नहीं होते, वे अनाहारक ही होते हैं। [प्रथम द्वार]

विवेचन—जीव स्यात् आहारक स्यात् अनाहारक कैसे ?—विग्रहगति, केवलि-समुद्घात, शैलेशी अवस्था और सिद्धावस्था की अपेक्षा समुच्चय जीव को अनाहारक और इनके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा आहारक समझना चाहिए। कहा भी है—

'विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समोहया अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारगा जीवा॥'

समुच्चय जीव की तरह नैरयिक भी कथंचित् आहारक और कथंचित् अनाहारक होता है। असुरकुमार से लेकर वैमानिक देव तक सभी जीव कथंचित् आहारक और कथंचित् अनाहारक होते हैं।[1]

बहुवचन की अपेक्षा—कोई जीव आहारक होते हैं, कोई अनाहारक भी होते हैं। सभी नारक आहारक होते हैं, अथवा बहुत नारक आहारक होते हैं, कोई एक अनाहारक होता है, अथवा बहुत-से आहारक और बहुत से अनाहारक होते हैं। यही कथन वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। एकेन्द्रिय जीवों का कथन समुच्चय जीवों के समान समझना। अर्थात् वे बहुत-से अनाहारक और बहुत-से आहारक होते हैं।

सिद्ध एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा सदैव अनाहारक होते हैं।[2]

विग्रहगति की अपेक्षा से जीव अनाहारक—विग्रहगति से भिन्न समय में सभी जीव आहारक होते हैं और विग्रहगति कहीं, कभी, किसी जीव को होती है। यद्यपि विग्रहगति सर्वकाल में पाई

१ (क) प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, अभि रा को भा २, पृ ५१०
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५ पृ ६२८ से ६३० तक

२ वही, भा ५, पृ ६२८

जाती है, किन्तु वह होती है प्रतिनियत जीवों की ही। इस कारण आहारकों को बहुत कहा है। सिद्ध सदैव अनाहारक होते हैं व सदैव विद्यमान रहते हैं तथा अभव्यजीवों से अनन्तगुणे भी हैं तथा सदैव एक एक निगोद का प्रतिसमय असंख्यातवाँ भाग विग्रहगतिप्राप्त रहता है। इस अपेक्षा से अनाहारकों की संख्या भी बहुत कही है।[1]

बहुत-से नारकों के तीन भंग क्यों और कैसे?—(१) पहला भंग है—नारक कभी-कभी सभी आहारक होते हैं, एक भी नारक अनाहारक नहीं होता। यद्यपि नारकों में उपपात का विरह भी होता है जो केवल बारह मुहूर्त का होता है, उस काल में पूर्वोत्पन्न एवं विग्रहगति को प्राप्त नारक आहारक हो जाते हैं तथा कोई नया नारक उत्पन्न नहीं होता। अतएव कोई भी नारक उस समय अनाहारक नहीं होता। (२) दूसरा भंग है—बहुत से नारक आहारक और कोई एक नारक अनाहारक होता है। इसका कारण यह है कि नारक में कदाचित् एक जीव उत्पन्न होता है, कदाचित् दो, तीन, चार यावत् संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं। अतएव जब एक जीव उत्पद्यमान होता है और वह विग्रहगति-प्राप्त होता है तथा दूसरे सभी पूर्वोत्पन्न नारक आहारक हो चुकते हैं उस समय यह दूसरा भंग समझना चाहिए। (३) तीसरा भंग है—बहुत-से नारक आहारक और बहुत-से अनाहारक। यह भंग उस समय घटित होता है, जब बहुत नारक उत्पन्न हो रहे हों और वे विग्रहगति को प्राप्त हों। इन तीन के सिवाय कोई भी भंग नारकों में सम्भव नहीं है।[2]

एकेन्द्रिय जीवों में केवल एक भंग क्यों और कैसे?—पृथ्वीकायिकों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक में केवल एक ही भंग पाया जाता है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक से लेकर वायुकायिक तक चार स्थावर जीवों में प्रतिसमय असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए बहुत-से आहारक होते हैं तथा वनस्पतिकायिक में प्रतिसमय अनन्तजीव विग्रहगति से उत्पन्न होते हैं। इस कारण उनमें सदैव अनाहारक भी बहुत पाये जाते हैं। इसलिए समस्त एकेन्द्रियों में केवल एक ही भंग पाया जाता है—बहुत-से आहारक और बहुत से अनाहारक।[3]

द्वितीय भव्यद्वार

१८७१. [१] भवसिद्धिए णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१८७१-१ प्र.] भगवन्! भवसिद्धिक जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है?

[१८७१-१ उ.] गौतम! वह कदाचित् आहारक होता है, कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] एवं जाव वेमाणिए।

[१८७१-२] इसी प्रकार की वक्तव्यता वैमानिक तक जाननी चाहिए।

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ५, पृ. ६२९

२ प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभि. रा. कोष भा. २, पृ. ५१०

३ अभि. रा. कोष, भा. २, पृ. ५१०

१८७२ भवसिद्धिया ण भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?

गोयमा ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।

[१८७२ प्र] भगवन् ! (बहुत) भवसिद्धिक जीव आहारक होते हैं या अनाहारक ?

[१८७२ उ] गौतम ! समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर (इस विषय में) तीन भंग कहने चाहिए।

१८७३ अभवसिद्धिए वि एवं चेव ।

[१८७३] अभवसिद्धिक के विषय में भी इसी प्रकार (भवसिद्धिक के समान) कहना चाहिए।

१८७४ [१] णोभवसिद्धिए-णोअभवसिद्धिए ण भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?

गोयमा ! णो आहारए, अणाहारए ।

[१८७४-१ प्र] भगवन् ! नो-भवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव आहारक होता है या अनाहारक ?

[१८७४-१ उ] गौतम ! वह आहारक नहीं होता, अनाहारक होता है।

[२] एवं सिद्धे वि ।

[१८७४-२] इसी प्रकार सिद्ध जीव के विषय में कहना चाहिए।

१८७५ [१] णोभवसिद्धिया णोअभवसिद्धिया ण भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?

गोयमा ! णो आहारगा, अणाहारगा ।

[१८७५-१ प्र] भगवन् ! (बहुत-से) नो-भवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव आहारक होते हैं या अनाहारक ?

[१८७५-१ उ] गौतम ! वे आहारक नहीं होते, किन्तु अनाहारक होते हैं।

[२] एवं सिद्धा वि । दारं २ ॥

[१८७५-२] इसी प्रकार बहुत-से सिद्धों के विषय में समझ लेना चाहिए। [द्वितीय द्वार]

विवेचन—भवसिद्धिक कब आहारक, कब अनाहारक ?—भवसिद्धिक अर्थात्—भव्यजीव विग्रहगति आदि अवस्था में अनाहारक होता है और शेष समय में आहारक। भवसिद्धिक समुच्चय जीव की तरह भवसिद्धिक भवनपति आदि चारों जाति के देव, मनुष्य, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, एकेन्द्रिय आदि सभी जीव (सिद्ध को छोडकर) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होते हैं।[1]

बहुत्वविशिष्ट भवसिद्धिक जीव के तीन भंग क्यों और कैसे ?—आहारकद्वार के समान समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड शेष नारक आदि बहुत्वविशिष्ट सभी जीवों में उक्त के समान तीन भंग होते हैं।

---

१ अभि रा कोष भा २, पृ ५१०

अभवसिद्धिक और भवसिद्धिक। लक्षण एवं आहारकता-अनाहारकता—अभवसिद्धिक वह है, जो मोक्षगमन के योग्य न हो। भवसिद्धिक वे जीव हैं, जो संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त भवों के पश्चात् कभी न कभी सिद्धि प्राप्त करेंगे। भवसिद्धिक की भांति अभवसिद्धिक के विषय में भी आहारकत्व-अनाहारकत्व का प्ररूपण किया गया है।[1]

नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक और सिद्ध—नो-भवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक सिद्धजीव ही हो सकता है। क्योंकि सिद्ध मुक्तिपद को प्राप्त कर चुकते हैं, इसीलिए उन्हें भव्य नहीं कहा जा सकता तथा मोक्ष को प्राप्त हो जाने के कारण उन्हें मोक्षगमन के अयोग्य—अभवसिद्धिक (अभव्य) भी नहीं कहा जा सकता। एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से ये अनाहारक ही होते हैं।[2]

तृतीय संज्ञीद्वार

१८७६ [१] सण्णी णं भंते ! जीवे किं आहारगे अणाहारगे ?

गोयमा ! सिय आहारगे सिय अणाहारगे।

[१८७६-१ प्र] भगवन् ! संज्ञी जीव आहारक है या अनाहारक है ?

[१८७६-१ उ] गौतम ! वह कदाचित आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] एवं जाव वेमाणिए। णवरं एगिंदिय विगलिंदिया ण पुच्छिज्जंति।

[१८७६-२] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। किन्तु एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

१८७७ सण्णी णं भंते ! जीवा किं आहारया अणाहारगा ?

गोयमा ! जीवाईओ तियभंगो जाव वेमाणिया।

[१८७७ प्र] भगवन् ! बहुत से संज्ञी जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

[१८७७ उ] गौतम ! जीवादि से लेकर वैमानिक तक (प्रत्येक में) तीन भंग होते हैं।

१८७८ [१] असण्णी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?

गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१८७८-१ प्र] भगवन् ! असंज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८७८-१ उ] गौतम ! वह कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] एवं णेरइए जाव वाणमंतरे।

[१८७८-२] इसी प्रकार नारक से लेकर वाणव्यन्तर पर्यन्त कहना चाहिए।

[३] जोइसिय-वेमाणिया ण पुच्छिज्जंति।

[१८७८-३] ज्योतिष्क और वैमानिक के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति पृ. ५१०

२ वही, अ. रा. कोष भा. २, पृ. ५१०-५११

१८७९ असण्णी ण भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?

गोयमा ! आहारगा वि अणाहारगा वि, एगो भंगो।

[१८७९ प्र] भगवन् ! (बहुत) असंज्ञी जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

[१८७९ उ] गौतम ! वे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। इनमें केवल एक ही भंग होता है।

१८८० [१] असण्णी णं भंते ! णेरइया किं आहारगा अणाहारगा ?

गोयमा ! आहारगा वा १ अणाहारगा वा २ अहवा आहारए य अणाहारए य ३ अहवा आहारए य अणाहारगा य ४ अहवा आहारगा य अणाहारगे य ५ अहवा आहारगा य अणाहारगा य ६, एवं एते छब्भंगा।

[१८८०-१ प्र] भगवन् ! (बहुत) असंज्ञी नैरयिक आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

[१८८०-१ उ] गौतम वे—(१) सभी आहारक होते हैं, (२) सभी अनाहारक होते हैं। (३) अथवा एक आहारक और एक अनाहारक, (४) अथवा एक आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं, (५) अथवा बहुत आहारक और एक अनाहारक होता है तथा (६) अथवा बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं।

[२] एवं जाव थणियकुमारा।

[१८८०-२] इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

[३] एगिंदिएसु अभंगयं।

[१८८० ३] एकेन्द्रिय जीवों में भंग नहीं होता।

[४] बेइंदिय जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु तियभंगो।

[१८८०-४] द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रियतिर्यञ्च तक के जीवों में पूर्वोक्त कथन के समान तीन भंग कहने चाहिए।

[५] मणूस वाणमंतरेसु छब्भंगा।

[१८८०-५] मनुष्यों और वाणव्यन्तर देवों में (पूर्ववत्) छह भंग कहने चाहिए।

१८८१ [१] णोसण्णी-णोअसण्णी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?

गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१८८१-१ प्र] भगवन् ! नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८८१-१ उ] गौतम ! वह कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] एवं मणूसे वि।

[१८८१-२] इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिए।

[३] सिद्धे प्रणाहारए।

[१८८१-३] सिद्ध जीव अनाहारक होता है।

१८८२ [१] पुहत्तेण णोसण्णी णोप्रसण्णी जीवा प्राहारगा वि प्रणाहारगा वि।

[१८८२-१] बहुत्व की अपेक्षा से नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते है।

[२] मणूसेसु तियभंगो।

[१८८२-२] (बहुत्व की अपेक्षा से नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी) मनुष्यों मे तीन भंग (पाये जाते हैं।)

[३] सिद्धा प्रणाहारगा। दारं ३ ॥

[१८८२-३] (बहुत-से) सिद्ध अनाहारक होते हैं। [तृतीय द्वार]

विवेचन—संज्ञी असंज्ञी स्वरूप—जो मन से युक्त हों, वे संज्ञी कहलाते हैं। असंज्ञी अमनस्क होता है। प्रश्न होता है—संज्ञी जीव के भी विग्रहगति में मन नहीं होता, ऐसी स्थिति मे अनाहारक कैसे? इसका समाधान यह है कि विग्रहगति को प्राप्त होने पर भी जो जीव संज्ञी के आयुष्य का वेदन कर रहा है, वह उस समय मन के अभाव मे भी संज्ञी ही कहलाता है, जैसे—नारक के आयुष्य का वेदन करने के पश्चात् विग्रहगतिप्राप्त नरकगामी जीव नारक ही कहलाता है।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय मनोहीन होने के कारण संज्ञी नही होते, इसलिए यहाँ संज्ञीप्रकरण मे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

ज्योतिष्क और वैमानिकों मे असंज्ञी की पृच्छा नहीं—ज्योतिष्क और वैमानिकों मे असंज्ञीपन का व्यवहार नही होता, इसलिए इन दोनों में असंज्ञी का आलापक नहीं कहना चाहिए।

नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव मे आहारकता-अनाहारकता—ऐसा जीव एकत्व की विवक्षा से कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है, क्योंकि केवलीसमुद्घातावस्था के अभाव में आहारक होता है, शेष अवस्था मे अनाहारक होता है। बहुत्व की विवक्षा से इनमें दो भंग पाए जाते हैं। यथा—(१) आहारक भी नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव बहुत होते हैं, क्योंकि समुद्घात अवस्था से रहित केवली बहुत पाये जाते हैं। सिद्ध अनाहारक होते हैं, इसलिए अनाहारक भी बहुत पाये जाते हैं। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी मनुष्यों मे तीन भंग पाये जाते हैं—(१) जब कोई भी केवलीसमुद्घातावस्था में नहीं होता, तब सभी आहारक होते हैं, यह प्रथम भंग, (२) जब बहुत-से मनुष्य समुद्घातावस्था में हों और एक केवलीसमुद्घातगत हो, तब दूसरा भंग, (३) जब बहुत से केवलीसमुद्घातावस्था को प्राप्त हों, तब तीसरा भंग होता है।[1]

चतुर्थ लेश्याद्वार

१८८३ [१] सलेसे णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए सिय अणाहारए।

---

१ (क) अभि. रा. कोष भा. २, पृ. ५११

(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी भा. ५, पृ. ९४२

[१८८३-१ प्र] भगवन् ! सलेश्य जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८८३-१ उ] गौतम ! वह कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] एव जाव वेमाणिए।

[१८८३-२] इसी प्रकार वैमानिक तक जानना चाहिए।

१८८४ सलेसा ण भते ! जीवा कि आहारगा अणाहारगा ?

गोयमा ! जीवेगिदियवज्जो तियभगो।

[१८८४ प्र] भगवन् ! (बहुत) सलेश्य जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

[१८८४ उ] गौतम ! समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर इनके तीन भग होते हैं।

१८८५ [१] एव कण्हलेसाए वि णीललेसाए वि काउलेसाए वि जीवेगिदियवज्जो तियभगो।

[१८८५ १] इसी प्रकार कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी और कापोतलेश्यी के विषय मे भी समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर (पूर्वोक्त प्रकार से नारक आदि प्रत्येक मे) तीन भग कहने चाहिए।

[२] तेउलेस्साए पुढवि आउ-वणस्सइकाइयाण छब्भगा।

[१८८५-२] तेजोलेश्या की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिको मे छह भग (कहने चाहिए।)

[३] सेसाण जीवादीओ तियभगो जेसि अत्थि तेउलेसा।

[१८८५-३] शेष जीव आदि (अर्थात् जीव से लेकर वैमानिक पर्यन्त) मे, जिनमे तेजोलेश्या पाई जाती है, उसमे तीन भग (कहने चाहिए।)

[४] पम्हलेस्साए सुक्कलेस्साए य जीवादीओ तियभगो।

[१८८५-४] पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले (जिनमे पाई जाती है, उन) जीव आदि मे तीन भग पाए जाते हैं।

१८८६ अलेस्सा जीवा मणूसा सिद्धा य एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णो आहारगा, अणाहारगा। दार ४॥

[१८८६] अलेश्य (लेश्यारहित) समुच्चय जीव, मनुष्य, (अयोगी केवली और सिद्ध एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से आहारक नही होते, किन्तु अनाहारक ही होते हैं। [चतुर्थ द्वार]

विवेचन—सलेश्य जीवो मे आहारकता-अनाहारकता की प्ररूपणा—एकत्व की अपेक्षा— सलेश्य जीव तथा चौबीसदण्डकवर्ती जीव विग्रहगति, केवलीसमुद्घात और शैलेशी अवस्था की अपेक्षा अनाहारक और अन्य अवस्थाओ मे आहारक समझने चाहिए।

बहुत्व की अपेक्षा—समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर शेष नारक आदि प्रत्येक मे पूर्वोक्त युक्ति से तीन भग होते हैं। जीवो और एकेन्द्रियो मे सिर्फ एक भग—(बहुत आहारक और बहुत अनाहारक) पाया जाता है, क्योंकि दोनो सदैव बहुत सख्या मे पाए जाते हैं। कृष्ण-नील-

कापोतलेश्यी नारक आदि में भी समुच्चय सलेश्य जीवों के समान प्रत्येक में तीन भंग (समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर) कहने चाहिए।[1]

तेजोलेश्यी जीवों के आहारकता-अनाहारकता—एकत्व की अपेक्षा से तेजोलेश्यावान् पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियों में प्रत्येक में एक ही भंग (पूर्ववत्) समझना चाहिए।

बहुत्व की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक तेजोलेश्यावान् में छह भंग पाये जाते हैं—(१) सब आहारक, (२) सब अनाहारक, (३) एक आहारक एक अनाहारक, (४) एक आहारक बहुत अनाहारक, (५) बहुत आहारक एक अनाहारक और (६) बहुत आहारक बहुत अनाहारक।

इनके अतिरिक्त समुच्चय जीवों से लेकर वैमानिक पर्यन्त जिन जिन जीवों में तेजोलेश्या पाई जाती है, उन्हीं में प्रत्येक में पूर्ववत् तीन-तीन भंग कहने चाहिए, शेष में नहीं। अर्थात्—नारकों में, तेजस्कायिकों में, वायुकायिकों में, द्वीन्द्रियों, त्रीन्द्रियों और चतुरिन्द्रियों में तेजोलेश्या सम्बन्धी वक्तव्यता नहीं कहनी चाहिए, क्योंकि इनमें तेजोलेश्या नहीं होती।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिकों में तेजोलेश्या इस प्रकार है कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्मादि देवलोकों के वैमानिक देव तेजोलेश्या वाले होते हैं, वे च्यवन कर पृथ्वीकायिकादि तीनों में उत्पन्न हो सकते हैं, इस दृष्टि से पृथ्वीकायिकादित्रय में तेजोलेश्या सम्भव है।[2]

पद्म शुक्ललेश्यायुक्त जीवों की अपेक्षा आहारक अनाहारक-विचारणा—पंचेन्द्रियतिर्यंचों, मनुष्यों, वैमानिकदेवों और समुच्चय जीवों में ही पद्म शुक्ललेश्याद्वय पाई जाती है, अतएव इनमें एकत्व की विवक्षा में पूर्ववत् एक ही भंग होता है तथा बहुत्व की अपेक्षा पूर्ववत् तीन भंग होते हैं।

लेश्यारहित जीवों में अनाहारकता—समुच्चय जीव, मनुष्य, अयोगिकेवली और सिद्ध लेश्या रहित होते हैं, अतएव ये एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से अनाहारक ही होते हैं, आहारक नहीं।[3]

पंचम दृष्टिद्वार

१८८७ [१] सम्मद्दिट्ठी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?

गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१८८७-१ प्र.] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८८७-१ उ.] गौतम ! वह कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया छब्भंगा।

[१८८७-२] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय (सम्यग्दृष्टियों) में पूर्वोक्त छह भंग होते हैं।

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभि. रा. कोष भा. २, पृ. ५१२

२ (क) प्रज्ञापनाचूर्णि—'जेणं तेसु भवणवइ-वाणमंतर-सोहम्मीसाणया देवा उववज्जंति तेणं तेउलेसा लब्भइ।'

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. २ पृ. ५१२

३ वही मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. २ पृ. ५१२

[३] सिद्धा प्रणाहारगा ।

[१८८७-३] सिद्ध ग्रनाहारक होते ह ।

[४] अवसेसाण तियभगो ।

[१८८७-४] शेष सभी (सम्यग्दृष्टि जीवो) मे (एकत्व की अपेक्षा से) तीन भग (पूर्ववत्) होते हैं ।

१८८८ मिच्छद्दिट्ठीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभगो ।

[१८८८] मिथ्यादृष्टियो मे समुच्चय जीव और एकेन्द्रियो को छोड कर (प्रत्येक मे) तीन-तीन भग पाये जाते हैं ।

१८८९ [१] सम्मामिच्छद्दिट्ठी ण भते ! किं आहारए प्रणाहारए ?

गोयमा ! आहारए, णो अणाहारए ।

[१८८९-१ प्र] भगवन् ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८८९-१ उ] गौतम ! वह आहारक होता है, अनाहारक नही होता है ।

[२] एव एगिंदिय-विगलिंदियवज्ज जाव वेमाणिए ।

[१८८९-२] एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड कर वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार (का कथन करना चाहिए ।)

[३] एव पुहत्तेण वि । दारं ५ ॥

[१८८९-३] बहुत्व की अपेक्षा से भी इसी प्रकार की वक्तव्यता समझनी चाहिए ।

[पचमद्वार]

विवेचन—दृष्टि की अपेक्षा से आहारक अनाहारक-प्ररूपणा—प्रस्तुत मे सम्यग्दृष्टि पद का अर्थ—औपशमिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक और वेदक तथा क्षायिक सम्यक्त्व वाले समझना चाहिए क्योंकि यहाँ सामान्यपद से सम्यग्दृष्टि शब्द प्रयुक्त किया गया है । औपशमिक सम्यग्दृष्टि आदि प्रसिद्ध ह । वेदक सम्यग्दृष्टि वह है, जो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के चरम समय मे हो और जिसे अगले ही समय मे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होने वाली हो ।

सम्यग्दृष्टि जीवादि पदों मे—एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से क्रमश एक एक भग कहना चाहिए, यथा जीव आदि पदो मे एकत्वापेक्षया—कदाचित एक आहारक और एक अनाहारक, यह एक भग और बहुत्व की अपेक्षा—बहुत आहारक और बहुत अनाहारक, यह एक भग होता है । इनमे पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियो की वक्तव्यता नही कहनी चाहिए, क्योंकि इनमे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि दोनो का अभाव होता है । विकलेन्द्रिय सम्यग्दृष्टियो मे पूर्वोक्तवत् छह भग कहने चाहिए। द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियो मे अपर्याप्त अवस्था मे सास्वादन-सम्यक्त्व की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टित्व समझना चाहिए । सिद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी होते है और सदैव अनाहारक होते हैं । शेष अर्थात् नैरयिको, भवनपतियो, पचेन्द्रियतिर्यञ्चो, मनुष्यो, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्कों और वैमानिको मे जो सम्यग्दृष्टि हैं, पूर्वोक्त युक्ति से उनमे तीन भग पाये जाते हैं ।

मिथ्यादृष्टियों में—एकत्व की विवक्षा से सर्वत्र कदाचित एक आहारक एक अनाहारक, यह एक भंग पाया जाता है। बहुत्व की विवक्षा से समुच्चय जीव और पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टियों में से प्रत्येक के बहुत आहारक बहुत अनाहारक, यह एक ही भंग पाया जाता है। इनके अतिरिक्त सभी स्थानों में पूर्ववत् तीन-तीन भंग कहने चाहिए। यहाँ सिद्ध-सम्बन्धी आलापक नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सिद्ध मिथ्यादृष्टि होते ही नहीं हैं।[1]

सम्यग्मिथ्यादृष्टि में आहारकता या अनाहारकता—सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी जीव एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से, एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों को छोड़कर आहारक होते हैं, क्योंकि संसारी जीव विग्रहगति में अनाहारक होते हैं। मगर सम्यग्मिथ्यादृष्टि विग्रहगति में होते नहीं हैं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि की अवस्था में मृत्यु नहीं होती। एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों का कथन यहाँ इसलिए नहीं करना चाहिए कि वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि[2] नहीं होते।

छठा संयतद्वार

१८९० [१] संजए णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?

गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१८९०-१ प्र] भगवन् ! संयत जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८९०-१ उ] गौतम ! वह कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है।

[२] एवं मणूसे वि।

[१८९०-२] इसी प्रकार मनुष्य संयत का भी कथन करना चाहिए।

[३] पुहत्तेणं तियभंगो।

[१८९०-३] बहुत्व की अपेक्षा से (समुच्चय जीवों और मनुष्यों में) तीन-तीन भंग (पाये जाते हैं।)

१८९१ [१] असंजए पुच्छा।

गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१८९१-१ प्र] भगवन् ! असंयत जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८९१-१ उ] गौतम ! वह कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक भी होता है।

[२] पुहत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१८९१-२] बहुत्व की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर इनमें तीन भंग होते हैं।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा २, पृ ५१३

(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी भा ५, पृ ११७-५८

२ वही, भा ५, पृ ११७-५८

१८९२ सजयासजए जीवे पचेंदियतिरिक्खजोणिए मणूसे य एते एगत्तेण वि पुहत्तेण वि आहारगा, णो अणाहारगा ।

[१८९२] सयतासयतजीव, पचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य, ये एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक होते हैं, अनाहारक नही ।

१८९३ णोसजए णोअसजए-णोसजयासजए जीवे सिद्धे य एते एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णो आहारगा, अणाहारगा । दार ६ ।।

[१८९३] नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत जीव और सिद्ध, ये एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक नही होते, किन्तु अनाहारक होते हैं । [छठा द्वार]

विवेचन—सयत सयतासयत, असयत और नोसयत नोअसयत नोसयतासयत की परिभाषा—जो सयम (पचमहाव्रतादि) को अगीकार करे अर्थात् विरत हो उसे सयत कहते हैं । जो अणुव्रती श्रावकत्व अगीकार करे अर्थात् देशविरत हो, उसे सयतासयत कहते हैं । जो अविरत हो, न तो साधुत्व को अगीकार करे और न ही श्रावकत्व को, वह असयत है और जो न तो सयत है न सयतासयत है और न असयत है, वह नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत कहलाता है । सयत समुच्चय जीव और मनुष्य ही हो सकता है, सयतासयत समुच्चय जीव, मनुष्य एव पचेन्द्रियतियञ्च हो सकता है, नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत अयोगिकेवली तथा सिद्ध होते हैं ।

सयत जीव और मनुष्य एकत्वापेक्षया केवलिसमुद्घात और अयोगित्वावस्था की अपेक्षा अनाहारक और अन्य समय मे आहारक होता है ।

बहुत्व की अपेक्षा से तीन भग—(१) सभी सयत आहारक होते हैं, यह भग तब घटित होता है जब कोई भी केवलीसमुद्घातावस्था मे या अयोगी अवस्था मे न हो । (२) बहुत सयत आहारक और कोई एक अनाहारक, यह भग भी तब घटित होता है जब एक केवलीसमुद्घातावस्था मे या शैलेशी अवस्था मे होता है । (३) बहुत सयत आहारक और बहुत अनाहारक, यह भग भी तब घटित होता है जब बहुत-से सयत केवलीसमुद्घातवस्था मे हो या शैलेशी-अवस्था मे हो ।

असयत मे एकत्वापेक्षा से—एक आहारक, एक अनाहारक यह एक ही विकल्प होता है । बहुत्व की अपेक्षा से—समुच्चय जीवो और असयत पृथ्वीकायिकादि प्रत्येक मे बहुत आहारक और बहुत अनाहारक यही एक भग होता है । असयत नारक से वैमानिक तक (समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर) प्रत्येक मे पूर्ववत् तीन-तीन भग होते हैं ।

सयतासयत—देशविरतजीव, मनुष्य और पचेन्द्रियतियञ्च ये तीनो एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से आहारक ही होते है, अनाहारक नही, क्योकि मनुष्य और तिर्यञ्चपचेन्द्रिय के सिवाय किसी जीव मे देशविरति-परिणाम उत्पन्न नही होता और सयतासयत सदैव आहारक ही होते हैं, क्योकि अन्तरालगति और केवलिसमुदघात आदि अवस्थाओ मे देशविरति-परिणाम होता नही है ।

नोसयत-नोअसयत नोसयतासयत जीव व सिद्ध—एकत्व-बहुत्व-अपेक्षा से अनाहारक ही होते हैं, आहारक नही, क्योकि शैलेशी प्राप्त त्रियोगरहित और सिद्ध अशरीरी होने के कारण आहारक होते ही नही हैं ।[1]

---

१ अभि रा को, भा २, पृ ५१३

सप्तम कषायद्वार

१८९४ [१] सकसाई णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?

गोयमा ! सिय आहारए सिय अणाहारए ।

[१८९४-१ प्र] भगवन् ! सकषाय जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१८९४-१ उ] गौतम ! वह कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है ।

[२] एवं जाव वेमाणिए ।

[१८९४-२] इसी प्रकार (नारक से लेकर) वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए ।

१८९५ [१] पुहत्तेण जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।

[१८९५-१] बहुत्व की अपेक्षा से—जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर (सकषाय नारक आदि में) तीन भंग (पाए जाते हैं ।)

[२] कोहकसाईसु जीवादिएसु एवं चेव । णवरं देवेसु छब्भंगा ।

[१८९५-२] क्रोधकषायी जीव आदि में भी इसी प्रकार तीन भंग कहने चाहिए । विशेष यह है कि देवों में छह भंग कहने चाहिए ।

[३] माणकसाईसु मायाकसाईसु य देव-णेरइएसु छब्भंगा । अवसेसाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।

[१८९५-३] मानकषायी और मायाकषायी देवों और नारकों में छह भंग पाये जाते हैं ।

[४] लोभकसाईएसु णेरइएसु छब्भंगा । अवसेसेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।

[१८९५-४] लोभकषायी नरयिकों में छह भंग होते हैं । जीव और एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं ।

१८९६ अकसाई जहा णोसण्णी णोअसण्णी (सु. १८८१-८२) दारं ७ ॥

[१८९६] अकषायी की वक्तव्यता नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी के समान जाननी चाहिए ।

[सप्तम द्वार]

विवेचन—सकषाय जीव और चौबीस दण्डकों में आहारक-अनाहारक की प्ररूपणा—एकत्व की विवक्षा से समुच्चय जीव और चौबीस दण्डकवर्ती जीव पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है । बहुत्व की विवक्षा से समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर सकषाय नारकादि में पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार तीन भंग पाये जाते हैं । समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों में एक भंग—'बहुत आहारक, बहुत अनाहारक' होता है ।[1]

---

१ (क) अभि. रा. कोष भा. २, पृ. ५१३

(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. ५, पृ. ६६३

क्रोधकषायी की प्ररूपणा—चौबीस दण्डको मे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से एक भग—कदाचित् आहारक कदाचित् अनाहारक—होता है। क्रोधकषायी समुच्चय जीवो तथा एकेन्द्रियो मे केवल एक ही भग—बहुत आहारक और बहुत अनाहारक—होता है। शेष जीवो मे देवो को छोड कर पूर्वोक्त रीति से तीन भग होते हैं। विशेष—देवो के छह भग—(१) सभी क्रोधकषायी देव आहारक होते हैं। यह भग तब घटित होता है जब कोई भी क्रोधकषायी देव विग्रहगतिसमापन्न नही होता, (२) कदाचित् सभी क्रोधकषायी देव अनाहारक होते हैं। यह भग तब घटित होता है, जब कोई भी क्रोधकषायी देव आहारक नही होता। यहाँ मान आदि के उदय से रहित क्रोध का उदय विवक्षित है, इस कारण क्रोधकषायी आहारक देव का अभाव सम्भव है, (३) कदाचित् एक आहारक और एक अनाहारक (४) देवो मे क्रोध की बहुलता नही होती, स्वभाव से ही लोभ की अधिकता होती है, अत क्रोधकषायी देव कदाचित् एक भी पाया जाता है, (५) कदाचित् बहुत आहारक और एक अनाहारक और (६) कदाचित् बहुत आहारक और बहुत अनाहारक पाये जाते हैं।

मानकषायी और मायाकषायी जीवादि मे—एकत्व की अपेक्षा से पूववत् एक एक भग। बहुत्व की अपेक्षा से—मान-मायाकषायी देवो और नारको मे प्रत्येक मे ६ भग पूववत् समझना चाहिए। देवो और नारको मे मान और माया कषाय की विरलता पाई जाती है, देवो मे लोभ की और नारको मे क्रोध की बहुलता होती है। इस कारण ६ ही भग सम्भव हैं। मान-मायाकषायी शेष जीवो मे समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोडकर तीन भग पूववत् होते हैं। समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो मे एक भग—बहुत आहारक-बहुत अनाहारक—होता है।

लोभकषायी जीवादि मे—लोभकषायी नारको मे पूववत ६ भग होते हैं, क्योकि नारको मे लोभ की तीव्रता नही होती। नारको के सिवाय एकेन्द्रियो और समुच्चय जीवो को छोडकर शेष जीवो मे ३ भग पूववत् पाये जाते हैं। समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो मे प्रत्येक मे एक ही भग—बहुत आहारक और बहुत अनाहारक—पाया जाता है।[१]

अकषायी जीवो मे—अकषायी मनुष्य और सिद्ध ही होते हैं। मनुष्यो मे उपशान्तकषाय आदि ही अकषायी होते हैं। उनके अतिरिक्त सकषायी होते हैं। अतएव उन सकषायी समुच्चय जीवो, मनुष्यो और सिद्धो मे से समुच्चय जीव मे और मनुष्य मे केवल एक भग—कदाचित् एक आहारक और एक अनाहारक—पाया जाता है। सिद्ध मे एक भग—'अनाहारक' ही पाया जाता है। बहुत्व की विवक्षा से—समुच्चय जीवो मे—बहुत आहारक और बहुत अनाहारक—एक भग ही होता है। क्योकि आहारक केवली और अनाहारक सिद्ध बहुत सख्या मे उपलब्ध होते हैं। मनुष्यो मे पूर्ववत् तीन भग समझने चाहिये। सिद्धो मे केवल एक ही भग—'अनाहारक' पाया जाता है।[२]

अष्टम ज्ञानद्वार

१८९७ णाणी जहा सम्मद्दिट्ठी (सु १८८७)।

[१८९७] ज्ञानी की वक्तव्यता सम्यग्दृष्टि के समान समझनी चाहिए।

---

१ (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५, ६६४ से ६६७ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा २, पृ ५१३-५१४

२ (क) वही, मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा २ पृ ५१४
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा ५, पृ ६६७-६६८

१८९८ [१] आभिणिबोहियणाणि-सुयणाणिसु बेइंदिय-तेइंदिय चउरिंदिएसु छब्भंगा। अवसेसेसु जीवादीओ तियभंगो जेसिं अत्थि।

[१८९८-१] आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में (पूर्ववत्) छह भंग समझने चाहिए। शेष जीव आदि (समुच्चय जीव और नारक आदि) में जिनमें ज्ञान होता है, उनमें तीन भंग (पाये जाते हैं।)

[२] ओहिणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिया आहारगा, णो अणाहारगा। अवसेसेसु जीवादीओ तियभंगो जेसिं अत्थि ओहिणाणं।

[१८९८-२] अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च आहारक होते हैं अनाहारक नहीं। शेष जीव आदि में, जिनमें अवधिज्ञान पाया जाता है, उनमें तीन भंग होते हैं।

[३] मणपज्जवणाणी जीवा मणूसा य एगत्तेण वि पुहत्तेण वि आहारगा, णो अणाहारगा।

[१८९८-३] मनःपर्यवज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं।

[४] केवलणाणी जहा णोसण्णी-णोअसण्णी (सु १८८१ ८२)।

[१८९८-४] केवलज्ञानी का कथन (सू १८८१-८२ में उक्त) नोसंज्ञी नोअसंज्ञी के कथन के समान जानना चाहिए।

१८९९ [१] अण्णाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१८९९-१] अज्ञानी, मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग पाये जाते हैं।

[२] विभंगणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य आहारगा, णो अणाहारगा। अवसेसेसु जीवादीओ तियभंगो। दारं ८॥

[१८९९-२] विभंगज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। अवशिष्ट जीव आदि में तीन भंग पाये जाते हैं। [अष्टम द्वार]

विवेचन—ज्ञानी जीवों में आहारक-अनाहारक प्ररूपणा—समुच्चय ज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी) में सम्यग्दृष्टि के समान प्ररूपणा जाननी चाहिए, क्योंकि एकेन्द्रिय सदैव मिथ्यादृष्टि होने के कारण अज्ञानी ही होते हैं, इसलिए एकेन्द्रिय को छोड़कर एकत्व की अपेक्षा से समुच्चय जीव तथा वैमानिक तक शेष १९ दण्डकों में ज्ञानी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। बहुत्व की विवक्षा से समुच्चयज्ञानी जीव आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी। नारकों से लेकर स्तनितकुमारों तक ज्ञानी जीवों में पूर्वोक्त रीति से तीन भंग होते हैं। पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों, मनुष्यों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकों में भी तीन भंग ही पाए जाते हैं। तीन विकलेन्द्रिय ज्ञानियों में छह भंग प्रसिद्ध हैं। सिद्ध ज्ञानी अनाहारक ही होते हैं।

आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी में एकत्व की अपेक्षा से—पूर्ववत् समझना। बहुत्व की अपेक्षा से—तीन विकलेन्द्रियों में छह भंग होते हैं। उनके अतिरिक्त एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष जीवादि पदों में, जिनमें आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान हो, उनमें प्रत्येक में तीन-तीन भंग कहने

चाहिए। एकेन्द्रिय जीवो मे आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान का अभाव होता है। इसलिए उनकी पृच्छा नही करनी चाहिए।

अवधिज्ञानी मे—अवधिज्ञान पचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य, देव और नारक को होता है, अन्य जीवो को नही। अत एकेन्द्रियो एव तीन विकलेन्द्रियो को छोडकर पचेन्द्रियतिर्यञ्च अवधिज्ञानी सदव आहारक ही होते है। यद्यपि विग्रहगति मे पचेन्द्रितियञ्च अनाहारक होते हैं, किन्तु उस समय उनमे अवधिज्ञान नही होता। चूंकि पचेन्द्रियतिर्यञ्चो को गुणप्रत्यय अवधिज्ञान होता है—हो सकता है, मगर विग्रहगति के समय गुणो का अभाव होता है, इस कारण अवधिज्ञान का भी उस समय अभाव होता है। इसी कारण अवधिज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च अनाहारक नही हो सकता। एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रियो को छोडकर पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के अतिरिक्त अन्य स्थानो मे समुच्चय जीव से लेकर नारको, मनुष्यो एव समस्त जाति के देवो मे प्रत्येक मे तीन-तीन भग कहने चाहिए, परन्तु कहना उन्ही मे चाहिए जिनमे अवधिज्ञान का अस्तित्व हो। एकत्व की विवक्षा से पूववत् प्ररूपणा समभनी चाहिए।

मन पर्यवज्ञानी मे—मन पयवज्ञान मनुष्यो मे ही होता है। अत उसके विषय मे दो पद ही कहते हैं—मन पयवज्ञानी जीव और मनुष्य। एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से ये दोनो मन पयवज्ञानी आहारक ही होते हैं, अनाहारक नही, क्योंकि विग्रहगति आदि अवस्थाओ मे मन पयवज्ञान होता ही नही है।

केवलज्ञानी मे—केवलज्ञानी की प्ररूपणा मे तीन पद होते हैं—समुच्चय जीवपद, मनुष्यपद और सिद्धपद। इन तीन के सिवाय और किसी जीव मे केवलज्ञान का सद्भाव नही होता। प्रस्तुत मे केवलज्ञानी की आहारक-अनाहारकविषयक प्ररूपणा नोसज्ञी-नोअसज्ञीवत् बताई गई है। अर्थात् समुच्चय जीवपद और मनुष्यपद मे एकत्व की अपेक्षा से एक भग—कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक—होता है। सिद्धपद मे अनाहारक ही कहना चाहिए। बहुत्व की विवक्षा से—समुच्चय जीवो मे आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं। मनुष्यो मे पूर्वोक्त भग कहना चाहिए। सिद्धो मे अनाहारक ही होते हैं।

अज्ञानी की अपेक्षा से—अज्ञानियो म, मत्यज्ञानियो और श्रुताज्ञानियो मे बहुत्व की विवक्षा से, जीवो और एकेन्द्रियो को छोडकर अन्य पदो मे प्रत्येक मे तीन भग कहने चाहिए। समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो मे आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी। विभगज्ञानी मे एकत्व की विवक्षा से पूववत् ही समभना चाहिए। बहुत्व की विवक्षा से—विभगज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च एव मनुष्य आहारक होते हैं, अनाहारक नही होते, क्योंकि विग्रहगति मे विभगज्ञानयुक्त पचेन्द्रिय तियञ्चो और मनुष्यो मे उत्पत्ति होना सम्भव नही है। पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो से भिन्न स्थानो मे एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रियो को छोडकर जीव से लेकर प्रत्येक स्थान मे तीन भग कहना चाहिए।[1]

नौवां . योगद्वार

१९०० [१] सजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभगो।

---

१ (क) प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, अ रा को भाग २, पृ ५१४
(ख) प्रज्ञापना, (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ ६७५ स ६७७ तक

[१९००-१] सयोगियों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग (पाये जाते हैं।)

[२] मणजोगी वइजोगी य जहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी (सु १८८९)। णवरं वइजोगी विगलिंदियाण वि।

[१९००-२] मनोयोगी और वचनयोगी के विषय में (सू. १८८९ में उक्त) सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह कि वचनयोग विकलेन्द्रियों में भी कहना चाहिए।

[३] कायजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९००-३] काययोगी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग (पाये जाते हैं।)

[४] अजोगी जीव-मणूस सिद्धा अणाहारगा। दारं ९॥

[१९००-४] अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध होते हैं और वे अनाहारक हैं।

[नौवां द्वार]

विवेचन—योगद्वार की अपेक्षा प्ररूपणा—समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर अन्य सयोगी जीवों में पूर्वोक्त तीन भंग पाये जाते हैं। समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों में एक भंग ही पाया जाता है—बहुत आहारक—बहुत अनाहारक, क्योंकि ये दोनों सदैव बहुत संख्या में पाये जाते हैं। मनोयोगी और वचनयोगी के सम्बन्ध में कथन सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान जानना चाहिए, अर्थात् वे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक ही होते हैं, अनाहारक नहीं। यद्यपि विकलेन्द्रिय सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते, किन्तु उनमें वचनयोग होता है, इसलिए यहाँ उनकी भी प्ररूपणा करनी चाहिए। समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष नारक आदि काययोगियों में पूर्ववत् तीन भंग कहना चाहिए। अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध होते हैं, ये तीनों अयोगी एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से अनाहारक होते हैं।[1]

दसवां : उपयोगद्वार

१९०१ [१] सागाराणागारोवउत्तेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९०१-१] समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर अन्य साकार एवं अनाकार उपयोग से उपयुक्त जीवों में तीन भंग कहने चाहिए।

[२] सिद्धा अणाहारगा। दारं १०॥

[१९०१-२] सिद्ध जीव (सदैव) अनाहारक ही होते हैं। [दसवाँ द्वार]

विवेचन—उपयोगद्वार की अपेक्षा से प्ररूपणा—समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष साकार एवं अनाकार उपयोग से उपयुक्त जीवों में तीन भंग पाए जाते हैं। सिद्ध जीव चाहे साकारोपयोग वाला हो, चाहे अनाकारोपयोग से उपयुक्त हो, अनाहारक ही होते हैं।

एकत्व की अपेक्षा से सर्वत्र 'कदाचित् आहारक तथा कदाचित् अनाहारक', ऐसा कथन करना चाहिए।[2]

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भाग ५, पृ. ९७९-९८०

२ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भाग ५ पृ. ९८०

ग्यारहवाँ वेदद्वार

१९०२ [१] सवेदे जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९०२-१] समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर अन्य सब सवेदी जीवो के (बहुत्व की अपेक्षा से) तीन भंग होते हैं।

[२] इत्थिवेद पुरिसवेदेसु जीवादीओ तियभंगो।

[१९०२-२] स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव आदि मे तीन भंग होते हैं।

[३] णपुंसगवेदए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९०२-३] नपुंसकवेदी मे समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भंग होते हैं।

[४] अवेदए जहा केवलणाणी (सु १८९८ [४])। दारं ११।

[१९०२-४] अवेदी जीवो का कथन (सू १८९८-४ मे उल्लिखित) केवलज्ञानी के कथन के समान करना चाहिए। [ग्यारहवाँ द्वार]

विवेचन—वेदद्वार के माध्यम से आहारक अनाहारक प्ररूपणा—सवेदी जीवो मे एकेन्द्रियो और समुच्चय जीवो को छोडकर बहुत्वापेक्षया तीन भंग होते हैं, जीवो और एकेन्द्रियो मे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी। एकत्व की विवक्षा से सवेदी कदाचित् आहारक होता है, कदाचित् अनाहारक होता है।

बहुत्वापेक्षया—स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव आदि मे एकेन्द्रियो एव समुच्चय जीवो को छोड कर बहुत्व को विवक्षा से प्रत्येक के तीन भंग होते हैं। अवेदी का कथन केवलज्ञानो के समान है। एकत्व विवक्षया—स्त्रीवेद और पुरुषवेद के विषय मे आहारक भी होता है और अनाहारक भी, यह एक ही भंग होता है। यहाँ नैरयिको, एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रियो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नही होते, अपितु नपुंसकवेदी होते हैं। बहुत्व की अपेक्षा से जीवादि मे से प्रत्येक मे तीन भंग होते हैं।

नपुंसकवेद मे—एकत्व की विवक्षा से पूर्ववत भंग कहना चाहिए, किन्तु यहाँ भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव का कथन नहीकरना चाहिए, क्योकि ये नपुंसक नही होते। बहुत्व की अपेक्षा से जीवो और एकेन्द्रियो के सिवाय शेष मे तीन भंग होते हैं। जीवो और एकेन्द्रियो मे एक ही भंग होता है—आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी। अवेदी के सम्बन्ध मे एकत्व और बहुत्व को अपेक्षा से केवलज्ञानी के समान कहना चाहिए। एक जीव और एक मनुष्य की अपेक्षा से अवेदी कदाचित आहारक होता है कदाचित् अनाहारक, यह एक भंग होता है। बहुत्व की अपेक्षा से—अवेदी के बहुत आहारक और बहुत अनाहारक, यही एक भंग पाया जाता है। अवेदी मनुष्यों मे तीन भंग होते हैं। अवेदी सिद्धो मे 'बहुत अनाहारक' यह एक भंग ही पाया जाता है।[1]

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भाग २, पृ ५१५

[१९००-१] सयोगियों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग (पाये जाते हैं।)

[२] मणजोगी वइजोगी य जहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी (सु १८८९)। णवरं वइजोगी विगलिंदियाण वि।

[१९००-२] मनोयोगी और वचनयोगी के विषय में (सू. १८८९ में उक्त) सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह कि वचनयोग विकलेन्द्रियों में भी कहना चाहिए।

[३] कायजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९००-३] काययोगी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग (पाये जाते हैं।)

[४] अजोगी जीव-मणूस सिद्धा अणाहारगा। दारं ९॥

[१९००-४] अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध होते हैं और वे अनाहारक हैं।

[नौवाँ द्वार]

विवेचन—योगद्वार की अपेक्षा प्ररूपणा—समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर अन्य सयोगी जीवों में पूर्ववत् तीन भंग पाये जाते हैं। समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों में एक भंग ही पाया जाता है—बहुत आहारक—बहुत अनाहारक, क्योंकि ये दोनों सदैव बहुत संख्या में पाये जाते हैं। मनोयोगी और वचनयोगी के सम्बन्ध में कथन सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान जानना चाहिए, अर्थात् वे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक ही होते हैं, अनाहारक नहीं। यद्यपि विकलेन्द्रिय सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते, किन्तु उनमें वचनयोग होता है, इसलिए यहाँ उनकी भी प्ररूपणा करनी चाहिए। समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष नारक आदि काययोगियों में पूर्ववत् तीन भंग कहना चाहिए। अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध होते हैं, ये तीनों अयोगी एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से अनाहारक होते हैं।[1]

दसवाँ उपयोगद्वार

१९०१ [१] सागाराणागारोवउत्तेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९०१-१] समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर अन्य साकार एवं अनाकार उपयोग से उपयुक्त जीवों में तीन भंग कहने चाहिए।

[२] सिद्धा अणाहारगा। दारं १०॥

[१९०१-२] सिद्ध जीव (सदैव) अनाहारक ही होते हैं। [दसवाँ द्वार]

विवेचन—उपयोगद्वार की अपेक्षा से प्ररूपणा—समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष साकार एवं अनाकार उपयोग से उपयुक्त जीवों में तीन भंग पाए जाते हैं। सिद्ध जीव चाहे साकारोपयोग वाला हो, चाहे अनाकारोपयोग से उपयुक्त हो, अनाहारक ही होते हैं।

एकत्व की अपेक्षा से सर्वत्र 'कदाचित् आहारक तथा कदाचित् अनाहारक', ऐसा कथन करना चाहिए।[2]

---

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भाग ५, पृ. ६७९-६८०

२ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भाग ५, पृ. ६८०

ग्यारहवाँ वेदद्वार

१९०२ [१] सवेदे जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९०२-१] समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर अन्य सब सवेदी जीवो के (बहुत्व की अपेक्षा से) तीन भंग होते हैं।

[२] इत्थिवेद पुरिसवेदेसु जीवादीओ तियभंगो।

[१९०२-२] स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव आदि मे तीन भंग होते हैं।

[३] णपुंसगवेदए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[१९०२-३] नपुंसकवेदी मे समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भंग होते हैं।

[४] अवेदए जहा केवलणाणी (सु १८९८ [४])। दारं ११।

[१९०२-४] अवेदी जीवो का कथन (सू १८९८-४ मे उल्लिखित) केवलज्ञानी के कथन के समान करना चाहिए। [ग्यारहवाँ द्वार]

विवेचन—वेदद्वार के माध्यम से आहारक-अनाहारक प्ररूपणा—सवेदी जीवो मे एकेन्द्रियो और समुच्चय जीवो को छोडकर बहुत्वापेक्षया तीन भंग होते हैं, जीवो और एकेन्द्रियो मे आहारक भी होते है और अनाहारक भी। एकत्व की विवक्षा से सवेदी कदाचित् आहारक होता है, कदाचित् अनाहारक होता है।

बहुत्वापेक्षया—स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव आदि मे एकेन्द्रियो एव समुच्चय जीवो को छोड कर बहुत्व को विवक्षा से प्रत्येक के तीन भंग होते हैं। अवेदी का कथन केवलज्ञानो के समान है। एकत्व विवक्षया—स्त्रीवेद और पुरुषवेद के विषय मे आहारक भी होता है और अनाहारक भी, यह एक ही भंग होता है। यहाँ नैरयिका, एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रिया का कथन नही करना चाहिए, क्योकि वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नही होते, अपितु नपुंसकवेदी होते हैं। बहुत्व को अपेक्षा से जीवादि मे से प्रत्येक मे तीन भंग होते हैं।

नपुंसकवेद में—एकत्व की विवक्षा से पूर्ववत भंग कहना चाहिए, किन्तु यहाँ भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव का कथन नही करना चाहिए, क्योकि ये नपुंसक नही होते। बहुत्व की अपेक्षा से जीवों और एकेन्द्रियो के सिवाय शेष मे तीन भंग होते हैं। जीवो और एकेन्द्रियो मे एक ही भंग होता है—आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी। अवेदी के सम्बन्ध मे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से केवलज्ञानी के समान कहना चाहिए। एक जीव और एक मनुष्य की अपेक्षा से अवेदी कदाचित् आहारक होता है कदाचित् अनाहारक, यह एक भंग होता है। बहुत्व की अपेक्षा से—अवेदी वे बहुत आहारक और बहुत अनाहारक, यही एक भंग पाया जाता है। अवेदी मनुष्यो में तीन भंग होते हैं। अवेदी सिद्धो मे 'बहुत अनाहारक' यह एक भंग ही पाया जाता है।[1]

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भाग २, पृ ५१५

बारहवां शरीरद्वार

१९०३ [१] ससरीरी जीवेगिंदियवज्जो तियभगो।

[१९०३-१] समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर शेष (सशरीरी नारकादि) जीवो मे (बहुत्वापेक्षया) तीन भग पाये जाते हैं।

[२] ओरालियसरीरीसु जीव-मणूसेसु तियभगो।

[१९०३-२] औदारिकशरीरी जीवो और मनुष्यो मे तीन भग पाये जाते है।

[३] अवसेसा आहारगा, णो अणाहारगा, जेसिं अत्थि ओरालियसरीर।

[१९०३-३] शेष जीवो और (मनुष्यो से भिन्न) औदारिकशरीरी आहारक होते हैं, अनाहारक नही। किन्तु जिनके औदारिक शरीर होता है, उन्ही का कथन करना चाहिए।

[४] वेउव्वियसरीरी आहारगसरीरी य आहारगा, णो अणाहारगा, जेसिं अत्थि।

[१९०३-४] वैक्रियशरीरी और आहारकशरीरी आहारक होते हैं, अनाहारक नही। किन्तु यह कथन जिनके वैक्रियशरीर और आहारकशरीर होता है, उन्ही के लिए है।

[५] तेय कम्मगसरीरी जीवेगिंदियवज्जो तियभगो।

[१९०३-५] समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर तैजसशरीर और कार्मणशरीर वाले जीवों मे तीन भग पाये जाते हैं।

[६] असरीरी जीवा सिद्धा य णो आहारगा, अणाहारगा। दार १२॥

[१९०३-६] अशरीरी जीव और सिद्ध आहारक नही होते, अनाहारक होते हैं।

[बारहवाँ पद]

विवेचन—शरीरद्वार के आधार से प्ररूपणा—समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर शेष सशरीरी जीवो मे बहुत्व की विवक्षा से तीन भग और एकत्व की अपेक्षा से सर्वत्र एक ही भग पाया जाता है—कदाचित् एक आहारक और कदाचित् एक अनाहारक। समुच्चय सशरीरी जीवों और एकेन्द्रियों मे बहुत आहारक बहुत अनाहारक, यह एक भग पाया जाता है।

औदारिकशरीरी—जीवो और मनुष्यो मे तीन भग तथा इनसे भिन्न औदारिकशरीरी आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। यह कथन औदारिकशरीरधारियो पर ही लागू होता है। नारक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के औदारिकशरीर नही होता, अत उनके लिए यह कथन नही है।

बहुत्व की अपेक्षा से—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों मे बहुत आहारक ही कहना चाहिए, अनाहारक नहीं, क्योकि विग्रहगति होने पर भी उनमे औदारिक-शरीर का सद्भाव होता है।

वैक्रियशरीरी और आहारकशरीरी आहारक भी होते हैं, अनाहारक नहीं। परन्तु यह कथन उन्ही के लिए है, जिनके वैक्रियशरीर और आहारकशरीर होता है। नारको और वायुकायिको,

पचेन्द्रियतिर्यञ्चो, मनुष्यो तथा चारो जाति के देवो के ही वैक्रियशरीर होता है। आहारकशरीर केवल मनुष्यो के ही होता है।

तैजसशरीरी एव कार्मणशरीरी जीवो मे एकत्वापेक्षया सर्वत्र 'कदाचित एक आहारक और कदाचित् एक अनाहारक' यह एक भग होता है। बहुत्वापेक्षया —समुच्चय जीवो और एकेन्द्रिय को छोड कर अन्य स्थानो मे तीन-तीन भग जानने चाहिए। समुच्चय जीवो और पृथ्वीकायिकादि पाच एकेन्द्रियो मे से प्रत्येक मे एक ही भग पाया जाता है—बहुत आहारक और बहुत अनाहारक।

अशरीरी जीव और सिद्ध आहारक नही होते, अपितु अनाहारक ही होते है। अतएव एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से अशरीरी सिद्ध अनाहारक ही होते है।[1]

तेरहवाँ पर्याप्तिद्वार

१९०४ [१] आहारपज्जत्तीपज्जत्तए सरीरपज्जत्तीपज्जत्तए इंदियपज्जत्तीपज्जत्तए आणापाणुपज्जत्तीपज्जत्तए भासा मणपज्जत्तीपज्जत्तए एयासु पचसु वि पज्जत्तीसु जीवेसु मणूसेसु य तियभगो।

[१९०४-१] आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति तथा भाषा मन पर्याप्ति इन पाच (छह) पर्याप्तियो से पर्याप्त जीवो और मनुष्यो म तीन-तीन भग होते है।

[२] अवसेसा आहारगा, णो अणाहारगा।

[१९०४-२] शेष (समुच्चय जीवो और मनुष्यो के सिवाय पूर्वोक्त पर्याप्तियों से पर्याप्त) जीव आहारक होते हैं, अनाहारक नही।

[३] भासा-मणपज्जत्ती पचेंदियाण, अवसेसाण णत्थि।

[१९०४-३] विशेषता यह है कि भाषा-मन पर्याप्ति पचेन्द्रिय जीवो मे ही पाई जाती है, अन्य जीवो मे नही।

१९०५ [१] आहारपज्जत्तीअपज्जत्तए णो आहारए, अणाहारए, एगत्तेण वि पुहत्तेण वि।

[१९०५-१] आहारपर्याप्ति से अपर्याप्त जीव एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा आहारक नही, अनाहारक होते हैं।

[२] सरीरपज्जत्तीअपज्जत्तए सिय आहारए सिय अणाहारए।

[१९०५-२] शरीरपर्याप्ति से अपर्याप्त जीव एकत्व की अपेक्षा कदाचित आहारक, कदाचित् अनाहारक होता है।

[३] उवरिल्लियासु चउसु अपज्जत्तीसु णेरइय-देव मणूसेसु छब्भगा, अवसेसाण जीवेगिदियवज्जो तियभगो।

[१९०५-३] आगे की (अन्तिम) चार अपर्याप्तियो वाले (शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति,

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ६८३-६८४

(ख) पनवणा मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा २, पृ ५१५

श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति एव भाषा-मन पर्याप्ति से अपर्याप्तक) नारको, देवो और मनुष्यों मे छह भग पाये जाते हैं। शेष मे समुच्चय जीवो और एकेन्द्रियो को छोड कर तीन भग पाये जाते हैं।

१९०६ भासा-मणपज्जत्तीए (अपज्जत्तएसु) जीवेसु पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु य तियभगो, णेरइय देव मणुएसु छब्भगा।

[१९०६] भाषा-मन पर्याप्ति से अपर्याप्ति समुच्चय जीवो और पचेन्द्रियतियञ्चा म (बहुत्व की विवक्षा से) तीन भग पाये जाते हैं। (पूर्वोक्त पर्याप्ति से अपर्याप्त) नैरयिको, देवो और मनुष्यों में छह भग पाये जाते हैं।

१९०७ सव्वपदेसु एगत्त पुहत्तेण जीवादीया दडगा पुच्छाए भाणियव्वा। जस्स ज अत्थि तस्स त पुच्छिज्जइ, ज णत्थि त ण पुच्छिज्जइ जाव भासा मणपज्जत्तीए अपज्जएसु णेरइय-देव मणुएसु य छब्भगा। सेसेसु तियभगो। बार १३॥

[१९०७] सभी (१३) पदो मे एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से जीवादि दण्डको मे (समुच्चय जीव तथा चोबीस दण्डक) के अनुसार पृच्छा करनी चाहिए। जिस दण्डक मे जो पद सभव हो, उसी की पृच्छा करनी चाहिए। जो पद जिसमे सम्भव न हो उसकी पृच्छा नही करनी चाहिए। (भव्यपद से लेकर) यावत् भाषा-मन पर्याप्ति से अपर्याप्त नारको, देवो और मनुष्या मे छह भगों की वक्तव्यता पर्यन्त तथा नारको, देवो और मनुष्यों से भिन्न समुच्चय जीवो और पचेन्द्रियतियञ्चा मे तीन भगो की वक्तव्यतापर्यन्त समझना चाहिए। [तेरहवां द्वार]

॥ बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

॥ पण्णवणाए भगवतीए अट्ठावीसइम आहारपय समत्त ॥

विवेचन—पर्याप्तिद्वार के आधार पर आहारक-अनाहारकप्ररूपणा—यद्यपि अन्य शास्त्रों में पर्याप्तियाँ छह मानी गई हैं, परन्तु यहाँ भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति दोनो का एक मे समावेश करके पाच ही पर्याप्तियाँ मानी गई हैं।

आहारादि पाच पर्याप्तियों से पर्याप्त समुच्चय जीवा और मनुष्यो मे तीन तीन भग पाये जाते हैं, इन दो के सिवाय दूसरे जो पाच पर्याप्तियो से पर्याप्त हैं, वे आहारक होते हैं, अनाहारक नही। एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रियो मे भाषा मन पर्याप्ति नही पाई जाती।

आहारपर्याप्ति से अपर्याप्त एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से अनाहारक होता है, आहारक नही, क्योंकि आहारपर्याप्ति से अपर्याप्त जीव विग्रहगति मे ही पाया जाता है। उपपातक्षेत्र म आने पर प्रथम समय में ही वह आहारपर्याप्ति से पर्याप्त हो जाता है। अतएव प्रथम समय म वह आहारक नही कहलाता। बहुत्व की विवक्षा में बहुत अनाहारक होते हैं।

शरीरपर्याप्ति से अपर्याप्त जीव कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। जो विग्रहगति-समापन्न होता है, वह अनाहारक और उपपातक्षेत्र मे आ पहुँचता है, वह आहारक होता है।

इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा-मन पर्याप्ति से अपर्याप्त—एकत्व की विवक्षा से कदाचित् आहारक कदाचित् अनाहारक होते हैं। बहुत्व की विवक्षा से अंतिम तीन या (चार) पर्याप्तियो से अपर्याप्त के विषय मे ६ भग होते हैं—(१) कदाचित् सभी अनाहारक, (२) कदाचित् सभी आहारक, (३) कदाचित् एक आहारक और एक अनाहारक, (४) कदाचित एक आहारक बहुत अनाहारक, (५) कदाचित् बहुत आहारक और एक अनाहारक एव (६) कदाचित् बहुत आहारक और बहुत अनाहारक। नारको, देवो और मनुष्यो से भिन्न मे (एकेंद्रियो एव समुच्चय जीवो को छोड कर) तीन भग पूव पूर्ववत् पाये जाते हैं।

शरीर-इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास-पर्याप्तियो से अपर्याप्त के विषय मे एकत्व की विवक्षा—से एक भग—बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। **बहुत्व की अपेक्षा**—तीन भग सम्भव हैं—(१) समुच्चय जीव और सम्मूच्छिम पचेन्द्रियतिर्यञ्च सदैव बहुत सख्या मे पाये जाते हैं, जब एक भी विग्रहगतिसमापन्न नही होता है, तब सभी आहारक होते हैं, यह प्रथम भग, (२) जब एक विग्रहगतिसमापन्न होता है, तब बहुत आहारक एक अनाहारक यह द्वितीय भग, (३) जब बहुत जीव विग्रहगतिसमापन्न होते हैं, तब बहुत आहारक और बहुत अनाहारक, यह तृतीय भग है। नारको, देवो और मनुष्यो मे भाषा-मन पर्याप्ति से अपर्याप्त के विषय मे बहुत्व की विवक्षा से ६ भग होते हैं।[1]

वक्तव्यता का अतिदेश—अंतिम सूत्र मे एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से विभिन्न जीवो के आहारक अनाहारक सम्बन्धी भगो का अतिदेश किया गया है।

॥ प्रज्ञापना का अट्ठाईसवाँ पद द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का अट्ठाईसवाँ आहारपद समाप्त ॥

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ६८५ से ६८८ तक

एगूणतीसइमं उवओगपयं तीसइमं पासणयापयं च

उनतीसवाँ उपयोगपद और तीसवाँ पश्यत्तापद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र के उनतीसवें और तीसवें, उपयोग और पश्यत्ता पदों में जीवों के बोधव्यापार एवं ज्ञानव्यापार की चर्चा है।

- जीव का या आत्मा का मुख्य लक्षण उपयोग है, पश्यत्ता उसी का मुख्य अंग है। परन्तु आत्मा के साथ शरीर बंधा होता है। शरीर के निमित्त से अंगोपांग, इन्द्रियाँ, मन आदि अवयव मिलते हैं। प्रत्येक प्राणी को, फिर चाहे वह एकेन्द्रिय हो अथवा विकलेन्द्रिय या पंचेन्द्रिय, देव हों, नारक हो, मनुष्य हो या तिर्यञ्च, सभी को अपने अपने कर्मों के अनुसार शरीरादि अंगोपांग या इन्द्रियाँ आदि मिलते हैं। मूल में सभी प्राणियों की आत्मा ज्ञानमय एवं दर्शनमय है, जैसा कि आचारांगसूत्र में स्पष्ट कहा है—

  'जे आया, से विण्णाया, जे विण्णाया से आया। जेण विजाणइ से आया।'

  अर्थात्—'जो आत्मा है, वह विज्ञाता है और जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। जिससे (पदार्थों को) जाना जाता है, वह आत्मा है।'

- प्रश्न होता है कि जब प्राणियों की आत्मा ज्ञानदर्शनमय (उपयोगमय) है तथा अरूपी है, नित्य है, जैसा कि भगवतीसूत्र में कहा है—

  'अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी जीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—दव्वओ जाव गुणओ। दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं जीवदव्वाइं, खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते, कालओ—न कयाइ न आसि, न कयावि नत्थि, जाव निच्चे, भावओ पुण अवण्णे अगंधे अरसे अफासे, गुणओ उवओगगुणे।'

  यहाँ आत्मा का स्वरूप पांच प्रकार से बताया गया है। द्रव्य से अनंत जीव (आत्मा) द्रव्य है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से नित्य है, भाव से वर्णादि से रहित है और गुण से उपयोगगुण वाला है।

  अतः समानरूप से सभी आत्माओं का गुण—उपयोग होते हुए भी किसी को कम उपयोग होता है, किसी को अधिक, किसी का ज्ञान त्रिकाल-त्रिलोकव्यापी है और किसी को वर्तमानकालिक तथा एक अंगुल क्षेत्र का भी ज्ञान या दर्शन नहीं होता। ऐसा क्यों?

---

1. उपयोगो लक्षणम्—तत्त्वार्थसूत्र अ. २ 2. आचारांग श्रु. १ अ. ५, उ. ५, सूत्र १६५
3. भगवती श. २, उ. १० सू. ५ (आ. प्र. समिति)

इसका समाधान है—ज्ञानावरणीय एव दशनावरणीय कर्मों की विचित्रता। जिसके ज्ञान-दशन का आवरण जितना अधिक क्षीण होगा, उसका उपयोग उतना ही अधिक होगा, जिसका ज्ञान-दशनावरण जितना तीव्र होगा, उसका उपभोग उतना ही म द होगा।

- यही कारण है कि यहाँ विविध जीवो के विविध प्रकार के उपयोगो की तरतमता आदि का निरूपण किया गया है।

- उपयोग का अथ होता है—वस्तु का परिच्छेद परिज्ञान करने के लिए जीव जिसके द्वारा व्यापृत होता है, अथवा जीव का बोधरूप तत्त्वभूत व्यापार।[1]

- तीसवा पद पश्यत्ता—पासणया है। उपयोग और पश्यत्ता दोनो जीव के बोधरूप व्यापार हैं, मूल मे इन दोनो की कोई व्याख्या नही मिलती। प्राचीन पद्धति के अनुसार भेद ही इनकी व्याख्या है। आचाय अभयदेवसूरि ने पश्यत्ता को उपयोगविशेष ही बताया है। किन्तु आगे चल कर स्पष्टीकरण किया है कि जिस बोध मे त्रकालिक अवबोध हो, वह पश्यत्ता है और जिस बोध मे वतमानकालिक बोध हो, वह उपयोग है। यही इन दोनो मे अ तर है।

- जिस प्रकार उपयोग के मुख्य दो भेद—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग किये हैं, उसी प्रकार पश्यत्ता के भी साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता, ये दो भेद है। किन्तु दोनो के उपयुक्त लक्षणो के अनुसार मति-ज्ञान और मति अज्ञान को साकारपश्यत्ता के भेदो मे परिगणित नही किया, क्योंकि मतिज्ञान और मत्यज्ञान का विषय वतमानकालिक अविनष्ट पदार्थ ही बनता है। इसके अतिरिक्त अनाकारपश्यत्ता मे अचक्षुदशन का समावेश नही किया गया है, इसका समाधान आचाय अभयदेवसूरि ने यो किया है कि पश्यत्ता प्रकृष्ट ईक्षण है और प्रेक्षण तो केवल चक्षुदशन द्वारा ही सम्भव है, अ य इन्द्रियो द्वारा होने वाले दशन मे नही। अन्य इन्द्रियो की अपेक्षा चक्षु का उपयोग अल्पकालिक होता है और जहा अल्पकालिक उपयोग होता है, वहाँ बोधक्रिया मे शीघ्रता अधिक होती है, यही पश्यत्ता की प्रकृष्टता मे कारण है।[2]

- आचाय मलयगिरि ने आचाय अभयदेवसूरि का अनुसरण किया है। उन्होने स्पष्टीकरण किया है कि पश्यत्ता शब्द रूढि के कारण साकार और अनाकार बोध का प्रतिपादक है। विशेष मे यह समझना चाहिए कि जहा दीघकालिक उपयोग हो, वही त्रकालिक बोध सम्भव है। मतिज्ञान मे दीघकाल का उपयोग नही है, इस कारण उससे त्रकालिक बोध नही होता। अत उसे 'पश्यत्ता' मे स्थान नही दिया गया है।

- उनतीसवे पद मे सवप्रथम साकारोपयोग और अनाकारोपयोग, यो भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात् इन दोनो के क्रमश आठ और चार भेद किये गये हैं।

- साकारोपयोग और अनाकारोपयोग तथा साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता इन दोनो का अ तर निम्नोक्त तालिका से स्पष्ट समझ मे आ जाएगा—

---

१ उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेद प्रति व्यापार्यते जीवाऽनेनेति उपयोग । बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूता व्यापार ।
—प्रज्ञापना मलयवत्ति म रा को भा २, पृ ८६०

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१४

उपयोग (सू १९०८-१०)	पश्यत्ता (१९३६-३८)
१ साकारोपयोग	१ साकार पश्यत्ता
(१) आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोग	× × ×
(२) श्रुतज्ञान-साकारोपयोग	(१) श्रुतज्ञान-साकारपश्यत्ता
(३) अवधिज्ञान-साकारोपयोग	(२) अवधिज्ञान-साकारपश्यत्ता
(४) मन पर्यवज्ञान-साकारोपयोग	(३) मन पयवज्ञान साकारपश्यत्ता
(५) केवलज्ञान-साकारोपयोग	(४) केवलज्ञान साकारपश्यत्ता
(६) मत्यज्ञानावरण-साकारोपयोग	× × ×
(७) श्रुताज्ञानावरण-साकारोपयोग	(५) श्रुताज्ञान साकारपश्यत्ता
(८) विभगज्ञानावरण-साकारोपयोग	(६) विभगज्ञान-साकारपश्यत्ता
२ अनाकारोपयोग	२ अनाकारपश्यत्ता
(१) चक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग	(१) चक्षुदर्शन अनाकारपश्यत्ता
(२) अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग	× × ×
(३) अवधिदर्शन अनाकारोपयोग	(२) अवधिदर्शन अनाकारपश्यत्ता
(४) केवलदर्शन-अनाकारोपयोग	(३) केवलदर्शन-अनाकारपश्यत्ता ।[1]

✣ साकारोपयोग एव अनाकारोपयोग का लक्षण आचाय मलयगिरि ने इस प्रकार किया है—सचेतन या अचेतन वस्तु मे उपयोग लगाता हुआ आत्मा जब वस्तु का पर्यायसहित बोध करता है, तब वह उपयोग साकार कहलाता है, तथा वस्तु का सामान्यरूप से ज्ञान होना अनाकारोपयोग है ।[2]

✣ साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता मे भी साकार और अनाकार शब्दो का अर्थ तो उपयुक्त ही है, किन्तु पश्यत्ता मे वस्तु का त्रैकालिक बोध होता है, जबकि उपयोग मे वतमानकालिक ही बोध होता है ।

✣ इसके पश्चात् उनतीसवें पद मे नारक से वैमानिकपयन्त चोवीस दण्डकों म से किस किस जीव मे कितने उपयोग पाये जाते हैं ? इसका प्ररूपण किया गया है ।

✣ तीसवें पश्यत्ता पद में इसके भेद-प्रभेदो का प्रतिपादन करके नारक से लेकर वैमानिक पयन्त जीवो मे से किसमे कितने प्रकार की पश्यत्ता है ? इसका प्ररूपण किया गया है ।

✣ उनतीसवें पद मे पूर्वोक्त प्ररूपण के अनन्तर चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के विषय में प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत की गई है कि कौनसा जीव साकारोपयुक्त है या अनाकारोपयुक्त ? इसी प्रकार तीसवें पद मे प्रश्नोत्तरी है कि जीव साकार पश्यत्तावान् है या अनाकार पश्यत्तावान् है ?[3]

---

१ पण्णवणासुत्त भा २ (परिशिष्ट प्रस्तावनात्मक), पृ १३८
२ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा २, पृ ८६०
३ पण्णवणासुत्तं भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४०८-९

❖ तीसवें पद मे पूर्वोक्त वक्तव्यता के पश्चात् केवलज्ञानी द्वारा रत्नप्रभा आदि का ज्ञान और दर्शन (*अर्थात्—साकारोपयोग तथा निराकारोपयोग*) दोनो समकाल मे होते हैं या क्रमश होते हैं, इस प्रकार के दो प्रश्नो का समाधान किया गया है तथा ज्ञान और दर्शन का क्रमश होना स्वीकार किया है। जिस समय अनाकारोपयोग (दर्शन) होता है, उस समय साकारोपयोग (ज्ञान) नही होता तथा जिस समय साकारोपयोग होता है, उस समय अनाकारोपयोग नही होता, इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

१ (क) पण्णवणासुत्त, भा १ (मू पा टि), पृ ४१२
(ख) वही, भा २ (परिशिष्ट), पृ १३८

एगूणतीसइमं : उवओगपयं

उनतीसवाँ उपयोगपद

जीव आदि मे उपयोग के भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा

१९०८ कतिविहे ण भते ! उवप्रोगे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उवग्रोगे पन्नत्ते । त जहा—सागारोवग्रोगे य ग्रणागारोवग्रोगे य ।

[१९०८ प्र] भगवन् ! उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९०८ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ।

१९०९ सागारोवग्रोगे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ग्रट्ठविहे पण्णत्ते । त जहा—ग्राभिणिबोहियणाणसागारोवग्रोगे १ सुयणाण सागारोवग्रोगे २ ग्रोहिणाणसागारोवग्रोगे ३ मणपज्जवणाणसागारोवग्रोगे ४ केवलणाणसागारोवग्रोगे ५ मतिग्रण्णाणसागारोवग्रोगे ६ सुयग्रण्णाणसागारोवग्रोगे ७ विभगणाणसागारोवग्रोगे ८ ।

[१९०९ प्र] भगवन् ! साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९०९ उ] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) आभिनिबोधिक-ज्ञान-साकारोपयोग, (२) श्रुतज्ञान-साकारोपयोग, (३) अवधिज्ञान-साकारोपयोग, (४) मन पर्यवज्ञान साकारोपयोग, (५) केवलज्ञान साकारोपयोग, (६) मति अज्ञान साकारोपयोग, (७) श्रुत अज्ञान साकारोपयोग और (८) विभगज्ञान साकारोपयोग ।

१९१० ग्रणागारोवग्रोगे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते । त जहा—चक्खुदसणग्रणागारोवग्रोगे १ ग्रचक्खुदसणग्रणागारोवग्रोगे २ ग्रोहिदसणग्रणागारोवग्रोगे ३ केवलदसणग्रणागारोवग्रोगे ४ ।

[१९१० प्र] भगवन् ! अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९१० उ] गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है । यथा—चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग, (२) अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग, (३) अवधिदर्शन अनाकारोपयोग, (४) केवलदर्शन अनाकारोपयोग ।

१९११ एव जीवाण पि ।

[१९११] इसी प्रकार समुच्चय जीवो का भी (साकारोपयोग और अनाकारोपयोग क्रमश आठ और चार प्रकार का है ।)

१९१२ णेरइयाण भते ! कतिविहे उवग्रोगे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे उवग्रोगे पण्णत्ते । त जहा—सागारोवग्रोगे य ग्रणागारोवग्रोगे य ।

[१९१२ प्र] भगवन् ! नैरयिकों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९१२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

१९१३ णेरइयाणं भंते ! सागारोवओगे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—मतिणाणसागारोवओगे १ सुयणाणसागारोवओगे २ ओहिणाणसागारोवओगे ३ मतिअण्णाणसागारोवओगे ४ सुयअण्णाणसागारोवओगे ५ विभंगणाणसागारोवओगे ६।

[१९१३ प्र] भगवन् ! नैरयिकों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९१३ उ] गौतम ! वह छह प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) मतिज्ञान-साकारोपयोग, (२) श्रुतज्ञान-साकारोपयोग, (३) अवधिज्ञान-साकारोपयोग, (४) मति-अज्ञान साकारोपयोग, (५) श्रुत-अज्ञान-साकारोपयोग और (६) विभंगज्ञान साकारोपयोग।

१९१४ णेरइयाणं भंते ! अणागारोवओगे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—चक्खुदंसणअणागारोवओगे १ अचक्खुदंसणअणागारोवओगे २ ओहिदंसणअणागारोवओगे ३ य।

[१९१४ प्र] भगवन् ! नैरयिकों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९१४ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है। यथा- (१) चक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग, (२) अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग और (३) अवधिदर्शन-अनाकारोपयोग।

१९१५ एवं जाव थणियकुमाराणं।

[१९१५] इसी प्रकार (असुरकुमारों से लेकर) स्तनितकुमारों तक (के साकारोपयोग और अनाकारोपयोग का कथन करना चाहिए।)

१९१६ पुढविक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! दुविहे उवओगे पण्णत्ते। तं जहा—सागारोवओगे य अणागारोवओगे य।

[१९१६ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के उपयोग सम्बन्धी प्रश्न है।

[१९१६ उ] गौतम ! उनका उपयोग दो प्रकार का कहा गया है, यथा—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

१९१७ पुढविक्काइयाणं भंते ! सागारोवओगे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—मतिअण्णाणे सुयअण्णाणे।

[१९१७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९१७ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—मति अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

१९१८ पुढविक्काइयाण भंते ! अणागारोवओगे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगे अचक्खुदंसणअणागारोवओगे पण्णत्ते ।

[१९१८ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९१८ उ.] गौतम ! उनका एकमात्र अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग कहा गया है ।

१९१९ एवं जाव वणस्सइकाइयाणं ।

[१९१९] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक (के विषय में जानना चाहिए ।)

१९२० बेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहे उवओगे पण्णत्ते । तं जहा– सागारे अणागारे य ।

[१९२० प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों के उपयोग के विषय में पृच्छा है ।

[१९२० उ.] गौतम ! उनका उपयोग दो प्रकार का कहा है, यथा—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ।

१९२१ बेइंदियाणं भंते ! सागारोवओगे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—आभिणिबोहियणाणसागारोवओगे १ सुयणाणसागारोवओगे २ मतिअण्णाणसागारोवओगे ३ सुयअण्णाणसागारोवओगे ४ ।

[१९२१ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९२१ उ.] गौतम ! उनका उपयोग चार प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोग, (२) श्रुतज्ञान-साकारोपयोग, (३) मति-अज्ञान साकारोपयोग और (४) श्रुत-अज्ञान-साकारोपयोग ।

१९२२ बेइंदियाणं भंते ! अणागारोवओगे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगे अचक्खुदंसणअणागारोवओगे ।

[१९२२ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९२२ उ.] गौतम ! उनका एक ही अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग है ।

१९२३ एवं तेइंदियाण वि ।

[१९२३] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों (के साकारोपयोग और अनाकारोपयोग) का (कथन करना चाहिए ।)

१९२४ चउरिंदियाण वि एवं चेव । णवरं अणागारोवओगे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—चक्खुदंसणअणागारोवओगे य अचक्खुदंसणअणागारोवओगे य ।

[१९२४] चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । किन्तु उनका अनाकारोपयोग दो प्रकार का कहा है यथा—चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग और अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग ।

१९२५ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण जहा णेरइयाण (सु १९१२-१४) ।

[१९२५] पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवो (के साकारोपयोग तथा अनाकारोपयोग) का कथन (सू १९१२-१४ मे उक्त) नैरयिको के समान करना चाहिए ।

१९२६. मणूसाण जहा ओहिए उवओगे भणिय (सु १९०८-१०) तहेव भाणियव्व ।

[१९२६] मनुष्यो के उपयोग (सू १९०८-१० मे उक्त) समुच्चय (ओघिक) उपयोग के समान कहना चाहिए ।

१९२७ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणियाण जहा णेरइयाण (सु १९१२-१४) ।

[१९२७] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वमानिको के साकारोपयोग-अनाकारोपयोग-सम्बन्धी कथन (सू १९१२-१४ मे उक्त) नैरयिको के समान (करना चाहिए ।)

विवेचन—उपयोग स्वरूप और प्रकार—जीव के द्वारा वस्तु के परिच्छेदज्ञान के लिए जिसका उपयोजन—व्यापार किया जाता है, उसे उपयोग कहते हैं। वस्तुत उपयोग जीव का बोधरूप धम या व्यापार है। इसके दो भेद हैं—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। नियत पदाथ को अथवा पदाथ के विशेष धम को ग्रहण करना आकार है। जो आकार-सहित हो, वह साकार है। अथात्—विशेषग्राही ज्ञान को साकारोपयोग कहते हैं। आशय यह है कि आत्मा जब सचेतन या अचेतन वस्तु मे उपयोग लगाता हुआ पर्यायसहित वस्तु को ग्रहण करता है, तब उसका उपयोग साकारोपयोग कहलाता है। काल की दृष्टि से छद्मस्थो का उपयोग अन्तमुहूत तक रहता है और केवलियो का एक समय तक ही रहता है। जिस उपयोग मे पूर्वोक्तरूप आकार विद्यमान न हो, वह अनाकारोपयोग कहलाता है। वस्तु का सामान्यरूप से परिच्छेद करना—सत्तामात्र को ही जानना अनाकारोपयोग है। अनाकारोपयोग भी छद्मस्थो का अन्तमुहूत-कालिक है। परन्तु अनाकारोपयोग के काल से साकारोपयोग का काल सख्यातगुणा अधिक जानना चाहिए क्योकि विशेष का ग्राहक होने से उसमे अधिक समय लगता है। केवलियो के अनाकारोपयोग का काल तो एक ही समय का होता है।[1]

पृष्ठ १५६ पर दी तालिका से जीवो मे साकारोपयोग अनाकारोपयोग की जानकारी सुगमता से हो जाएगी।

जीवो आदि मे साकारोपयुक्तता-अनाकारोपयुक्तता-निरूपण

१९२८ जीवा ण भते ! कि सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जीवा सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि ?

गोयमा ! जे ण जीवा आभिणिबोहियणाण-सुयणाण ओहिणाण मण केवल मतिअण्णाण-सुयअण्णाण विभगणाणोवउत्ता ते ण जीवा सागारोवउत्ता, जे ण जीवा चक्खुदसण अचक्खुदसण-ओहिदसण केवलदसणोवउत्ता ते ण जीवा अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ जीवा सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि ।

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा को भा २, ८६०-६२

जीवों के नाम	साकारोपयोग कितने ?	अनाकारोपयोग कितने ?	कारण
समुच्चय जीव मनुष्य	आठ ही प्रकार का साकारोपयोग	चारों ही प्रकार का अनाकारोपयोग	क्योंकि इनमें सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकार के जीव पाये जाते हैं, इस कारण आठों साकारो० व चारों अनाकारोपयोग
नैरयिक दस प्रकार के भवनवासी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च वाणव्यन्तर देव ज्योतिष्क देव वैमानिक देव	इन सब में ६ प्रकार का— मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मत्यज्ञान श्रुताज्ञान, विभंगज्ञान " " " " " " " " "	इन सब में तीन प्रकार के— चक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग अवधिदर्शन अनाकारोपयोग " " " "	नारक तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक य सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टि भी। सम्यग्दृष्टि में तीन ज्ञान, मिथ्यादृष्टि में तीन अज्ञान पाये जाते हैं तथा दोनों में तीन प्रकार के अनाकारोपयोग पाये जाते हैं।
पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावर एकेन्द्रिय जीव	दो प्रकार का—मति-अज्ञान श्रुत-अज्ञान-साकारोपयोग	एक प्रकार का— अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग	सम्यग्दर्शनरहित होने से दो प्रकार के अज्ञान तथा चक्षुरिन्द्रियरहित होने से एक अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग होता है।
द्वीन्द्रिय जीव त्रीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रिय जीव	चार प्रकार का—मतिज्ञान श्रुतज्ञान तथा मत्यज्ञान श्रुत-अज्ञान—साकारोपयोग	एक ही प्रकार का—अचक्षुदर्शन एक ही प्रकार का—अचक्षुदर्शन दो प्रकार का—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन	तीनों विकलेन्द्रिय जीवों में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सास्वादनभाव को प्राप्त होते हुए अपर्याप्तावस्था में होते हैं, इसलिए दो ज्ञान भी होते हैं। चतुरिन्द्रिय जीव में चक्षुरिन्द्रिय होने से चक्षुदर्शन भी पाया जाता है।[1]

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभि. भा. २, पृ. ८६६-६७
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनीटीका) भा. ५, पृ. ७०७ से ७१३

[१९२८ प्र] भगवन् ! जीव साकारोपयुक्त होते हैं या अनाकारोपयुक्त होते हैं ?

[१९२८ उ] गौतम ! जीव साकारोपयोग से उपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयोग से उपयुक्त भी।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि जीव साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं ?

[उ] गौतम ! जो जीव आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान एवं विभंगज्ञान उपयोग वाले होते हैं, वे साकारोपयुक्त कहे जाते हैं और जो जीव चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन के उपयोग से युक्त होते हैं, वे अनाकारोपयुक्त कहे जाते हैं। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि जीव साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं।

१९२९ णेरइया णं भंते ! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! णेरइया सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

गोयमा ! जे णं णेरइया आभिणिबोहियणाण-सुय-ओहिणाण-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-विभंगणाणोवउत्ता ते णं णेरइया सागारोवउत्ता, जे णं णेरइया चक्खुदंसण-अचक्खुदंसण-ओहिदंसणोवउत्ता ते णं णेरइया अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

[१९२९ प्र] भगवन् ! नैरयिक साकारोपयुक्त होते हैं या अनाकारोपयुक्त होते हैं ?

[१९२९ उ] गौतम ! नैरयिक साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नैरयिक साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं ?

[उ] गौतम ! जो नैरयिक आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान के उपयोग से युक्त होते हैं, वे साकारोपयुक्त होते हैं और जो नैरयिक चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के उपयोग से युक्त होते हैं, वे अनाकारोपयुक्त होते हैं। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं।

१९३० एवं जाव थणियकुमारा।

[१९३०] इसी प्रकार का कथन स्तनितकुमारों तक करना चाहिए।

१९३१ पुढविक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! तहेव जाव जे णं पुढविकाइया मतिअण्णाण सुयअण्णाणोवउत्ता ते णं पुढविक्काइया सागारोवउत्ता, जे णं पुढविकाइया अचक्खुदंसणोवउत्ता ते णं पुढविक्काइया अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव वणस्सइकाइया।

तीसइमं पासणयापयं

तीसवाँ पश्यत्तापद

जीव एवं चौबीस दण्डकों में पश्यत्ता के भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा

१९३६ कतिविहा णं भंते ! पासणया[1] पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पासणया पण्णत्ता । तं जहा—सागारपासणया अणागारपासणया य ।

[१९३६ प्र.] भगवन् ! पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९३६ उ.] गौतम ! पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है, यथा—साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता ।

१९३७ सागारपासणया णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! छव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—सुयणाणसागारपासणया १ ओहिणाणसागारपासणया २ मणपज्जवणाणसागारपासणया ३ केवलणाणसागारपासणया ४ सुयअण्णाणसागारपासणया ५ विभंगणाणसागारपासणया ६ ।

[१९३७ प्र.] भगवन् ! साकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९३७ उ.] गौतम ! वह छह प्रकार की कही गई है, यथा—(१) श्रुतज्ञानसाकारपश्यत्ता, (२) अवधिज्ञानसाकारपश्यत्ता, (३) मनःपर्यवज्ञानसाकारपश्यत्ता, (४) केवलज्ञानसाकारपश्यत्ता, (५) श्रुत-अज्ञानसाकारपश्यत्ता और (६) विभंगज्ञानसाकारपश्यत्ता ।

१९३८ अणागारपासणया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—चक्खुदंसणअणागारपासणया १ ओहिदंसणअणागारपासणया २ केवलदंसणअणागारपासणया ३ ।

[१९३८ प्र.] भगवन् ! अनाकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९३८ उ.] गौतम ! वह तीन प्रकार की कही गई है । यथा—(१) चक्षुदर्शनअनाकारपश्यत्ता, (२) अवधिदर्शनअनाकारपश्यत्ता और (३) केवलदर्शनअनाकारपश्यत्ता ।

१९३९ एवं जीवाणं पि ।

[१९३९] इसी प्रकार (छह प्रकार की साकारपश्यत्ता और तीन प्रकार की अनाकारपश्यत्ता) समुच्चय जीवों में (कहनी चाहिए ।)

---

१ 'पासणया' शब्द का संस्कृतरूपान्तर 'पश्यनता—पश्यता' भी होता है, वह सहसा यह भ्रम पैदा कर देता है, कि कहीं यह वर्तमान में प्रचारित बौद्धधर्म-सम्मत 'विपश्यना' तो नहीं है ? परन्तु आगे के वर्णन को देखते हुए यह भ्रम मिट जाता है । —सम्पादक

१९४० णेरइयाण भते ! कतिविहा पासणया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सागारपासणया अणागारपासणया य।

[१९४० प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो की पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९४० उ] गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा—साकारपश्यत्ता और अनाकार-पश्यत्ता।

१९४१ णेरइयाण भते ! सागारपासणया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—सुयणाणसागारपासणया १ ओहिणाणसागार-पासणया २ सुयअण्णाणसागारपासणया ३ विभगणाणसागारपासणया ४।

[१९४१ प्र] भगवन् ! नैरयिको की साकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९४१ उ] गौतम ! उनकी पश्यत्ता चार प्रकार की कही गई है, यथा- (१) श्रुतज्ञान-साकारपश्यत्ता, (२) अवधिज्ञानसाकारपश्यत्ता, (३) श्रुत-अज्ञानसाकारपश्यत्ता और (४) विभग-ज्ञानसाकारपश्यत्ता।

१९४२ णेरइयाण भते ! अणागारपासणया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—चक्खुदसणअणागारपासणया य ओहिदसणअणागार-पासणया य।

[१९४२ प्र] भगवन् ! नैरयिको की अनाकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९४२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा—चक्षुदर्शन-अनाकारपश्यत्ता और अवधिदर्शन-अनाकारपश्यत्ता।

१९४३ एव जाव थणियकुमारा।

[१९४३] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक (की पश्यत्ता जाननी चाहिए।)

१९४४ पुढविक्काइयाण भते ! कतिविहा पासणया पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगा सागारपासणया।

[१९४४ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९४४ उ] गौतम ! उनमे एक साकारपश्यत्ता कही है।

१९४५ पुढविक्काइयाण भते ! सागारपासणया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पण्णत्ता ?

[१९४५ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की साकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९४५ उ] गौतम ! उनमे एकमात्र श्रुत अज्ञानसाकारपश्यत्ता कही गई है।

१९४६ एव जाव वणस्सइकाइयाण।

[१९४६] इसी प्रकार (अप्कायिको से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिको तक (की पश्यत्ता जाननी चाहिए।)

१९४७ बेइंदियाण भंते ! कतिविहा पासणया पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगा सागारपासणया पण्णत्ता ।

[१९४७ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों की कितने प्रकार की पश्यत्ता कही गई है ?

[१९४७ उ] गौतम ! उनमें एकमात्र साकारपश्यत्ता कही गई है ।

१९४८ बेइंदियाण भंते ! सागारपासणया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सुयणाणसागारपासणया य सुयअण्णाणसागारपासणया य ।

[१९४८ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों की साकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही है ?

[१९४८ उ] गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा—श्रुतज्ञानसाकारपश्यत्ता और श्रुत-अज्ञानसाकारपश्यत्ता ।

१९४९ एवं तेइंदियाण वि ।

[१९४९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों की (वक्तव्यता) भी (जाननी चाहिए ।)

१९५० चउरिंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सागारपासणया य अणागारपासणया य । सागारपासणया जहा बेइंदियाणं (सु १९४७-४८) ।

[१९५० प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवों की पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९५० उ] गौतम ! उनकी पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है, यथा—साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता । इनकी साकारपश्यत्ता द्वीन्द्रियों की (सू १९४७-४८ में कह अनुसार) साकारपश्यत्ता के समान जाननी चाहिए ।

१९५१ चउरिंदियाण भंते ! अणागारपासणया कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगा चक्खुदंसणअणागारपासणया पण्णत्ता ।

[१९५१ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवों की अनाकारपश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है ?

[१९५१ उ] गौतम ! उनकी एकमात्र चक्षुदर्शन अनाकारपश्यत्ता कही है ।

१९५२ मणूसाणं जहा जीवाणं (सु १९३९) ।

[१९५२] मनुष्यों (की साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता) का कथन (सू १९३९ में उक्त) समुच्चय जीवों के समान है ।

१९५३ सेसा जहा णेरइया (सु १९४०-४२) जाव वेमाणिया ।

[१९५३] वैमानिक पर्यन्त शेष समस्त दण्डकों की पश्यत्ता सम्बन्धी वक्तव्यता (सू १९४०-४२ में उक्त) नैरयिकों के समान कहनी चाहिए ।

विवेचन—उपयोग और पश्यत्ता मे अन्तर—मूलपाठ मे दोनो मे कोई अन्तर नही बताया गया। व्याकरण की दृष्टि से पश्यत्ता का अर्थ है—देखने का भाव। उपयोग शब्द के समान पश्यत्ता के भी दो भेद किये गए हैं। आचार्य अभयदेव ने थोडा सा स्पष्टीकरण किया है। कि यो तो पश्यत्ता एक उपयोग-विशेष ही है, किन्तु उपयोग और पश्यत्ता मे थोडा-सा अन्तर है। जिस बोध मे केवल त्रैकालिक (दीर्घकालिक) अवबोध हो, वह 'पश्यत्ता' है तथा जिस बोध मे केवल वर्तमानकालिक बोध हो, वह उपयोग है। यही कारण है कि साकारपश्यत्ता के भेदो मे मतिज्ञान और मत्यज्ञान, इन दोनो को नहीं लिया गया है, क्योकि इन दोनो का विषय वर्तमानकालिक अविनष्ट पदार्थ ही होता है तथा अनाकारपश्यत्ता मे अचक्षुदर्शन का समावेश इसलिए नहीं किया गया है कि पश्यत्ता एक प्रकार का प्रकृष्ट ईक्षण है, जो अचक्षुरिन्द्रिय से ही सम्भव है तथा दूसरी इन्द्रियो की अपेक्षा चक्षुरिन्द्रिय का उपयोग अल्पकालिक और द्रुततर होता है, यही पश्यत्ता की प्रेक्षण प्रकृष्टता मे कारण है। अत अनाकारपश्यत्ता का लक्षण है -जिसमे विशिष्ट परिस्फुटरूप देखा जाए। यह लक्षण चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन मे ही घटित हो सकता है। वस्तुत प्राचीनकालिक व्याख्याकारों के अनुसार पश्यत्ता और उपयोग के भेदो मे अन्तर ही इनकी व्याख्या को ध्वनित कर देते हैं।[1]

साकारपश्यत्ता का प्रमाण—आभिनिबोधिकज्ञान उसे कहते है, जो अवग्रहादिरूप हो, इन्द्रिय तथा मन के निमित्त से उत्पन्न हो तथा वर्तमानकालिक वस्तु का ग्राहक हो। इस दृष्टि से मतिज्ञान और मत्यज्ञान दोनो मे साकारपश्यत्ता नही है, जबकि श्रुतज्ञानादि छहो अतीत और अनागत विषय के ग्राहक होने मे साकारपश्यत्ता शब्द के वाच्य होते है। श्रुतज्ञान त्रिकालविषयक होता है। अवधिज्ञान भी असख्यात अतीत और अनागतकालिक उत्सर्पिणिया-अवसर्पिणियो को जानने के कारण त्रिकाल विषयक है। मन पर्यवज्ञान भी पल्योपम के असख्यात भागप्रमाण अतीत-अनागत काल का परिच्छेदक होने से त्रिकालविषयक है। केवलज्ञान की त्रिकालविषयता तो प्रसिद्ध ही है। श्रुत-अज्ञान और विभगज्ञान भी त्रिकाल विषयक होते हैं, क्योकि ये दोनो यथायोग्य अतीत और अनागत भावो के परिच्छेदक होते हैं। अतएव पूर्वोक्त छहो ही साकारपश्यत्ता वाले हो सकते है।[2]

जीव और चौवीस दण्डको मे साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता का निरूपण

१९५४ जीवा ण भते ! कि सागारपस्सी अणागारपस्सी ?

गोयमा ! जीवा सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जीवा सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि ?

गोयमा ! जे ण जीवा सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी सुयअण्णाणी विभगणाणी ते ण जीवा सागारपस्सी, जे ण जीवा चक्खुदसणी ओहिदसणी केवलदसणी ते ण जीवा अणागारपस्सी, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति जीवा सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५३०

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ ७२९ से ७३१

(ग) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७१४

२ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ ७३१-७३२

[१९५४ प्र] भगवन् ! जीव साकारपश्यत्ता वाले होते हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले होते हैं ?

[१९५४ उ] गौतम ! जीव साकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि जीव साकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं ?

[उ] गौतम ! जो जीव श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और *विभंगज्ञानी* होते हैं, वे *साकारपश्यत्ता* वाले होते हैं और जो जीव चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी होते हैं, वे अनाकारपश्यत्ता वाले होते हैं। इस कारण से हे गौतम ! यों कहा जाता है कि जीव साकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं।

१९५५ णेरइया णं भंते ! किं सागारपस्सी अणागारपस्सी ?

गोयमा ! एवं चेव। णवरं सागारपासणयाए मणपज्जवणाणी केवलणाणी ण वुच्चति, अणागारपासणयाए केवलदंसणं णत्थि।

[१९५५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले हैं ?

[१९५५ उ] गौतम ! पूर्ववत् (दोनों प्रकार के हैं।) परन्तु इनमें (नैरयिकों में) *साकारपश्यत्ता के रूप में मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी नहीं कहना चाहिए तथा अनाकारपश्यत्ता में* केवलदर्शन नहीं है।

१९५६ एवं जाव थणियकुमारा।

[१९५६] इसी प्रकार (की वक्तव्यता) स्तनितकुमारों तक (कहनी चाहिए)।

१९५७ [१] पुढविक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! पुढविक्काइया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! पुढविक्काइयाणं एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पण्णत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति०।

[१९५७-१ प्र] पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में पूर्ववत् प्रश्न है।

[१९५७-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता

।

! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'पृथ्वीकायिक जीव साकारपश्यत्ता

?

श्रुत-अज्ञान (होने से) साकारपश्यत्ता कही है।

पृथ्वीकायिक साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकार-

[२] एव जाव वणस्सइकाइया ।

[१९५७-२] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) वनस्पतिकायिको तक के (सम्बन्ध मे कहना चाहिए ।)

१९५८ बेइदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! बेइदियाण दुविहा सागारपासणया पण्णत्ता । त जहा—सुयणाणसागारपासणया य सुयअण्णाणसागारपासणया य, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति० ।

[१९५८ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले हैं ?

[१९५८ उ] गौतम ! वे साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि द्वीन्द्रिय साकारपश्यत्ता वाले है, अनाकारपश्यत्ता वाले नही हैं ?

[उ] गौतम ! द्वीन्द्रिय जीवो की दो प्रकार की पश्यत्ता कही है । यथा—श्रुतज्ञानसाकारपश्यत्ता और श्रुत-अज्ञानसाकारपश्यत्ता । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही हैं ।

१९५९ एव तेइदियाण वि ।

[१९५९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवो के विषय मे समझना चाहिए ।

१९६० चउरिंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! चउरिंदिया सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि ।

से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! जे ण चउरिंदिया सुयणाणी सुयअण्णाणी ते ण चउरिंदिया सागारपस्सी, जे ण चउरिंदिया चक्खुदसणी ते ण चउरिंदिया अणागारपस्सी, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति० ।

[१९६० प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले हैं ?

[१९६० उ] गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि चतुरिन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी हैं ?

[उ] गौतम ! जो चतुरिन्द्रिय जीव श्रुत-ज्ञानी और श्रुत अज्ञानी हैं, वे साकारपश्यत्ता वाले

[१९५४ प्र] भगवन ! जीव साकारपश्यत्ता वाले होते हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले होते ह ?

[१९५४ उ] गौतम ! जीव साकारपश्यत्ता वाले भी होते है और अनाकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि जीव साकारपश्यत्ता वाले भी होते ह और अनाकारपश्यत्ता वाले भी होते ह ?

[उ] गौतम ! जो जीव श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पयवज्ञानी, केवलज्ञानी, श्रुत प्रज्ञानी और विभगज्ञानी होते ह, वे साकारपश्यत्ता वाले होते ह और जो जीव चक्षुदर्शनी, अवधिदशनी और केवलदशनी होते ह, व अनाकारपश्यत्ता वाले होते ह । इस कारण से हे गौतम ! यो कहा जाता है कि जीव साकारपश्यत्ता वाले भी होते ह और अनाकारपश्यत्ता वाले भी होते हैं ।

१९५५ णेरइया ण भते ! किं सागारपस्सी अणागारपस्सी ?

गोयमा ! एव चेव । णवर सागारपासणयाए मणपज्जवणाणी केवलणाणी ण वुच्चति, अणागारपासणयाए केवलदसण णत्थि ।

[१९५५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं या अनगारपश्यत्ता वाले ह ?

[१९५५ उ] गौतम ! पूववत् (दोनों प्रकार के ह ।) परतु इनमे (नैरयिको मे) साकार पश्यत्ता के रूप मे मन पर्यायज्ञानी और केवलज्ञानी नही कहना चाहिए तथा अनाकारपश्यत्ता मे केवलदशन नही है ।

१९५६ एव जाव थणियकुमारा ।

[१९५६] इसी प्रकार (की वक्तव्यता) स्तनितकुमारो तक (कहनी चाहिए) ।

१९५७ [१] पुढविक्काइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! पुढविक्काइया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी ।

से केणटठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! पुढविक्काइयाण एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पण्णत्ता, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति० ।

[१९५७-१ प्र] पृथ्वीकायिक जीवो के विषय में पूववत प्रश्न है ।

[१९५७-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव साकारपश्यत्ता वाले ह, अनाकारपश्यत्ता वाले नही ह ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'पृथ्वीकायिक जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही ह ?

[उ] गौतम ! पृथ्वीकायिको मे एकमात्र श्रुत अज्ञान (होने से) साकारपश्यत्ता कही है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक साकारपश्यत्ता वाले है, अनाकार-पश्यत्ता वाले नही हैं ।

[२] एव जाव वणस्सइकाइया।

[१९५७-२] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) वनस्पतिकायिको तक के (सम्बन्ध मे कहना चाहिए।)

१९५८ बेइंदियाण पुच्छा।

गोयमा ! सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! बेइंदियाण दुविहा सागारपासणया पण्णत्ता। त जहा—सुयणाणसागारपासणया य सुयअण्णाणसागारपासणया य, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति०।

[१९५८ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले हैं ?

[१९५८ उ] गौतम ! वे साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि द्वीन्द्रिय साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही है ?

[उ] गौतम ! द्वीन्द्रिय जीवो की दो प्रकार की पश्यत्ता कही है। यथा—श्रुतज्ञानसाकारपश्यत्ता और श्रुत अज्ञानसाकारपश्यत्ता। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय साकारपश्यत्ता वाले हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही हैं।

१९५९ एव तेइंदियाण वि।

[१९५९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवो के विषय मे समझना चाहिए।

१९६० चउरिंदियाण पुच्छा।

गोयमा ! चउरिंदिया सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि।

से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! जे ण चउरिंदिया सुयणाणी सुयअण्णाणी ते ण चउरिंदिया सागारपस्सी, जे ण चउरिंदिया चक्खुदसणी ते ण चउरिंदिया अणागारपस्सी, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति०।

[१९६० प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं या अनाकारपश्यत्ता वाले हैं ?

[१९६० उ] गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी हैं।

[प्र] भगवन ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि चतुरिन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी हैं ?

[उ] गौतम ! जो चतुरिन्द्रिय जीव श्रुत-ज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी हैं, वे साकारपश्यत्ता वाले

हैं और चतुरिन्द्रिय चक्षुदर्शनी हैं, अत अनाकारपश्यत्ता वाले हैं। इस हेतु से हे गौतम ! यो कहा जाता है कि चतुरिन्द्रिय साकारपश्यत्ता वाले भी हैं और अनाकारपश्यत्ता वाले भी है।

१९६१ मणूसा जहा जीवा (सु १९५४)।

[१९६१] मनुष्यो से सम्बन्धित कथन (सू १९५४ मे उक्त) समुच्चय जीवो के समान है।

१९६२ अवसेसा जहा णेरइया (सु १९५५) जाव वेमाणिया।

[१९६२] अवशिष्ट सभी (वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा) वैमानिक तक के विषय मे (सू १९५५ मे उक्त) नैरयिको के समान (जानना चाहिए।)

विवेचन—किन-किन जीवो मे साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता होती है और क्यों ?— (१) समुच्चय जीवो मे जो जीव श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी या केवलज्ञानी हैं अथवा श्रुताज्ञानी या विभगज्ञानी हैं, वे साकारपश्यत्ता वाले हैं, क्योकि उनका ज्ञान साकारपश्यत्ता से युक्त है। जो जीव चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी तथा केवलदर्शनी हैं, वे अनाकारपश्यत्ता वाले हैं, क्योंकि उनका बोध अनाकारपश्यत्ता है। मनुष्यो मे भी समुच्चय जीवो के समान साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता दोनों हैं। नारक भी साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता वाले हैं, किन्तु नारक मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान रूप साकारपश्यत्ता से युक्त नही होते, तथैव केवलदर्शन रूप अनाकारपश्यत्ता वाले भी वे नही होते। इसका कारण यह है नारक चारित्र अगीकार नही कर सकते, अतएव उनमे ये तीनों सम्भव नही होते। पृथ्वीकायिक आदि पाचो एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीव साकारपश्यत्ता वाले होते हैं, अनाकारपश्यत्ता वाले नही, क्योकि एकेन्द्रिय जीवो मे श्रुताज्ञान रूप साकारपश्यत्ता होती है, अनाकारपश्यत्ता नही होती, क्योकि उनमें विशिष्ट परिस्फुट बोध रूप पश्यत्ता नही होती। चतुरिन्द्रियो मे दोनो ही पश्यत्ताएँ होती हैं, क्योकि उनके चक्षुरिन्द्रिय होने से चक्षुदर्शनरूप अनाकारपश्यत्ता भी होती है। चतुरिन्द्रिय जीव श्रुतज्ञानी एव श्रुताज्ञानी होने से वे साकारपश्यत्तायुक्त होते ही है। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक जीव नारको की तरह साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता से युक्त होते है।[1]

केवली मे एक समय मे दोनों उपयोगो के

१९६३ केवली ण भते ! इम ... विट्ठतेहिं वण्णेहिं सठाणेहिं पमाणेहिं पडोयारेहिं ज ... समय ... पासइ त समय जाणइ ?

गोयमा ! ...।

से केणट्ठेण ... वुच्चति केवली ... जाणइ णो त समय ... णो त

गोयमा ! ...

[1] (क) प्रज्ञापना ... पृ ...
(ख) पण्णवणासुत्त भा ... पृ

जाणइ। एव जाव अहेसत्तम। एव सोहम्म कप्प जाव अच्चुय गेवेज्जगविमाणे अणुत्तरविमाणे ईसीपब्भार पुढवि परमाणुपोग्गल दुपएसिय खध अणतपदेसिय खध।

[१९६३ प्र] भगवन्! क्या केवलज्ञानी इस रत्नप्रभापृथ्वी को आकारो से, हेतुओ से, उपमाओ से, दृष्टान्तो से, वर्णो से, सस्थानो से, प्रमाणो से और प्रत्यवतारो से जिस समय जानते हैं, उस समय देखते हैं तथा जिस समय देखते हैं, उस समय जानते हैं?

[१९६३ उ] गौतम! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है।

[प्र] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को आकारो से यावत् प्रत्यवतारो से जिस समय जानते हैं, उस समय नही देखते और जिस समय देखते हैं, उस समय नही जानते हैं?

[उ] गौतम! जो साकार होता है, वह ज्ञान होता है और जो अनाकार होता है, वह दर्शन होता है, (इसलिए जिस समय साकारज्ञान होगा उस समय अनाकारज्ञान (दर्शन) नही रहेगा, इसी प्रकार जिस समय अनाकारज्ञान (दर्शन) होगा, उस समय साकारज्ञान नही होगा।) इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि केवलज्ञानी जिस समय जानता है, उस समय देखता नही यावत् जानता नही। इसी प्रकार शर्कराप्रभापृथ्वी से यावत् अध सप्तमनरकपृथ्वी तक के विषय मे जानना चाहिए और इसी प्रकार (का कथन) सौधर्मकल्प मे लेकर अच्युतकल्प, ग्रैवेयकविमान, अनुत्तरविमान, ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध यावत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के जानने और देखने के विषय मे समझना चाहिए। (अर्थात् इन्हे जिस समय केवली जानते हैं, उस समय देखते नही और जिस समय देखते हैं, उस समय जानते नही।)

१९६४ केवली ण भते! इम रयणप्पभ पुढवि अणागारेहि अहेतूहि अणुवमाहि अदिट्ठतेहि अवण्णेहि असठाणेहि अपमाणेहि अपडोयारेहि पासइ, ण जाणइ?

हता गोयमा! केवली ण इम रयणप्पभ पुढवि अणागारेहि जाव पासइ, ण जाणइ।

से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति केवली ण इम रयणप्पभ पुढवि अणागारेहि जाव पासइ, ण जाणइ?

गोयमा! अणागारे से दसणे भवति सागारे से णाणे भवति, से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चति केवली ण इम रयणप्पभ पुढवि अणागारेहि जाव पासइ, ण जाणइ। एव जाव ईसीपब्भार पुढवि परमाणुपोग्गल अणतपदेसिय खध पासइ, ण जाणइ।

[१९६४ प्र] भगवन्! क्या केवलज्ञानी इस रत्नप्रभापृथ्वी को अनाकारो से, अहेतुओं से, अनुपमाओ से, अदृष्टान्तो से, अवर्णो से, असस्थानो से, अप्रमाणो से और अप्रत्यवतारो से देखते हैं, जानते नहीं हैं?

[१९६४ उ] हाँ, गौतम! केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को अनाकारो से यावत देखते हैं, जानते नहीं हैं।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को अनाकारों से यावत् देखते हैं, जानते नहीं है ?

[उ] गौतम ! जो अनाकार होता, वह दर्शन (देखना) होता है और साकार होता है, वह ज्ञान (जानना) होता है। इस अभिप्राय से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि केवली इस रत्नप्रभा-पृथ्वी को अनाकारों से यावत् देखते हैं, जानते नहीं है।

इसी प्रकार (अनाकारों से यावत् अप्रत्यवतारों से शेष छहों नरकपृथ्वियों, वैमानिक देवों के विमानों) यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, परमाणुपुद्गल तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को केवली देखते हैं, किन्तु जानते नहीं, (यह कहना चाहिए।)

॥ पण्णवणाए भगवतीए तीसइमं पासणयापयं समत्तं ॥

विवेचन—केवली के द्वारा ज्ञान और दर्शन के समकाल में न होने की चर्चा—(१) इस प्रश्न के उठने का कारण—छद्मस्थ जीव तो कर्मयुक्त होते हैं, अतः उनका साकारोपयोग और अनाकारोपयोग क्रम से ही प्रादुर्भूत हो सकता है, क्योंकि कर्मों से आवृत जीवों के एक उपयोग के समय, दूसरा उपयोग कर्म से आवृत हो जाता है। इस कारण दो उपयोगों का एक साथ होना विरुद्ध है। अतः जिस समय छद्मस्थ जानता है, उसी समय देखता नहीं है, किन्तु उसके बाद ही देख सकता है। मगर केवली के चार घातिक कर्मों का क्षय हो चुका है। अतः ज्ञानावरणीय कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने के कारण उनको ज्ञान और दर्शन दोनों एक साथ होने में कोई विरोध या बाधा नहीं है। ऐसी आशंका से गौतमस्वामी द्वारा यह प्रश्न उठाया गया कि क्या केवली रत्नप्रभा आदि को जिस समय जानते है, उसी समय देखते हैं अथवा जीव स्वभाव के कारण क्रम से जानते-देखते हैं ?[१]

आगारेहिं आदि पदों का स्पष्टीकरण—(१) आगारेहिं—केवली भगवान् इस रत्नप्रभा पृथ्वी आदि को अर्थात् आकार-प्रकारों से यथा यह रत्नप्रभापृथ्वी खरकाण्ड, पंककाण्ड और अप्काण्ड के भेद से तीन प्रकार की है। खरकाण्ड के भी सोलह भेद हैं। उनमें से एक सहस्रयोजन प्रमाण रत्नकाण्ड है, तदनन्तर एक सहस्रयोजन परिमित वज्रकाण्ड है, फिर उसके नीचे सहस्रयोजन का वैडूर्यकाण्ड है, इत्यादि रूप के आकार-प्रकारों से समझना। (२) **हेऊहिं**—हेतुओं से अर्थात उपपत्तियों से—युक्तियों से। यथा—इस पृथ्वी का नाम रत्नप्रभा क्यों है ? युक्ति आदि द्वारा इसका समाधान यह है कि रत्नमयकाण्ड होने से या रत्न की ही प्रभा या स्वरूप होने से अथवा रत्नमय काण्ड होने से उसमें रत्नों की प्रभाकान्ति है, अतः इस पृथ्वी का रत्नप्रभा नाम सार्थक है। (३) **उवमाहिं** - उपमाओं से अर्थात् सदृशताओं से। जैसे कि—वर्ण से पद्मराग के सदृश रत्नप्रभा में रत्नप्रभ आदि काण्ड हैं, इत्यादि। (४) **दिट्ठंतेहिं**—दृष्टान्तों-उदाहरणों से या वादी-प्रतिवादी की बुद्धि समता प्रतिपादक वाक्यों से। जैसे—घट, पट आदि से भिन्न होता है, वैसे ही यह रत्नप्रभा-पृथ्वी शर्कराप्रभा आदि अन्य नरकपृथ्वियों से भिन्न है, क्योंकि इसके धर्म उनसे भिन्न हैं। इसलिए रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि से भिन्न वस्तु है, इत्यादि। (५) **वण्णेहिं**—वर्ण-गन्धादि के भेद से। शुक्ल आदि वर्णों के उत्कर्ष-अपकर्षरूप संख्यातगुण, असंख्यातगुण और अनन्तगुण के विभाग से तथा गन्ध, रस और स्पर्श के विभाग से। (६) **संठाणेहिं**—संस्थानों-आकारों से अर्थात रत्नप्रभापृथ्वी में बने भवनों और नरकवासों की रचना के आकारों से। जैसे—वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनीटीका) भा. ५ पृ. ७४७-७४८

चौकोर हैं नीचे पुष्कर की कर्णिका की आकृति के हैं। इसी प्रकार नरक अन्दर से गोल और बाहर से चौकोर हैं और नीचे क्षुरप्र (खुरपा के आकार के हैं इत्यादि। (७) पमाणेहिं—प्रमाणो से अर्थात् उसकी लम्बाई, मोटाई, चौडाई आदिरूप परिमाणो से। जसे—वह एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली तथा रज्जु प्रमाण लम्बाई चौडाई वाली है, इत्यादि। (८) पडोयारेहिं—प्रत्यवतारो से अर्थात् पूणरूप मे चारो ओर से व्याप्त करने वाले पदार्थों (प्रत्यवतारो) से। जसे—घनोदधि आदि वलय सभी दिशाओ विदिशाओ मे व्याप्त करके रहे हुए हैं, अत वे प्रत्यवतार कहलाते हैं। इस प्रकार के प्रत्यवतारो के जानना।

प्रथम प्रश्न का तात्पय—क्या केवली भगवान् पूर्वोक्त आकारादि से रत्नप्रभादि को जिस समय केवलज्ञान से जानते हैं, उसी समय केवलदशन से देखते भी हैं तथा जिस समय वे केवल दशन से देखते हैं, क्या उसी समय केवलज्ञान से जानते भी हैं ?

उत्तर का स्पष्टीकरण—उपयु क्त प्रश्न का उत्तर 'ना' मे है क्योकि केवली भगवान् का ज्ञान साकार अर्थात् विशेष का ग्राहक होता है, जबकि उनका दशन अनाकार अर्थात् सामान्य का ग्राहक होता है। अतएव केवली भगवान् जब ज्ञान के द्वारा विशेष का परिच्छेद करते हैं, तब जानते हैं, ऐसा कहा जाता है और जब दशन के द्वारा अनाकार यानी सामान्य को ग्रहण करते हैं, तब देखते है, ऐसा कहा जाता है। **सविशेष पुनर्ज्ञानम** इस लक्षण के अनुसार वस्तु का विशेषयुक्त बोध या विशेषग्राहक बोध ही ज्ञान होता है। अत केवली का ज्ञान साकार यानी विशेष का ही ग्राहक होता है, अन्यथा उसे ज्ञान ही नही कहा जा सकता और दशन अनाकार यानी सामान्य का ही ग्राहक होता है, क्योकि दर्शन का लक्षण ही है—'पदार्थों को विशेषरहित ग्रहण करना।'

अत सिद्धान्त यह है कि जब ज्ञान होता है, तब ज्ञान ही होता है और जब दशन होता है, तब दशन ही होता है। ज्ञान और दशन छाया और आतप (धूप) के समान साकाररूप एव अनाकाररूप होने से परस्पर विरोधी हैं। ये दोनो एक साथ उपयुक्त नही रह सकते। अतएव केवली जिस समय जानते हैं, उस समय देखते नही और जिस समय देखते हैं, उस समय जानते नही। जीव के कतिपय प्रदेशो मे ज्ञान हो और कतिपय प्रदेशो मे दर्शन हो, इस प्रकार एक ही साथ खण्डश ज्ञान और दशन सम्भव नही है। सातो नरकपृथ्वियो, अनुत्तरविमान तक के विमानो ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, परमाणु, द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे यही सिद्धान्त पूर्वोक्त युक्तिपूवक समझ लेना चाहिए।[२]

द्वितीय प्रश्न का तात्पय—केवली जिस समय इस रत्नप्रभापृथ्वी आदि को अनाकारो (आकार प्रकाररहित रूप) इत्यादि से क्या केवल देखते ही हैं, जानते नही हैं ?

उत्तर का स्पष्टीकरण—भगवान् इसे 'हाँ' रूप मे स्वीकार करते हैं, क्योकि अनाकार आदि रूप मे वस्तु को ग्रहण करना दर्शन का काय है, ज्ञान का नही। ज्ञान का कार्य साकार आदि रूप मे ग्रहण करना है। स्पष्ट शब्दो मे कहे तो केवल अनाकार आदि रूप मे जब रत्नप्रभादि को सामान्य

---

१ प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५ पृ ७४८ से ७५१ तक

२ वही, भा ५, पृ ७५१ से ७५३ तक

रूप से ग्रहण करते हैं, तब दर्शन ही होता है, ज्ञान नहीं। ज्ञान तभी होगा, जब वे साकार आदि रूप में वस्तु को ग्रहण करें।

'अणागारेहिं' आदि पदों का विशेषार्थ—(१) अणागारेहिं—अनाकारों से पूर्वोक्त आकार-प्रकारों से रहित रूप से। (२) अहेतूहिं—हेतु-युक्ति आदि से रहित रूप से। (३) अणुवमाहिं—अनुपमाओं से—सदृशतारहितरूप से। (४) अदिट्ठंतेहिं—अदृष्टान्तों से—दृष्टान्त, उदाहरण आदि के अभाव से। (५) अवण्णेहिं—अवर्णों से अर्थात् शुक्लादि वर्णों एवं गन्ध, रस और स्पर्श से रहित रूप से। (६) असंठाणेहिं—असंस्थानों से अर्थात् रचनाविशेष-रहित रूप में। (७) अपमाणेहिं—अप्रमाणों पूर्वोक्त रूप से लम्बाई-चौडाई-मोटाई आदि परिमाण-विशेष रहित रूप में। (८) अपडो-यारेहिं—अप्रत्यवतारों में अर्थात् घनोदधि आदि वलयों से व्याप्त होने की स्थिति से रहित रूप में, केवल देखते ही हैं।[1]

निष्कर्ष यह है कि केवली जब केवलदर्शन से रत्नप्रभादि किसी भी वस्तु को देखते हैं तब जानते नहीं केवल देखते ही हैं और जब जानते हैं तब देखते नहीं। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं—केवली जाव अपडोयारेहिं पासइ, ण जाणइ।[2]

॥ प्रज्ञापना भगवती का तीसवाँ पश्यत्तापद समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५ पृ. ७५४ से ७५६ तक

२ वही, भा. २, पृ. ७५४-७५५

एगतीसइमं सण्णिपयं

इकतीसवाँ संज्ञिपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र के इस इकतीसवें 'सञ्ज्ञिपद' मे सिद्धसहित समस्त जीवो का सज्ञी, असज्ञी तथा नोसज्ञी-नोअसज्ञी, इन तीन भेदो के आधार पर विचार किया गया है।

- इस पद मे बताया गया है कि सिद्ध सज्ञी भी नही हैं, असज्ञी भी नही हैं, उनकी सज्ञा नोसज्ञी-नोअसज्ञी है, क्योंकि वे मन होते हुए भी उसके व्यापार से ज्ञान प्राप्त नही करते। मनुष्यो मे भी जो केवली हो गए हो, वे सिद्ध के समान ही नोअसज्ञी-नोसज्ञी माने गए हैं क्योकि वे भी मन के व्यापार से ज्ञान प्राप्त नही करते। अन्य गर्भज और सम्मूच्छिम मनुष्य क्रमश सज्ञी और असज्ञी होते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक सभी जीव असज्ञी है। नारक, भवनवासी वाणव्यन्तर और पचेन्द्रियतिर्यंच सज्ञी और असज्ञी दोनो ही प्रकार के हैं। ज्योतिष्क और वैमानिक दोनो सज्ञी हैं।

- इस पद के उपसहार मे एक गाथा दी गई है, जिसमे मनुष्य को सज्ञी या असज्ञी दो ही प्रकार का कहा है, परन्तु सूत्र १९७० मे मनुष्य मे तीनो प्रकार बताए हैं। इससे मालूम होता है कि गाथा का कथन छद्मस्थ मनुष्य की अपेक्षा से होना चाहिए।[1]

- परन्तु सज्ञा का अर्थ यहा मूल मे स्पष्ट नही है। मनुष्य, नारक, भवनवासी एव व्यन्तरदेव को असज्ञी कहा गया है, इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि जिसके मन हो, उसे सज्ञी कहते हैं,[2] यह अर्थ प्रस्तुत प्रकरण मे घटित नही होता। यही कारण है कि वृत्तिकार को यहाँ सज्ञा शब्द के दो अर्थ करने पडे। फिर भी पूरा समाधान नही होने से टीकाकार को यह स्पष्टीकरण करना पडा कि नारक आदि सज्ञी और असज्ञी इसलिए हैं कि वे पूर्वभव मे सज्ञी या असज्ञी थे। अत सज्ञा शब्द यहाँ किस अर्थ मे अभिप्रेत है, यह अनुसधान का विषय है।[3]

---

१ पण्णवणासुत्त भाग २ (परिशिष्ट, प्रस्तावना) पृ १४२

२ सज्ञिन समनस्का।' —तत्वार्थ २।२५

३ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५३४

❖ आचारांगसूत्र के प्रारम्भ मे पूर्वभव के ज्ञान के प्रसग मे,[1] अर्थात् विशेष प्रकार के मतिज्ञान के अर्थ मे सज्ञा शब्द प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार दशाश्रुतस्कन्ध मे जहाँ दस चित्तसमाधि-स्थानो का वर्णन है, वहाँ अपने पूर्वजन्म के स्मरण करने के अर्थ मे सज्ञा शब्द का प्रयोग किया गया है।[2] इससे प्रतीत होता है कि सज्ञा शब्द पहले मतिज्ञान-विशेष अर्थ मे प्रयुक्त हुआ होगा, कालक्रम से यह पूर्व-अनुभव के स्मरण या जातिस्मरण ज्ञान के अर्थ मे व्यवहृत होने लगा होगा। जो भी हो, सज्ञा शब्द है तो मतिज्ञान-विशेष ही, फिर वह सज्ञा—सकेत—शब्द रूप मे हो या चिह्नरूप मे हो। उससे ज्ञान होने मे स्मरण आवश्यक है। स्थानागसूत्र मे भी 'एगा सन्ना' ऐसा पाठ मिलता है। इसलिए प्राचीनकाल मे सज्ञा नाम का कोई विशिष्ट ज्ञान तो प्रसिद्ध था ही। आवश्यकनिर्युक्ति मे भी सज्ञा को अभिनिबोध (मतिज्ञान) कहा है।[3]

❖ 'षट्खण्डागम' मूल के मार्गणाद्वार मे सज्ञीद्वार है। परन्तु वहाँ सज्ञा का वास्तविक अर्थ क्या है, यह नही बताया गया है। वहाँ सज्ञी-असज्ञी की प्ररूपणा करते हुए कहा गया है कि मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय-वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक के जीव सज्ञी हैं तथा एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव असज्ञी हैं। फिर यह भी कहा है कि सज्ञी क्षायोपशमिक लब्धि से, असज्ञी औदयिक भाव से और न-सज्ञी, न असज्ञी क्षायिकलब्धि से होता है। इसके स्पष्टीकरण मे 'धवला' मे सज्ञी शब्द की दो प्रकार की व्याख्या की गई है, वह विचारणीय है—सम्यग् जानातीति सज्ञ—मन, तदस्यास्तीति सज्ञी। नकेन्द्रियादिना अतिप्रसग, तस्य मनसो भावात्। अथवा शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही सज्ञी। उक्त च—

'सिक्खा-किरियुवदेसालावग्गाही मणोवलवेण'।
जो जीवो सो सण्णी, तव्विवरीदो असण्णी दु ॥

इस दूसरी व्याख्या मे भी मन का आलम्बन तो स्वीकृत है ही। तात्पर्य मे इससे कोई अन्तर नही पडा।[4]

❖ तत्त्वार्थसूत्र मे 'सज्ञिन समनस्का' (सज्ञी जीव मन वाले होते हैं), ऐसा कह कर भाष्य मे इसका स्पष्टीकरण किया है कि यहाँ सज्ञी शब्द से वे ही जीव विवक्षित हैं, जिनमे सप्रधारण सज्ञा हो। सम्प्रधारण सज्ञा का लक्षण किया है—ईहापोहयुक्ता गुणदोषविचारणात्मिका सम्प्र-

---

१ (क) 'मति स्मृति सज्ञा चिन्ता इत्यनर्थान्तरम्।' —तत्त्वार्थ
(ख) विशेषावश्यक गा १२, पत्र ३९४
(ग) इहमगेसि णो सण्णा भवइ, त पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि इत्यादि। —आचाराग श्रु १ सू १

२ सण्णिणाण वा से असमुप्पनपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, अप्पणो पोराणिय जाइ सुमरित्तए —दशाश्रुतस्कन्ध दशा ५

३ (क) पण्णवणासुत्त भाग २ (परिशिष्ट प्रस्तावनात्मक), पृ १४२
(ख) स्थानागसूत्र स्था १, सू २९-३२
(ग) आवश्यकनिर्युक्ति गा १२, विशेषावश्यक गा ३९४

४ (क) षट्खण्डागम, मूल पु १, पृ ४०८
(ख) वही पुस्तक ७, पृ १११-११२
(ग) धवला, पु १, पृ १५२

धारणसंज्ञा—अर्थात्—ईहा और अपोह से युक्त गुण-दोप का विचार करने वाली सप्रधारण संज्ञा है।[1] इसका फलितार्थ यह हुआ कि समनस्क (मन वाले) संज्ञी जीव वे ही होते हैं, जो सम्प्रधारणसंज्ञा के कारण संज्ञी कहलाते हो।

✤ संज्ञा के इस लक्षण पर से एक स्पष्ट बात हो जाती है कि स्थानांगसूत्र के चतुर्थ स्थान मे प्रतिपादित आहारादि संज्ञा तथा आहार-भय-परिग्रह-मैथुन-क्रोध-मान-माया-लोभ-शोक-सुख-दु ख-मोह-विचिकित्सासंज्ञा के कारण कहलाने वाले 'संज्ञी' यहाँ विवक्षित नहीं हैं।[2]

✤ कुल मिलाकर 'संज्ञापद' से आत्मा के द्वारा होने वाले मतिज्ञानविशिष्ट तथा गुणदोषविचारणात्मक संज्ञा प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है।

---

१ तत्त्वार्थ भाष्य २।२५
२ स्थानांग स्था ४, स्था १०

एगतीसइमं सण्णिपयं

इकतीसवाँ संज्ञिपद

जीव एवं चौवीस दण्डको में संज्ञी आदि की प्ररूपणा

१९६५ जीवा ण भंते ! किं सण्णी असण्णी णोसण्णी णोअसण्णी ?

गोयमा ! जीवा सण्णी वि असण्णी वि णोसण्णी-णोअसण्णी वि ।

[१९६५ प्र] भगवन् ! जीव संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं, अथवा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं ?

[१९६५ उ] गौतम ! जीव संज्ञी भी हैं, असंज्ञी भी हैं और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी भी हैं ।

१९६६ णेरइया ण भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! णेरइया सण्णी वि असण्णी वि, णो णोसण्णी-णोअसण्णी ।

[१९६६ प्र] भगवन् ! नैरयिक संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं अथवा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं ?

[१९६६ उ] गौतम ! नैरयिक संज्ञी भी हैं, असंज्ञी भी हैं, किन्तु नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं हैं ।

१९६७ एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा ।

[१९६७] इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक (कहना चाहिए ।)

१९६८ पुढविक्काइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! णो सण्णी, असण्णी णो णोसण्णी णोअसण्णी ।

[१९६८ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव संज्ञी हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है ।

[१९६८ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव न तो संज्ञी हैं और न नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं, किन्तु असंज्ञी हैं । (इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय जीवों के विषय में समझना चाहिए ।)

१९६९ एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया वि ।

[१९६९] इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के लिए भी जानना चाहिए (कि वे संज्ञी या नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं होते, किन्तु असंज्ञी होते हैं) ।

१९७० मणूसा जहा जीवा (सु १९६५) ।

[१९७०] मनुष्यों की वक्तव्यता समुच्चय जीवों के समान जानना चाहिए ।

१९७१ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया वाणमंतरा य जहा णेरइया (सु १९६६) ।

[१९७१] पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों और वाणव्यन्तरों का कथन (सू १९६६ में उक्त) नारकों के समान है ।

१९७२ जोइसिय-वेमाणिया सण्णी, णो असण्णी णो णोसण्णी णोअसण्णा।

[१९७२] ज्योतिष्क और वमानिक सज्ञी होते हैं, किन्तु असज्ञी नही होते, न ही नोसज्ञी नोअसज्ञी होते हैं।

१९७३ सिद्धाण पुच्छा।

गोयमा ! णो सण्णी णो असण्णी, णोसण्णि णोअसण्णी।

णेरइय-तिरिय-मणुया य वणयरसुरा य सण्णऽसण्णी य।
विगलिंदिया असण्णी, जोतिस वेमाणिया सण्णी ॥ २२० ॥

[१९७३ प्र] भगवन् ! क्या सिद्ध सज्ञी होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[१९७३ उ] गौतम ! वे न तो सज्ञी हैं, न असज्ञी हैं, किन्तु नोसज्ञी-नोसज्ञी हैं।

सग्रहणीगाथार्थ—'नारक तिर्यञ्च, मनुष्य वाणव्यन्तर और असुरकुमारादि भवनवासी सज्ञी होते हैं, असज्ञी भी होते हैं। विकलेन्द्रिय (एव एकेन्द्रिय) असज्ञी होते हैं तथा ज्योतिष्क और वमानिक देव सज्ञी ही होते हैं ॥ २२० ॥

॥ पण्णवणाए भगवतीए एगतीसइम सण्णिपय समत्त ॥

विवेचन—सज्ञी, असज्ञी और नोसज्ञी-नोअसज्ञी का स्वरूप—प्रस्तुत प्रकरण मे सज्ञा का अर्थ है—अतीत, अनागत और वर्तमान भावो के स्वभाव का पर्यालोचन—विचारणा। इस प्रकार की सज्ञा वाले जीव सज्ञी कहलाते हैं। अर्थात् जिनमे विशिष्ट स्मरणादि रूप मनोविज्ञान पाया जाए। इस प्रकार के मनोविज्ञान (मस्तिष्कज्ञान) से विकल जीव असज्ञी कहलाते हैं। अथवा भूत, भविष्य और वर्तमान पदार्थ का जिससे सम्यक् ज्ञान हो, उसे सज्ञा अर्थात्—विशिष्ट मनोवृत्ति कहते हैं। इस प्रकार की सज्ञा जिनमे हो, वे सज्ञी कहलाते हैं। अर्थात्—समनस्क जीव सज्ञी तथा जिनके मनोव्यापार न हो, ऐसे अमनस्क जीव असज्ञी कहलाते हैं। जो सज्ञी और असज्ञी, दोनो कोटियो से अतीत हो, ऐसे केवली या सिद्ध नोसज्ञी-नोअसज्ञी कहलाते हैं।[1]

कौन सज्ञी, कौन असज्ञी तथा कौन सज्ञी असज्ञी और क्यो ?—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय जीव असज्ञी होते हैं, क्योकि एकेन्द्रियो मे मानसिक व्यापार का अभाव होता है और द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रियो एव सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियो मे विशिष्ट मनोवृत्ति का अभाव होता है। केवली मनोद्रव्य से सम्बन्ध होने पर भी अतीत, अनागत और वर्तमानकालिक पदार्थों या भावो के स्वभाव की पर्यालोचनारूप सज्ञा से रहित हैं तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने के कारण केवलज्ञान केवलदर्शन से साक्षात् समस्त पदार्थों को जानते देखते हैं। इस कारण केवली न तो सज्ञी हैं और न असज्ञी हैं, सिद्ध भी सज्ञी नही हैं, क्योकि उनके द्रव्यमन नही होता तथा सर्वज्ञ होने के कारण असज्ञी भी नही हैं। अतएव केवली और सिद्ध नोसज्ञी-नोअसज्ञी कहलाते हैं।

---

१ (क) प्रज्ञापना, (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ७१३
(ख) प्रज्ञापना, मलयवृत्ति, अ रा कोष भा ७ पृ ३०५

समुच्चय जीव सज्ञी भी होते हैं, असज्ञी भी होते है और नोसज्ञी नोअसज्ञी भी होते हैं। नैरयिक तथा दस प्रकार के भवनवासी देव सज्ञी भी होते हैं, असज्ञी भी। जो नरयिक या भवनवासी सज्ञी के भव से नरक मे या भवनवासी देव मे उत्पन्न होते ह, वे नारक या भवनवासी देव सज्ञी कहलाते ह। जो असज्ञी के भव से नरक मे या भवनवासी देवो मे उत्पन्न होते ह, वे असज्ञी कहलाते ह। किन्तु नारक या भवनवासी देव नोसज्ञी-नोअसज्ञी नही हो सकते, क्योकि वे केवली नही हो सकते। केवली न हो सकने का कारण यह है कि वे चारित्र को अगीकार नही कर सकते। मनुष्यो की वक्तव्यता समुच्चय जीवो के समान समझनी चाहिए। अर्थात मनुष्य भी समुच्चय जीवो के समान सन्नी, असज्ञी तथा नोसज्ञी नोअसज्ञी भी होते ह। गभज मनुष्य सन्नी होते ह, सम्मूर्च्छिम मनुष्य असज्ञी होत ह तथा केवली नोसज्ञी नोअसज्ञी होते ह।

पचेन्द्रियतिर्यञ्च और वाणव्यन्तर नारको के समान सज्ञी भी होते हैं, असज्ञी भी। जो पचेन्द्रियतिर्यञ्च सम्मूर्च्छिम होते ह, वे असज्ञी और जो गभज होते ह, वे सज्ञी होते ह। जो वाणव्यन्तर असज्ञियो से उत्पन्न होते ह, वे असज्ञी और सज्ञियो से उत्पन्न होते ह, वे सज्ञी होते हैं। दोनो ही नोसज्ञी-नोअसज्ञी नही होते, क्योकि वे चारित्र अगीकार नही कर सकते। ज्योतिष्क और वमानिक सज्ञी ही होते ह, असज्ञी नही, क्योकि सज्ञी से ही उत्पन्न होते है। ये नोसज्ञी नोअसज्ञी तो हो ही नहीं सकते, क्योकि वे चारित्र अगीकार नही कर सकते। सिद्ध भगवान् पूर्वोक्त युक्ति से नोसज्ञी-नोअसज्ञी होते ह।

॥ प्रज्ञापना भगवती का इकतीसवाँ सज्ञिपद समाप्त ॥

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभि रा कोष भा ७, प ३०५

बत्तीसइमं संजयपयं

बत्तीसवाँ सयतपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह बत्तीसवा पद है, इसका नाम सयतपद है।
- सयतपद मानवजीवन का सर्वोत्कृष्ट पद है। सयतपद प्राप्त करने के बाद ही मोक्ष की सीढियाँ उत्तरोत्तर शीघ्रता से पार की जा सकती हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्ररूप रत्नत्रय की सर्वोत्तम आराधना इसी पद पर आरूढ होने के बाद हो सकती है। इसीलिए प्रज्ञापना के बत्तीसवें पद मे इसे स्थान दिया गया है।
- प्रस्तुत पद मे समुच्चय जीव तथा नैरयिक से लेकर वैमानिक तक चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के सयत, असयत, सयतासयत और नोसयत-नोअसयत होने के विषय मे प्ररूपणा की गई है।

  सयत से सम्बन्धित चार भेदो का विचार समस्त जीवो के विषय मे किया गया है।
- सयत का अर्थ है जो महाव्रती, सयमी हो, सर्वविरत हो। असयत का अर्थ है—जो सर्वथा अविरत, असयमी, अप्रत्याख्यानी हो। सयतासयत का अर्थ है—जो देशविरत हो, श्रावकव्रती हो, विरताविरत हो तथा नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत का अर्थ—जो न तो सयत हो और न असयत हो, न ही सयतासयत हो, क्योकि सयत भी साधक है, अभी सिद्धगतिप्राप्त नही है और असयतासयत तो और भी नीची श्रेणी पर है। इसलिए नोसयत-नोअसयत नोसयतासयत मे सिद्ध भगवान् को लिया गया है।
- इस पद का निष्कर्ष यह है कि नारक, एकेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय, भवनवासी वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक, ये सभी असयत होते हैं, ये न तो सयत हो सकते हैं, न सयतासयत। पचेन्द्रियतिर्यञ्च सयत नही हो सकता, वह सयतासयत हो सकता है, अथवा प्राय असयत होता है। मनुष्य मे सयत, असयत और सयतासयत तीनो प्रकार सम्भव हैं। नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत सिद्ध भगवान् ही हो सकते हैं।
- आचार्य मलयगिरि ने सयतपद का महत्त्व बताते हुए कहा है कि देवो, नारको और तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो को सर्वविरतिरूप चारित्र या केवलज्ञान का परिणाम ही नही होता। वे श्रवण-मनन भी नही कर सकते और न जीवन मे चारित्र धारण कर सकते हैं, इसके कारण वे पश्चात्ताप करते हैं, विषाद पाते हैं। अत मनुष्यो को सयतपद की आराधना के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। षट्खण्डागम के सयमद्वार मे सामायिकशुद्धिसयत, छेदोपस्थापनशुद्धिसयत, परिहार-शुद्धिसयत, सूक्ष्मसम्परायशुद्धिसयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसयत, सयतासयत और असयत ऐसे भेद करके १४ गुणस्थानो के माध्यम से विचारणा की गई है।

---

१ पण्णवणासुत्त भा २, (प्रस्तावना-परिशिष्ट) पृ १४४

२ षट्खण्डागम पु १, पृ ३६८

बत्तीसइमं संजयपयं

बत्तीसवाँ सयतपद

जीवो एव चौवीस दण्डको मे सयत आदि की प्ररूपणा

१९७४ जीवा ण भते ! कि सजया असजया सजयासजया णोसजय णोअसजजयणोसजया सजया ?

गोयमा ! जीवा ण सजया वि असजया वि सजयासजया वि णोसजयणोअसजयणोसजया-सजया वि।

[१९७४ प्र] भगवन ! (समुच्चय) जीव क्या सयत होते हैं, असयत होते है, सयतासयत होते हैं, अथवा नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत होते हैं ?

[१९७४ उ] गौतम ! जीव सयत भी होते हैं, असयत भी होते है, सयतासयत भी होते हैं और नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत भी होते हैं।

१९७५ णेरइया ण भते ! कि सजया असजया सजयासजया णोसजयणोअसजयणोसजया सजया ?

गोयमा ! णेरइया णो सजया, असजया, णो सजयासजया णो णोसजय णोअसजय णोसजया-सजया।

[१९७५ प्र] भगवन् ! नरयिक सयत होते हैं, असयत होते है, सयतासयत होते हैं या नोसयत-नोअसयत नोसयतासयत होते हैं ?

[१९७५ उ] गौतम ! नैरयिक सयत नही होते, न सयतासयत होते हैं और न नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत होते हैं, किन्तु असयत होते हैं।

१९७६ एव जाय चउरिदिया।

[१९७६] इसी प्रकार (असुरकुमारादि भवनवासी, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय तथा त्रीन्द्रिय) चतुरिन्द्रियों तक जानना चाहिए।

१९७७ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ?

गोयमा ! पचेंदियतिरिक्खजोणिया णो सजया, असजया वि सजयासजया वि, णो णोसजय-णोअसजय णोसजयासजया।

[१९७७ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक क्या सयत होते हैं ? इत्यादि प्रश्न है।

[१९७७ उ] गौतम ! पचेन्द्रियतिर्यञ्च न तो सयत होते हैं और न ही नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत होते हैं, किन्तु वे असयत या सयतासयत होते हैं।

११७८ मणूसा ण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! मणूसा सजया वि असजया वि, सजयासजया वि, णो णोसजयणोअसजय-णो-सजयासजया ।

[१९७८ प्र] भगवन् ! मनुष्य सयत होते है ? इत्यादि पूववत प्रश्न है ।

[१९७८ उ] गौतम ! मनुष्य सयत भी होते है असयत भी होते हैं, सयतासयत भी होते हैं, किन्तु नोसयत-नोअसयत—नोसयतासयत नही होते हैं ।

१९७९ वाणमतर-जोतिसिय वेमाणिया जहा णेरइया (सु १९७५) ।

[१९७९] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको का कथन नैरयिको के समान समझना चाहिए ।

१९८० सिद्धाण पुच्छा ।

गोयमा ! सिद्धा नो सजया नो असजया नो सजयासजया, णोसजय णोअसजय णोसजयासजया ।

सजय अस्सजय मोसगा य जीवा तहेव मणुया य ।
सजयरहिया तिरिया, सेसा अस्सजया होति ।। २२१ ।।

[१९८० प्र] सिद्धो के विषय मे पूववत् प्रश्न है ।

[१९८० उ] गौतम ! सिद्ध न तो सयत होते हैं, न असयत और न ही सयतासयत होते हैं, कि तु नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत होते हैं ।

[सग्रहणी गाथार्थ—] जीव और मनुष्य सयत, असयत और सयतासयत (मिश्र) होते हैं । तिर्यञ्च सयत नही होते, (कि तु असयत और सयतासयत होते हैं) । शेष एकेंद्रिय, विकलेन्द्रिय और देव (चारो जाति के) तथा नारक असयत होते हैं ।। २२१ ।।

।। पण्णवणाए भगवतीए बत्तीसइम सजयपय समत्त ।।

विवेचन—सयत एव असयत पद का लक्षण—जो सर्वसावद्ययोगो से सम्यक् प्रकार से विरत हो चुके हैं और चारित्रपरिणामो की वृद्धि के कारणभूत निरवद्य योगो मे प्रवृत्त हुए है, वे सयत कहलाते हैं । अर्थात्—हिंसा आदि पापस्थानो से जो सवथा निवृत्त हो चुके हैं, वे सयत है । उनस विपरीत असयत ह ।

सयतासयत—जो हिंसादि से देश (आशिकरूप) से विरत हैं ।

नोसयत-नोअसयत नोसयतासयत—जो इन तीना से भिन्न हैं ।

जीव मे चारो का समावेश कसे ?—जीव सयत भी होते हैं, क्योकि श्रमण सयत हैं । जीव असयत भी होते है, क्योकि नारकादि असयत हैं । जीव सयतासयत भी होते हैं, क्योकि पचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य स्थूल प्राणातिपात आदि का त्याग करके देशसयम के आराधक होते है तथा जीव नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत भी होते हैं, क्योकि सिद्धो मे इन तीनो का निषध पाया जाता है । सिद्ध भगवान् शरीर और मन से रहित होते हैं । अतएव उनमे निरवद्ययोग मे प्रवृत्ति और सावद्ययोग

से निवृत्ति रूप सयतत्व घटित नही होता । सावद्ययोग प्रवृत्ति न होने से असयतत्व भी नही पाया जाता तथा दोनो का सम्मिलितरूप सयतासयतत्व भी इसी कारण सिद्धो मे नही पाया जाता । कौन सयत है, कौन असयत है, कौन सयतासयत है तथा कौन नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत है, इसकी प्ररूपणा मूलपाठ मे कर ही दी गई है, अतिम सग्रहणी गाथा मे निष्कर्ष दे दिया है । अत स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही है ।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का बत्तीसवा सयतपद सम्पूर्ण ॥

१ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४१४

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ७६८ से ७७१ तक

तेत्तीसइमं ओहिपयं

तेतीसवाँ अवधिपद

- यह प्रज्ञापनासूत्र का तेतीसवाँ अवधिपद है। इसमे अवधिज्ञानसम्बन्धी विस्तृत चर्चा है। विभिन्न पहलुओ से अवधिज्ञान की प्ररूपणा की गई है।

- भारतीय दार्शनिको और कही-कही पश्चात्य दार्शनिको ने अतीन्द्रियज्ञान की चर्चा अपने अपने धर्मग्रन्थो तथा स्वतन्त्ररचित साहित्य मे की है। साधारण जनता किसी ज्योतिषी, मन्त्रविद्या-सिद्ध व्यक्ति अथवा किसी देवी-देवोपासक के द्वारा भूत भविष्य एव वर्तमान की चर्चा सुन कर आश्चर्यान्वित हो जाती है। उसी को चमत्कार मान कर गतानुगतिक रूप से उलटे-सीधे मार्ग को पकड कर चल पडती है। कभी-कभी लोग ऐसे चमत्कार के चक्कर मे पड कर धन और धर्म को खो बैठते हैं। क्षणिक चमत्कार की चकाचौंध मे पड कर कई व्यक्ति अपने शील का भी त्याग कर देते हैं और नैतिक पतन के चौराहे पर आकर खडे हो जाते हैं। अत ऐसा चमत्कार क्या है? वह अवधिज्ञान है या और कोई ज्ञान है? इस शका के समाधानार्थ जैन तीर्थंकरो ने अवधिज्ञान का यथार्थ स्वरूप बताया है। वह कितने प्रकार का है? कैसे उत्पन्न होता है? क्या वह चला भी जाता है, न्यूनाधिक भी हो जाता है अथवा स्थायी रहता है? ऐसा ज्ञान किन-किन को होता है? जन्म से ही होता है या विशिष्ट क्षयोपशम से? इन सब पहलुओ पर साधको को यथार्थ मार्गदर्शन देने तथा साधक कही इसके पीछे अपनी साधना न खो बैठें, आम जनता को चमत्कार के चक्कर मे डालने के लिए रत्नत्रय की साधना को छोड कर अन्य मार्गों का अवलम्बन न ले बैठें तथा जनता की चमत्कार की भ्रान्ति दूर करने के लिए अवधि-ज्ञान की विभिन्न पहलुओ से व्याख्या की है।

- प्रस्तुत पद मे अवधिज्ञान के विषय मे ७ द्वारो के माध्यम से विश्लेषण किया गया है। जैसे कि—(१) प्रथम भेदद्वार, जिसमे अवधिज्ञान के भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है। (२) द्वितीय विषयद्वार, अवधिज्ञान से प्रकाशित क्षेत्र का विषय, (३) तीसरा सस्थानद्वार, उस क्षेत्र के आकार का वर्णन है, (४) चतुर्थ अवधिज्ञान के बाह्य आभ्यन्तर प्रकार, (५) पचम देशावधिद्वार, जिसमे सर्वोत्कृष्ट अवधि के साथ सर्वजघन्य और मध्यम अवधि का निरूपण है, (६) छठा, इसमे अवधिज्ञान के क्षय और वृद्धि का निरूपण है। अर्थात् हीयमान और वर्धमान अवधिज्ञान की चर्चा है। (७) सप्तम प्रतिपाती और अप्रतिपातीद्वार, इसमे स्थायी और प्रतिपाती अवधिज्ञान का निरूपण है।

- आम जनता आज जिस प्रकार के साधारण भूत-भविष्य-वर्तमानकालिक ज्ञान को चमत्कार मान कर प्रभावित हो जाती है, वह मतिज्ञान का ही विशेष प्रकार है। वह इन्द्रियातीत ज्ञान नही है। पूर्वजन्म की बीती बातो को याद करने वाले जातिस्मरण ज्ञान को भी कई लोग अवधि-ज्ञान की कोटि मे मान बैठते हैं किन्तु वह मतिज्ञान का ही विशेष भेद है। ज्योतिष या मन्त्र-

तन्त्रादि से अथवा देवोपासना से होने वाला विशिष्ट ज्ञान भी अवधिज्ञान नहीं है, वह मतिज्ञान का ही विशिष्ट प्रकार है।

- अवधिज्ञान का स्वरूप कर्मग्रन्थ आदि में बताया गया है कि इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा को अवधि-मर्यादा में होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान अवधिज्ञान है। वह भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय (क्षायोपशमिक) के भेद से दो प्रकार का है। देवों और नारकों को यह जन्म से होता है और मनुष्यों एवं पंचेन्द्रियतिर्यंचों को कर्मों के क्षयोपशम से प्राप्त होता है।

- अवधिज्ञान के क्षेत्रगतविषय की चर्चा का सार यह है—नारक क्षेत्र की दृष्टि से कम से कम आधा गाऊ और अधिक से अधिक चार गाऊ तक जानता-देखता है। फिर एक एक करके सातों ही नरकों के नारकों के अवधि क्षेत्र का निरूपण है, नीचे की नरकभूमियों में उत्तरोत्तर अवधिज्ञानक्षेत्र कम होता जाता है। भवनवासी निकाय में असुरकुमार का अवधिक्षेत्र कम से कम २५ योजन और उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप-समुद्र है। बाकी के नागकुमारादि का अवधिक्षेत्र उत्कृष्ट संख्यात द्वीप-समुद्र है। पंचेन्द्रियतिर्यंच का अवधिक्षेत्र जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र है। मनुष्य का उत्कृष्ट अवधिक्षेत्र अलोक में भी लोकपरिमित असंख्यात लोक जितना है। वाणव्यन्तर का अवधिक्षेत्र नागकुमारवत् है। ज्योतिष्कदेवों का जघन्य असंख्यात द्वीपसमुद्र है। वैमानिक देवों के अवधिक्षेत्र की विचारणा में विमान से नीचे का, ऊपर का और तिरछे भाग का अवधिक्षेत्र बताया है। विमान पर उन-उन वैमानिक देवों का अवधिक्षेत्र विस्तृत है। अनुत्तरौपपातिक देवों का अवधिक्षेत्र समग्र लोकनाडी प्रमाण है।

- अवधिज्ञान का क्षेत्र की अपेक्षा से तप्र (डोंगी), पल्लक, झालर, पटह आदि के समान विविध प्रकार का आकार बताया है।

  आचार्य मलयगिरि ने उसका निष्कर्ष यह निकाला है कि भवनवासी और व्यन्तर को ऊपर के भाग में, वैमानिकों को नीचे के भाग में तथा ज्योतिष्क और नारकों को तिर्यक्‌दिशा में अधिक विस्तृत होता है। मनुष्य और तिर्यञ्चों के अवधिज्ञान का आकार विचित्र होता है।

- बाह्य और आभ्यन्तर अवधि की चर्चा में बताया गया है कि नारक और देव अवधिक्षेत्र के अन्दर हैं, अर्थात्—उनका अवधिज्ञान अपने चारों ओर फैला हुआ है, तिर्यञ्च में वैसा नहीं है। मनुष्य अवधि-क्षेत्र में भी है और बाह्य भी है। इसका तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान का प्रसार स्वयं जहाँ है, वहीं से हो, तो वह अवधि के अन्दर (अन्त) माना जाता है, परन्तु अपने से विच्छिन्न प्रदेश में अवधि का प्रसार हो तो वह अवधि से बाह्य माना जाता है। सिर्फ मनुष्य को ही सर्वावधि सम्भव है, शेष सभी जीवों को देशावधि ही होता है।

- आगे के द्वारों में नारकादि जीवों में आनुगामिक-अनानुगामिक, हीयमान-वर्धमान, प्रतिपाती-अप्रतिपाती तथा अवस्थित और अनवस्थित आदि अवधिभेदों की प्ररूपणा की गई है।

- कुल मिलाकर अवधिज्ञान की सांगोपांग चर्चा प्रस्तुत पद में की गई है। भगवतीसूत्र एवं कर्मग्रन्थ में भी इतनी विस्तृत विचारणा नहीं की गई है।[1]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा. १ (मूलपाठ टिप्पण) पृ. ४१५ से ४१८ तक
(ख) पण्णवणासुत्त भा. २ (परिशिष्ट-प्रस्तावना) पृ. १४०-१४१

तेत्तीसइमं ओहिपयं

तेतीसवाँ अवधिपद

तेतीसवें पद के अर्थाधिकारो की प्ररूपणा

१९८१ भेद १ विसय २ सठाणे ३ अभिंतर-बाहिरे ४ य देसोही ५ ।
ओहिस्स य खय-वुड्ढी ६ पडिवाई चेवऽपडिवाई ७ ॥ २२२ ॥

[१९८१ सग्रहणी-गाथार्थ—] तेतीसवें पद मे इन सात विषयो का अधिकार है—(१) भेद, (२) विषय, (३) सस्थान, (४) आभ्यन्तर-बाह्य, (५) देशावधि, (६) अवधि का क्षय और वृद्धि, (७) प्रतिपाती और अप्रतिपाती ।

विवेचन—सात द्वार—तेतीसवे पद मे प्रतिपाद्य विषय के सात द्वारा इस प्रकार है । (१) प्रथम द्वार—अवधिज्ञान के भेद-प्रभेद, (२) द्वितीय द्वार—अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र का विषय (३) तृतीय द्वार—अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र का सस्थान- आकार, (४) चतुर्थ द्वार—अवधिज्ञान के दो प्रकार—आभ्यन्तर और बाह्य, (५) पचम द्वार—देश अवधि—सर्वोत्कृष्ट अवधि मे से सर्वजघन्य और मध्यम अवधि, (६) छठा द्वार—अवधिज्ञान के क्षय और वृद्धि का कथन, अर्थात् हीयमान और वर्द्धमान अवधिज्ञान तथा (७) सप्तम द्वार—प्रतिपाती (उत्पन्न होकर कुछ ही काल तक टिकने वाला) अवधिज्ञान एव अप्रतिपाती—मृत्यु से या केवलज्ञान से पूर्व तक नष्ट न होने वाला अवधिज्ञान ।[1]

प्रथम अवधि-भेद द्वार

१९८२ कतिविहा ण भते ! ओही पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा ओही पण्णत्ता । त जहा—भवपच्चइया य खओवसमिया य । दोण्ह भवपच्चइया, त जहा—देवाण य णेरइयाण य । दोण्ह खओवसमिया, त जहा—मणूसाण पचेंदिय-तिरिक्खजोणियाण य ।

[१९८२ प्र] भगवन् ! अवधि (ज्ञान) कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९८२ उ] गौतम ! अवधि (ज्ञान) दो प्रकार का कहा गया है, यथा—भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक । दो को भव प्रत्ययिक अवधि (ज्ञान) होता है, यथा—देवो को और नारको को । दो को क्षायोपशमिक होता है, यथा—मनुष्यो को और पचेन्द्रियतिर्यञ्चो को ।

विवेचन—अवधिज्ञान स्वरूप और प्रकार—इन्द्रियो और मन की सहायता के विना आत्मा को अवधि-मर्यादा मे होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है । जहाँ प्राणी कर्मों के वशीभूत होते हैं अर्थात् जन्म लेते हैं, वह है भव अर्थात् नारक आदि सम्बन्धी जन्म । भव जिसका कारण हो, वह भवप्रत्ययिक है । अवधिज्ञानावरणीय कर्म के उदयावलिका मे प्रविष्ट अश

१ (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा ५, पृ ७७५-७७८

का वेदन होकर पृथक् हो जाना क्षय है और जो उदयावस्था को प्राप्त नहीं है, उसके विपाकोदय को दूर कर देना—स्थगित कर देना, उपशम कहलाता है। जिस अवधिज्ञान में क्षयोपशम ही मुख्य कारण हो, वह क्षयोपशम-प्रत्यय या क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहलाता है।[1]

किसे कौन-सा अवधिज्ञान और क्यों ?—भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान चारों जाति के देवों को तथा रत्नप्रभा आदि सातों नरकभूमियों के नारकों को होता है। प्रश्न होता है कि अवधिज्ञान क्षायोपशमिक भाव में है और नारकादि भव औदयिक भाव में हैं, ऐसी स्थिति में देवों और नारकों को अवधिज्ञान कैसे हो सकता है ? इसका समाधान यह है कि वस्तुतः भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान भी क्षायोपशमिक ही है, किन्तु वह क्षयोपशम देव और नारक भव का निमित्त मिलने पर अवश्यम्भावी होता है। जैसे—पक्षीभव में आकाशगमन की लब्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार देवभव और नारकभव का निमित्त मिलते ही देवों और नारकों को अवधिज्ञान की उपलब्धि अवश्यमेव हो जाती है।

दो प्रकार के प्राणियों का अवधिज्ञान क्षायोपशमिक अर्थात्—क्षयोपशम-निमित्तक है, वह है—मनुष्यों और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों को। इन दोनों को अवधिज्ञान अवश्यम्भावी नहीं है, क्योंकि मनुष्य-भव और तिर्यञ्चभव के निमित्त से इन दोनों का अवधिज्ञान नहीं होता, बल्कि मनुष्यों या तिर्यञ्च-पंचेन्द्रियों में भी जिनके अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो जाए, उन्हें ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। इसे कर्मग्रन्थ की भाषा में गुणप्रत्यय भी कहते हैं। यद्यपि पूर्वोक्त दोनों प्रकार के अवधिज्ञान क्षायोपशमिक ही हैं, तथापि पूर्वोक्त निमित्तभिन्नता के कारण दोनों में अन्तर है।[2]

द्वितीय अवधि-विषय द्वार

१९८३ णेरइया णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अद्धगाउयं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

[१९८३ प्र.] भगवन् ! नैरयिक अवधि (ज्ञान) द्वारा कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं ?

[१९८३ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः आधा गाऊ (गव्यूति) और उत्कृष्टतः चार गाऊ (क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं।

१९८४ रयणप्पभापुढविणेरइया णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अद्धुट्ठाइं गाउयाइं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

[१९८४ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक अवधि (ज्ञान) से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

[१९८४ उ.] गौतम ! वे जघन्य साढे तीन गाऊ और उत्कृष्ट चार गाऊ (क्षेत्र) अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ७८०
(ख) पण्णवणासुत्तं भा. २ (प्रस्तावना) पृ. १४०-१४१

२ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ७८० से ७८४ तक

१९८५ सक्करप्पभापुढविणेरइया जहण्णेण तिण्णि गाउआइ, उक्कोसेण अद्धुट्ठाइ गाउआइ ओहिणा जाणति पासति ।

[१९८५] शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक जघन्य तीन गाऊ और उत्कृष्ट साढे तीन गाऊ (क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते देखते हैं ।

१९८६ वालुयप्पभापुढविणेरइया जहण्णेण अड्ढाइज्जाइ गाउयाइ, उक्कोसेण तिण्णि गाउआइ ओहिणा जाणति पासति ।

[१९८६] बालुकाप्रभापृथ्वी के नारक जघन्य ढाई गाऊ और उत्कृष्ट तीन गाऊ (क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं ।

१९८७ पकप्पभापुढविणेरइया जहण्णेण दोण्णि गाउयाइ, उक्कोसेण अड्ढाइज्जाइ गाउआइ ओहिणा जाणति पासति ।

[१९८७] पकप्रभापृथ्वी के नारक जघन्य दो गाऊ और उत्कृष्ट ढाई गाऊ (प्रमाण क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं ।

१९८८ धूमप्पभापुढविणेरइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दिवड्ढ गाउअ, उक्कोसेण दो गाउआइ ओहिणा जाणति पासति ।

[१९८८ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नारक अवधि (ज्ञान) से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

[१९८८ उ] गौतम ! वे जघन्य डेढ गाऊ और उत्कृष्ट दो गाऊ (क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं ।

१९८९ तमापुढवि० ?

गोयमा ! जहण्णेण गाउय, उक्कोसेण दिवड्ढ गाउय ओहिणा जाणति पासति ।

[१९८९ प्र] भगवन् ! तम प्रभापृथ्वी के नारक अवधि (ज्ञान) से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

[१९८९ उ] गौतम ! वे जघन्य एक गाऊ और उत्कृष्ट डेढ गाऊ (क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते देखते है ।

१९९० अहेसत्तमाए पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अद्धगाउय, उक्कोसेण गाउय ओहिणा जाणति पासति ।

[१९९० प्र] भगवन् ! अध सप्तम (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी के नैरयिक कितने क्षेत्र को अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं ?

[१९९० उ] गौतम ! वे जघन्य आधा गाऊ और उत्कृष्ट एक गाऊ (क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं।

१९९१ असुरकुमारा णं भंते ! ओहिणा केवतियं खेत्तं जाणंति पासंति ?

गोयमा। जहण्णेणं पणुवीसं जोयणाइं, उक्कोसेणं असंखेज्जे दीव समुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति।

[१९९१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारदेव अवधि (ज्ञान) से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

[१९९१ उ] गौतम ! वे जघन्य पच्चीस योजन और उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप-समुद्रों (पर्यन्त क्षेत्र) को अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं।

१९९२ णागकुमारा णं जहण्णेणं पणुवीसं जोयणाइं, उक्कोसेणं संखेज्जे दीव-समुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति।

[१९९२] नागकुमारदेव जघन्य पच्चीस योजन और उत्कृष्ट संख्यात द्वीप-समुद्रों (पर्यन्त क्षेत्र) को अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं।

१९९३ एवं जाव थणियकुमारा।

[१९९३] इसी प्रकार (सुपर्णकुमार से लेकर) स्तनितकुमार पर्यन्त की (अवधिज्ञान से जानने-देखने की जघन्य उत्कृष्ट सीमा का कथन करना चाहिए।)

१९९४ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं असंखेज्जे दीव समुद्दे।

[१९९४ प्र] भगवन् ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव अवधि (ज्ञान) से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

[१९९४ उ] गौतम ! वे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते हैं।

१९९५ मणूसा णं भंते ! ओहिणा केवतियं खेत्तं जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोए लोयपमाण-मेत्ताइं खंडाइं ओहिणा पासंति।

[१९९५ प्र] भगवन् ! मनुष्य अवधि (ज्ञान) द्वारा कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं ?

[१९९५ उ] गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और उत्कृष्ट अलोक में लोक प्रमाण असंख्यात खण्डों को अवधि (ज्ञान) द्वारा जानते देखते हैं।

१९९६ वाणमंतरा जहा णागकुमारा (सु १९९२)।

[१९९६] वाणव्यन्तर देवों की जानने-देखने की क्षेत्र सीमा (सू १९९२ में उक्त) नागकुमार देवों के समान जाननी चाहिए।

१९९७ जोइसिया ण भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ।

गोयमा ! जहण्णेणं संखेज्जे दीव-समुद्दे, उक्कोसेण वि संखिज्जे दीव-समुद्दे ।

[१९९७ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्कदेव कितने क्षेत्र को अवधि (ज्ञान) द्वारा जानते देखते हैं ?

[१९९७ उ] गौतम ! वे जघन्य भी संख्यात द्वीप-समुद्रों को तथा उत्कृष्ट भी संख्यात द्वीप समुद्रों (पर्याप्त-क्षेत्र) को (अवधिज्ञान से जानते-देखते है ।)

१९९८ सोहम्मगदेवा णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग, उक्कोसेण अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीव-समुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति ।

[१९९८ प्र] भगवन् ! सौधर्मदेव कितने क्षेत्र को अवधि (ज्ञान) द्वारा जानते-देखते हैं ?

[१९९८ उ] गौतम ! वे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भागक्षेत्र को और उत्कृष्टतः नीचे इस रत्नप्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त तक, तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों (तक) और ऊपर अपने-अपने विमानों तक (के क्षेत्र) को अवधि (ज्ञान) द्वारा जानते-देखते है ।

१९९९ एवं ईसाणगदेवा वि ।

[१९९९] इसी प्रकार ईशानकदेवों के विषय में भी (कहना चाहिए ।)

२००० सणंकुमारदेवा वि एवं चेव । णवरं अहे जाव दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ।

[२०००] सनत्कुमार देवा की भी (अवधिज्ञानविषयक क्षेत्रमर्यादा) इसी प्रकार (पूर्ववत्) समझना चाहिए । किन्तु विशेष यह है कि ये नीचे दूसरी शर्कराप्रभा (नरक-) पृथ्वी के निचले चरमान्त तक जानते-देखते हैं ।

२००१ एवं माहिंदगदेवा वि ।

[२००१] माहेन्द्रदेवा के विषय में भी इसी प्रकार (क्षेत्रमर्यादा समझनी चाहिए ।)

२००२. बंभलोग-लंतगदेवा तच्चाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ।

[२००२] ब्रह्मलोक और लान्तकदेव (नीचे) तीसरी (बालुका-)पृथ्वी के निचले चरमान्त तक जानते देखते हैं । शेष सब पूर्ववत् ।

२००३ महासुक्क-सहस्सारगदेवा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ।

[२००३] महाशुक्र और सहस्रारदेव (नीचे) चौथी पंकप्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त (तक जानते-देखते हैं ।)

२००४ आणय-पाणय आरण-अच्चुयदेवा अहे जाव पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ।

[२००४] आनत, प्राणत, आरण अच्युत देव नीचे पाँचवी धूमप्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त पर्यन्त जानते-देखते हैं ।

२००५ हेट्ठिम-मज्झिमगेवेज्जगदेवा अहे छट्ठाए तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ?

[२००५] निचले और मध्यम ग्रैवेयकदेव नीचे छठी तम प्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त (पर्यन्त क्षेत्र को जानते-देखते हैं।)

२००६ उवरिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं अहेसत्तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीव समुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

[२००६ प्र] भगवन् ! उपरिम ग्रैवेयकदेव अवधि (ज्ञान) से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं ?

[२००६ उ] गौतम ! वे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट नीचे *अध सप्तमपृथ्वी के निचले चरमान्त (पर्यन्त), तिरछे यावत् असंख्यात द्वीप-समुद्रों को तथा ऊपर* अपने विमानों तक (के क्षेत्र को) अवधि (ज्ञान) से जानते देखते हैं।

२००७ अणुत्तरोववाइयदेवा णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति।

गोयमा ! संभिन्नं लोगणालिं ओहिणा जाणंति पासंति।

[२००७ प्र] भगवन् ! अनुत्तरौपपातिकदेव अवधि (ज्ञान) द्वारा कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं ?

[२००७ उ] गौतम ! वे सम्पूर्ण (सम्भिन्न) (चौदह रज्जू-प्रमाण) लोकनाडी को अवधि (ज्ञान) से जानते-देखते हैं।

विवेचन—विभिन्न जीवों की अवधिज्ञान से जानने-देखने की क्षेत्रमर्यादा—अवधिज्ञान के योग्य समस्त नारकों, देवों, मनुष्यों तथा पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों की अवधिज्ञान द्वारा जानने-देखने की क्षेत्रमर्यादा सू. १९८३ से २००७ तक में बताई गई है।

इसे सुगमता से समझने के लिए निम्नलिखित तालिका देखिए—

क्रम	अवधिज्ञानयोग्य जीवों के नाम	जानने-देखने की जघन्य क्षेत्रसीमा	उत्कृष्ट क्षेत्रसीमा
१	समुच्चय नारक	आधा गाऊ	चार गाऊ
२	रत्नप्रभापृथ्वीनारक	साढ़े तीन गाऊ	चार गाऊ
३	शर्कराप्रभापृथ्वीनारक	तीन गाऊ	साढ़े तीन गाऊ
४	बालुकाप्रभापृथ्वीनारक	ढाई गाऊ	तीन गाऊ
५	पंकप्रभापृथ्वीनारक	दो गाऊ	ढाई गाऊ
६	धूमप्रभापृथ्वीनारक	डेढ़ गाऊ	दो गाऊ

क्रम	अवधिज्ञान योग्य जीवो के नाम	जानने-देखने की जघन्य क्षेत्रसीमा	उत्कृष्ट क्षेत्रसीमा
७	तम प्रभापृथ्वीनारक	एक गाऊ	डेढ गाऊ
८	तमस्तमःप्रभापृथ्वीनारक	आधा गाऊ	एक गाऊ
९	असुरकुमार देव	पच्चीस योजन	असख्यात द्वीप-समुद्र
१०	नागकुमारदेव	" "	सख्यात द्वीप समुद्र
११	सुपर्णकुमार से स्तनितकुमार तक के देव	" "	" "
१२	तिर्यञ्चपचेन्द्रिय	अगुल के असख्यातवें भाग	असख्यात द्वीप-समुद्र
१३	मनुष्य	" "	अलोक में लोकप्रमाण असख्यात खण्ड (परमावधि की अपेक्षा से)
१४	वाणव्यन्तर	पच्चीस योजन	सख्यात द्वीप-समुद्र
१५	ज्योतिष्कदेव	सख्यात द्वीप-समुद्र	" "
१६	सौधर्मदेव	अगुल के असख्यातवें भाग (उपपात के समय पूर्वभव सम्बन्धी सब जघन्य अवधि की अपेक्षा से)	नीचे रत्नप्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त तक, तिरछे असख्यात द्वीप-समुद्र तक, ऊपर अपने विमानो तक
१७	ईशानदेव	" "	सौधर्मवत्
१८	सनत्कुमारदेव	" "	नीचे शर्कराप्रभा के निचले चरमान्त तक, शेष सब सौधर्मवत्
१९	माहेन्द्रदेव	" "	सनत्कुमारवत्
२०	ब्रह्मलोक और लान्तकदेव	" "	नीचे तीसरी पृथ्वी के निचले चरमान्त तक, शेष सब सौधर्मवत्
२१	महाशुक्र, सहस्रारदेव	" "	नीचे चौथी पकप्रभा के निचले चरमान्त तक, शेष सौधर्मवत्
२२	आनत, प्राणत, आरण, अच्युत	" "	नीचे पचमी धूमप्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त तक, शेष पूर्ववत्
२३	अधस्तन, मध्यम ग्रैवेयकदेव	" "	नीचे छठी तम प्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त तक, शेष सौधर्मवत्
२४	उपरिम ग्रैवेयकदेव	" "	नीचे सातवीं नरक के निचले चरमान्त तक, तिरछे और ऊपर सौधर्मवत्[1]
२५	अनुत्तरोपपातिकदेव	सम्पूर्ण लोकनाडी	

१ (क) पण्णवणासुत्तं भा १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ४१५ से ४१७ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५ पृ ७९० से ८०१ तक

तृतीय अवधिज्ञान का सस्थानद्वार

२००८ णेरइयाण भते ! ओही किसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! तप्पागारसठिए पण्णत्ते ।

[२००८ प्र] भगवन् ! नारकों का अवधि (ज्ञान) किस आकार (सस्थान) वाला बताया गया है ?

[२००८ उ] गौतम ! वह तप्र के आकार का कहा गया है ।

२००९ [१] असुरकुमाराण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! पल्लगसठिए ।

[२००९-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारा का अवधि (ज्ञान) किस प्रकार का बताया गया है ?

[२००९-१ उ] गौतम ! वह पल्लक के आकार का बताया गया है ।

[२] एव जाव थणियकुमाराण ।

[२००९-२] इसी प्रकार (नागकुमारों से लेकर) स्तनितकुमारा तक के अवधि सस्थान के विषय मे जानना चाहिए ।

२०१० पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! णाणासठाणसठिए पण्णत्ते ।

[२०१० प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का अवधि (ज्ञान)किस आकार का कहा गया है ?

[२०१० उ] गौतम ! वह नाना आकारों वाला कहा गया है ।

२०११ एव मणूसाण वि ।

[२०११] इसी प्रकार मनुष्यो के अवधि-सस्थान के विषय मे जानना चाहिए ।

२११२ वाणमतराण पच्छा ।

गोयमा ! पडहसठाणसठिए पण्णत्ते ।

[२०१२ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवो का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है ?

[२०१२ उ] गौतम ! वह पटह के आकार का कहा गया है ।

२०१३ जोतिसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! झल्लरिसठाणसठिए पण्णत्त ।

[२०१३ प्र] ज्योतिष्कदेवो के अवधिसस्थान के विषय में पूर्ववत प्रश्न है ।

[२०१३ उ] गौतम ! वह झालर के आकार का कहा गया है ।

२०१४ [१] सोहम्मगदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! उड्ढमुइगागारसठिए पण्णत्ते ।

[२०१४-१ प्र] भगवन् ! सौधमदेवों के अवधि-सस्थान के विषय मे पूर्ववत् पृच्छा है ।

[२०१४-१ उ] गौतम ! वह ऊर्ध्व-मृदग के आकार का कहा है ।

[२] एव जाव अच्चुयदेवाण पुच्छा ।

[२०१४-२] इसी प्रकार यावत् अच्युतदेवो तक के अवधिज्ञान के आकार के विषय मे प्रश्नोत्तर समझना चाहिए ।

२०१५ गेवेज्जगदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! पुप्फचगेरिसठिए पण्णत्ते ।

[२०१५ प्र] भगवन् ! ग्रैवेयकदेवो के अवधिज्ञान का आकार कैसा है ?

[२०१५ उ] गौतम ! वह फूलो की चगेरी (छबडी या टोकरी) के आकार का है ।

२०१६ अणुत्तरोववाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जवणालियासठिए ओही पण्णत्ते ।

[२०१६ प्र] भगवन् ! अनुत्तरौपपातिकदेवो के अवधिज्ञान का आकार कैसा है ?

[२०१६ उ] गौतम ! उनका अवधिज्ञान यवनालिका के आकार का कहा गया है ।

विवेचन—जीवों के अवधिज्ञान के विविध आकार—नारको का तप्राकार, भवनवासी देवो का पल्लकाकार, पचेन्द्रियतियञ्चो और मनुष्यो का नाना आकार का व्यन्तरदेवो का पटहाकार का, ज्योतिष्कदेवो का झालर के आकार का, सौधमकल्प से अच्युतकल्प के देवो का उध्वमदगाकार का ग्रैवेयकदेवो का पुष्पचगेरी के आकार का और अनुत्तरौपपातिकदेवो का यवनालिका के आकार का अवधिज्ञान है । वस्तुत अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र का आकार उपचार से अवधि का आकार कहा जाता है ।

कठिन शब्दो का अर्थ—तप्र—नदी के वेग मे बहता हुआ, दूर से लाया हुआ लम्बा और तिकोना काष्ठविशेष अथवा लम्बी और तिकोनी नौका । पल्लक—लाढदेश मे प्रसिद्ध धान भरने का एक पात्रविशेष, जो ऊपर और नीचे की ओर लम्बा, ऊपर कुछ सिकुडा हुआ, कोठी के आकार का, होता है । पटह—ढोल (एक प्रकार का बाजा), झल्लरी—झालर, एक प्रकार का बाजा, जो गोलाकार होता है, इसे ढपली भी कहते हैं । उर्ध्व मदग—ऊपर को उठा हुआ मृदग जो नीचे विस्तीर्ण और ऊपर सक्षिप्त होता है । पुष्पचगेरी—फूलो की चगरी, सूत से गूँथे हुए फूलों की शिखायुक्त चगेरी । चगेरी टोकरी या छबडी को भी कहते हैं ।

अवधिज्ञान के कारण का फलितार्थ यह है कि भवनवासी और वाणव्यन्तरदेवों का अवधिज्ञान ऊपर की ओर अधिक होता है और वैमानिको का नीचे की ओर अधिक होता है । ज्योतिष्को और नारको का तिरछा तथा मनुष्यो और तियञ्चो का विविध प्रकार का होता है ।

पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो का अवधिज्ञान—जैसे स्वयम्भूरमणसमुद्र मे मत्स्य नाना आकार के होते हैं, वसे ही तियञ्चपचेन्द्रियो एव मनुष्यो मे नाना आकार का होता है । वलयाकार भी होता है ।[1]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भाग १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ४१७-४१८

(ख) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ८०६ स ८१० तक

चतुर्थ अवधि-आभ्यन्तर-बाह्यद्वार

१०१९ णेरइया ण भंते ! ओहिस्स किं अतो बाहिं ?

गोयमा ! अतो, नो बाहिं ।

[२०१७ प्र] भगवन् ! क्या नारक अवधि (ज्ञान) के अन्दर होते हैं, अथवा बाहर होते हैं ?

[२०१७ उ] गौतम ! वे (अवधि के) अन्दर (मध्य में रहने वाले) होते हैं, बाहर नही ।

२०१८ एव जाव थणियकुमारा ।

[२०१८ प्र] इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए ।

२०१९ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! णो अतो, बाहिं ।

[२०१९ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतियञ्च अवधि के अन्दर होते हैं, अथवा बाहर होते हैं ?

[२०१९ उ] गौतम ! वे अन्दर नही होते, बाहर होते हैं ।

२०२० मणूसाण पुच्छा ।

गोयमा ! अतो वि बाहिं पि ।

[२०२० प्र] भगवन् ! मनुष्य अवधिज्ञान के अन्दर होते हैं या बाहर होते हैं ?

[२०२० उ] गौतम ! वे अन्दर भी होते हैं और बाहर भी होते हैं ।

२०२१ वाणमतर-जोइसिय वेमाणियाण जहा जहा णेरइयाण (सु २०१७) ।

[२०२१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो का कथन (सू २०१७ में उक्त) नैरयिकों के समान है ।

विवेचन—आभ्यन्तरावधि और बाह्यावधि स्वरूप और व्याख्या—जो अवधिज्ञान सभी दिशाओं में अपने प्रकाश्य क्षेत्र को प्रकाशित करता है तथा अवधिज्ञानी जिस अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र के भीतर ही रहता है, वह आभ्यन्तरावधि कहलाता है । इससे जो विपरीत हो, वह बाह्यावधि कहलाता है । बाह्य अवधि अन्तगत और मध्यगत के भेद से दो प्रकार है । जो अन्तगत हो अर्थात्—आत्मप्रदेशों के पर्यन्त भाग में स्थित (गत) हो वह अन्तगत अवधि कहलाता है । कोई अवधिज्ञान जब उत्पन्न होता है तब वह स्पर्द्धक के रूप में उत्पन्न होता है । स्पर्द्धक उसे कहते हैं, जो गवाक्ष जाल आदि से बाहर निकलने वाली दीपक-प्रभा के समान नियत विच्छेद विशेषरूप है । वे स्पर्द्धक एक जीव के सख्यात और असख्यात तथा नाना प्रकार के होते हैं । उनमें से पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशों में सामने पीछे, अधोभाग या ऊपरी भाग में उत्पन्न होता हुआ अवधिज्ञान आत्मा के पर्यन्त में स्थित हो जाता है, इस कारण वह अन्तगत कहलाता है । अथवा औदारिकशरीर के अन्त में जो गत—स्थित हो, वह अन्तगत कहलाता है, क्योंकि वह औदारिकशरीर की अपेक्षा से कदाचित् एक दिशा में जानता है । अथवा समस्त आत्मप्रदेशों में क्षयोपशम होने पर भी जो अवधिज्ञान औदारिकशरीर के अन्त में मानो किसी एक दिशा में जाना जाता है, वह अन्तगत अवधिज्ञान कहलाता है । अन्तगत अवधि तीन प्रकार का होता है—(१) पुरत , (२) पृष्ठत , (३) पार्श्वत । मध्यगत अवधि उसे कहते हैं जो आत्मप्रदेशों

के मध्य मे गत—स्थित हो। अर्थात् जिसकी स्थिति आत्मप्रदेशों के मध्य मे हो, अथवा समस्त आत्म-प्रदेशो मे जानने का क्षयोपशम होने पर भी जिसके द्वारा औदारिकशरीर के मध्यभाग से जाना जाए वह भी मध्यगत कहलाता है। साराश यह है कि जब अवधिज्ञान के द्वारा प्रकाशित क्षेत्र अवधिज्ञानी के साथ सम्बद्ध होता है, तब वह आभ्यन्तर-अवधि कहलाता है तथा जब अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र अवधिज्ञानी से सम्बद्ध नही रहता, तब वह बाह्यावधि कहलाता है।[1]

नारक और समस्त जाति के देव भवस्वभाव के कारण अवधिज्ञान के अन्त—मध्य मे ही रहने वाले होते हैं, बहिर्वर्ती नही होते। उनका अवधिज्ञान सभी ओर के क्षेत्र को प्रकाशित करता है, इसलिए वे अवधि के मध्य मे ही होते हैं। पचेन्द्रियतिर्यञ्च तथाविध भवस्वभाव के कारण अवधि के अन्दर नही होते, बाहर होते हैं। उनका अवधिस्पर्द्धकरूप होता है जो बीच-बीच मे छोडकर प्रकाश करता है, मनुष्य अवधि के मध्यवर्ती भी होते हैं, बहिर्वर्ती भी।[2]

पचम देशावधि-सर्वावधिद्वार

२०२२ णेरइया ण भते ! किं देसोही सव्वोही ?

गोयमा ! देसोही, णो सव्वोही।

[२०२२ प्र] भगवन् ! नारको का अवधिज्ञान देशावधि होता है अथवा सर्वावधि होता है ?

[२०२२ उ] गौतम ! उनका अवधिज्ञान देशावधि होता है, सर्वावधि नही होता है।

२०२३ एव जाव थणियकुमाराण।

[२०२३] इसी प्रकार (का कथन) स्तनितकुमारो तक के विषय मे (समझना चाहिए।)

२०२४ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! देसोही, णो सव्वोही।

[२०२४ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का अवधि देशावधि होता है या सर्वावधि होता है ?

[२०२४ उ] गौतम ! वह देशावधि होता है, सर्वावधि नही होता है।

२०२५ मणूसाण पुच्छा।

गोयमा ! देसोही वि सव्वोही वि।

[२०२५ प्र] भगवन् ! मनुष्यो का अवधिज्ञान देशावधि होता है या सर्वावधि होता है ?

[२०२५ उ] गौतम ! उनका अवधिज्ञान देशावधि भी होता है, सर्वावधि भी होता है।

२०२६ वाणमतर-जोतिसिय वेमाणियाण जहा णेरइयाण (सु २०२२)।

[२०२६] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो का (अवधि भी) (सू २०२२ मे उक्त) नारको के समान (देशावधि होता है।)

विवेचन—देशावधि और सर्वावधि स्वरूप एव विश्लेषण—अवधिज्ञान तीन प्रकार का होता है—सवजघन्य, मध्यम और सर्वोत्कृष्ट। इनमे से सवजघन्य और मध्यम अवधि को देशावधि कहते हैं

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ ७७३ से ७७५ तक

२ वही, भा ५, पृ ८१० से ८१२ तक

और सर्वोत्कृष्ट अवधि को परमावधि या सर्वावधि कहते हैं। सर्वजघन्य अवधिज्ञान द्रव्य की अपेक्षा तैजसवर्गणा और भाषावर्गणा के अपान्तरालवर्ती द्रव्यों को, क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग को, काल की अपेक्षा आवलिका के असंख्यातवें भाग अतीत और अनागत काल को जानता है। यद्यपि अवधिज्ञान रूपी पदार्थों को जानता है, इसलिए क्षेत्र और काल अमूर्त होने के कारण उनको साक्षात् ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि वे अरूपी हैं, तथापि उपचार से क्षेत्र और काल में जो रूपी द्रव्य होते हैं, उन्हें जानता है तथा भाव से अनन्त पर्यायों को जानता है। द्रव्य अनन्त होते हैं, अतः कम से कम प्रत्येक द्रव्य के रूप, रस, गन्ध और स्पर्श रूप चार पर्यायों को जानता है। यह हुआ सर्वजघन्य अवधिज्ञान। इससे आगे पुनः प्रदेशों की वृद्धि से, काल की वृद्धि से, पर्यायों की वृद्धि से बढ़ता हुआ अवधिज्ञान मध्यम कहलाता है। जब तक सर्वोत्कृष्ट अवधिज्ञान न हो जाए, तब तक मध्यम का ही रूप समझना चाहिए। सर्वोत्कृष्ट अवधिज्ञान द्रव्य की अपेक्षा समस्त रूपी द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र की अपेक्षा सम्पूर्ण लोक को और अलोक में लोकप्रमाण असंख्यात खण्डों को जानता है, काल की अपेक्षा असंख्यात अतीत और अनागत उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों को जानता है तथा भाव की अपेक्षा अनन्त पर्यायों को जानता है, क्योंकि वह प्रत्येक द्रव्य की संख्यात असंख्यात पर्यायों को जानता है।[1]

छठा-सातवाँ अवधि-क्षय-वृद्धि आदि द्वार

२०२७ णेरइयाणं भंते ! ओही किं आणुगामिए अणाणुगामिए वड्ढमाणए हायमाणए पडिवाई अपडिवाई अवट्ठिए अणवट्ठिए ?

गोयमा ! आणुगामिए, णो अणाणुगामिए णो वड्ढमाणए णो हायमाणए णो पडिवाई, अपडिवाती अवट्ठिए, णो अणवट्ठिए।

[२०२७ प्र.] भगवन् ! नारकों का अवधि (ज्ञान) क्या आनुगामिक होता है, अनानुगामिक होता है, वर्द्धमान होता है, हीयमान होता है, प्रतिपाती होता है, अप्रतिपाती होता है, अवस्थित होता है, अथवा अनवस्थित होता है ?

[२०२७ उ.] गौतम ! वह आनुगामिक है, किन्तु अनानुगामिक, वर्धमान, हीयमान, प्रतिपाती और अनवस्थित नहीं होता, अप्रतिपाती और अवस्थित होता है।

२०२८ एवं जाव थणियकुमाराणं।

[२०२८] इसी प्रकार (असुरकुमारों से लेकर) स्तनितकुमारों तक के विषय में जानना चाहिए।

२०२९ पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! आणुगामिए वि जाव अणवट्ठिए वि।

[२०२९ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों का अवधि (ज्ञान) आनुगामिक होता है ?, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है।

[२०२९ उ.] गौतम ! वह आनुगामिक भी होता है, यावत् अनवस्थित भी होता

---

1 प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ७७६ से ७७७ तक

२०३० एवं मणूसाण वि।

[२०३०] इसी प्रकार मनुष्यो के अवधिज्ञान के विषय मे समझ लेना चाहिए।

२०३१ वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियाण जहा णेरइयाण (सु २०२७)।

[२०३१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो (के अवधिज्ञान) की वक्तव्यता (सू २०२७ मे उक्त) नारको के समान जाननी चाहिए।

॥ पण्णवणाए भगवतीए तेत्तीसइम ओहिपयं समत्त ॥

विवेचन—आनुगामिक आदि पदों के लक्षण—(१) आनुगामिक (अनुगामी)—जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्तिक्षेत्र को छोड कर दूसरे स्थान पर चले जाने पर भी अवधिज्ञानी के साथ विद्यमान रहता है, उसे आनुगामिक कहते हैं, अर्थात् जिस स्थान पर जिस जीव मे यह अवधिज्ञान प्रकट होता है, वह जीव उस स्थान के चारो ओर सख्यात-असख्यात योजन तक देखता है,इसी प्रकार उस जीव के दूसरे स्थान पर चले जाने पर भी वह उतने क्षेत्र को जानता-देखता है, वह आनुगामिक कहलाता है **(२) अनानुगामिक (अननुगामी)**—जो साथ न चले, किन्तु जिस स्थान पर अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ, उसी स्थान मे स्थित होकर पदार्थों को जाने, उत्पत्तिस्थान को छोड देने पर न जाने, उसे अनानुगामिक कहते है। तात्पय यह है कि अपने ही स्थान पर अवस्थित रहने वाला अवधिज्ञान अनानुगामी कहलाता है। **(३) वधमान**—जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के समय अल्पविषय वाला हो और परिणामविशुद्धि के साथ प्रशस्त, प्रशस्ततर अध्यवसाय के कारण द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा को लिए बढे अर्थात् अधिकाधिक विषय वाला हो जाता है, वह 'वधमान' कहलाता है। **(४) हीयमान**—जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के समय अधिक विषय वाला होने पर भी परिणामो की अशुद्धि के कारण क्रमश अल्प, अल्पतर और अल्पतम विषय वाला हो जाए, उसे हीयमान कहते हैं। **(५) प्रतिपाती**—इसका अथ पतन होना, गिरना या समाप्त हो जाना है। जगमगाते दीपक के वायु के झोके से एकाएक बुझ जाने के समान जो अवधिज्ञान सहसा लुप्त हो जाता है उसे प्रतिपाती कहते हैं। यह अवधिज्ञान जीवन के किसी भी क्षण मे उत्पन्न और लुप्त भी हो सकता है। **(६) अप्रतिपाती**—जिस अवधिज्ञान का स्वभाव पतनशील नही है, उसे अप्रतिपाती कहते हैं। केवलज्ञान होने पर भी अप्रतिपाती अवधिज्ञान नही जाता, क्योकि वहाँ अवधिज्ञानावरण का उदय नहीं होता, जिससे जाए, अपितु वह केवलज्ञान मे समाविष्ट हो जाता है। केवलज्ञान के समक्ष उसकी सत्ता अकिंचित्कर है। जसे कि सूय के समक्ष दीपक का प्रकाश। यह अप्रतिपाती अवधिज्ञान बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवो के अन्तिम समय मे होता है और उसके बाद तेरहवाँ गुणस्थान प्राप्त होने के प्रथम समय के साथ केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इस अप्रतिपाती अवधिज्ञान को परमावधिज्ञान भी कहते हैं। हीयमान और प्रतिपाती मे अन्तर यह है कि हीयमान का तो पूर्वापेक्षया धीरे-धीरे ह्रास हो जाता है, जबकि प्रतिपाती दीपक की तरह एक ही क्षण मे नष्ट हो जाता है। **(७) अवस्थित**—जो अवधिज्ञान जन्मान्तर होने पर भी आत्मा मे अवस्थित रहता है या केवलज्ञान की उत्पत्तिपर्यन्त ठहरता है, वह अवस्थित अवधिज्ञान कहलाता है। **(८) अनवस्थित**—जल की तरग के समान जो अवधिज्ञान कभी घटता है, कभी बढता है, कभी आविर्भूत हो जाता है और कभी तिरोहित हो जाता

है, उसे अनवस्थित कहते हैं। ये दोनों भेद प्रायः प्रतिपाती और अप्रतिपाती के समान लक्षण वाले हैं, किन्तु नाममात्र का भेद होने से दोनों को अपेक्षाकृत पृथक्-पृथक् बताया है।[1]

निष्कर्ष—नारकों तथा चारों जाति के देवों का अवधिज्ञान आनुगामिक, अप्रतिपाती और अवस्थित होता है। तिर्यञ्चपचेन्द्रियों और मनुष्यों का अवधि पूर्वोक्त आठ ही प्रकार का होता है।[2]

॥ प्रज्ञापना भगवती का तेतीसवाँ अवधिपद समाप्त ॥

---

१ कर्मग्रन्थ भाग १ (मरुधरकेसरीव्याख्या) भा. १, पृ. ४८ से ५१

२ पण्णवणासुत्त भा. १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ. ४१८

चउतीसइमं परियारणापयं

चौतीसवाँ परिचारणापद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह चौतीसवाँ परिचारणापद है। इसके बदले किसी-किसी प्रति मे प्रविचारणा शब्द मिलता है, जो तत्त्वार्थसूत्र[1] के 'प्रवीचार' शब्द का मूल है। इसलिए परिचारणा अथवा प्रवीचार दोनो शब्द एकार्थक हैं।
- कठोपनिषद् मे भी 'परिचार' शब्द का प्रयोग मिलता है।
- प्रवीचार या परिचारणा दोनो शब्दो का अर्थ मैथुनसेवन, इन्द्रियो का कामभोग, कामक्रीडा, रति, विषयभोग आदि किया गया है।
- भारतीय साधको ने विशेषत जैनतीर्थंकरो ने देवो को मनुष्य जितना महत्त्व नही दिया है। देव मनुष्यो से भोगविलास मे, वैषयिक सुखो मे आगे बढे हुए अवश्य हैं तथा मनमाना रूप बनाने मे दक्ष हैं, किन्तु मनुष्यजन्म को सबसे बढकर माना है, क्योकि विषयो एव कषायो से मुक्ति मनुष्यजन्म मे ही, मनुष्ययोनि मे ही सम्भव है। 'माणुस खु दुल्लह' कह कर भगवान् महावीर ने इसकी दुर्लभता का प्रतिपादन यत्र-तत्र किया है। यही कारण है कि मनुष्यजीवन की महत्ता बताने के लिए देवजीवन मे विषयभोगो की उत्कृष्टता तथा नौ ग्रैवेयको एव पाच अनुत्तरविमानो के देवो के अतिरिक्त अन्य देवो मे विषयभोगो की तीव्रता का स्पष्टत प्रतिपादन किया गया है। देवजीवन मे उच्चकोटि के देवो को छोडकर अन्य देव इन्द्रिय-विषयभोगो का त्याग कर ही नही सकते। उच्चकोटि के वैमानिक देव भले ही परिचाररहित और देवीरहित हो, किन्तु वे ब्रह्मचारी नही कहला सकते, क्योकि उनमे चारित्र के परिणाम नही होते। जबकि मनुष्यजीवन मे महाव्रती—सर्वविरतिसाधक बनकर मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी अथवा अणुव्रती बन कर मर्यादित ब्रह्मचारी हो सकता है।
- इस पद मे देवो की परिचारणा का विविध पहलुओ से प्रतिपादन है।
- यद्यपि प्रारम्भ मे आहारसम्बन्धी वक्तव्यता होने से सहसा यह प्रतीत होता है कि आहारसम्बन्धी यह वक्तव्यता आहारपद मे देनी चाहिए थी, परन्तु गहराई से समीक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि आहारसम्बन्धी वक्तव्यता यहाँ सकारण है। इसका कारण यह है कि परिचारणा या मैथुनसेवन का मूल आधार शरीर है, शरीर से सम्बन्धित स्पर्श, रूप, शब्द, मन, अगोपाग, इन्द्रियाँ, शारीरिक लावण्य, सौष्ठव, चापल्य या वर्ण आदि हैं। इसीलिए शास्त्रकार ने सर्वप्रथम

---

१ 'कायप्रवीचारा आ ऐशानात्' शेषा स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा द्वयोर्द्वयो ।—तत्त्वार्थसूत्र ४।८, ९
प्रवीचारो-मैथुनोपसेवनम् ।—सर्वार्थसिद्धि ४।७

शरीरनिर्माण की प्रक्रिया से इस पद को प्रारम्भ किया है। चौवीस दण्डकवर्ती जीव उत्पत्ति के प्रथम समय मे आहार[1] लेने लगता है। तदनन्तर उसके शरीर की निष्पत्ति होती है। चारो ओर से पुद्गलो का ग्रहण होकर शरीर, इन्द्रियादि के रूप मे परिणमन होता है। इन्द्रियाँ जब आहार से पुष्ट होती हैं तो उद्दीप्त होने पर जीव परिचारणा करता है, फिर विक्रिया करता है। देवों मे पहले विक्रिया है फिर परिचारणा है। एकेन्द्रिया तथा विकलेन्द्रियो मे परिचारणा है, विक्रिया नही होती है। परिचारणा मे शब्दादि सभी विषयो का उपभोग होने लगता है।

- आहार की चर्चा के पश्चात् आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित आहार का उल्लेख किया है। प्रस्तुत मे आभोगनिर्वर्तित का अर्थ वृत्तिकार ने किया है—

  'मन प्रणिधानपूर्वकमाहार गृण्हन्ति' अर्थात् मनोयोगपूर्वक जो आहार ग्रहण किया जाए। अनाभोगनिर्वर्तित आहार का अर्थ है—इसके विपरीत जो आहार मनोयोगपूर्वक न किया गया हो। जसे एकेन्द्रियो के मनोद्रव्यलब्धि पटु नही है, इसलिए उनके पटुतर आभोग (मनोयोग) नही होता।[2] परन्तु यहाँ रसनेन्द्रिय वाले प्राणी के मुख होने से उसे खाने की इच्छा होती है इसलिए एकेन्द्रिय मे अनाभोगनिर्वर्तित आहार माना गया है। एकेन्द्रिय के सिवाय सभी जीव आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित दोनो प्रकार का आहार लेते हैं।

- इसके पश्चात् ग्रहण किये हुए आहार्यपुद्गलो को कौन जीव जानता-देखता है, कौन नही? इसकी चर्चा है।

- 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि' इस सूक्ति के अनुसार आहार का अध्यवसाय के साथ सम्बन्ध होने से यहाँ आहार के बाद अध्यवसायस्थानो की चर्चा की गई है। चौवीस दण्डको मे प्रशस्त और अप्रशस्त अध्यवसायस्थान असख्यात प्रकार के होते हैं। परिचारणा के साथ स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध का निकट सम्बन्ध है। यही कारण है कि षट्खण्डागम मे कर्म के स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध के अध्यवसायस्थानो की विस्तृत चर्चा है।

- इसके पश्चात् चौवीस दण्डको मे सम्यक्त्वाभिगामी, मिथ्यात्वाभिगामी और सम्यग्-मिथ्यात्वाभिगामी की चर्चा है। परिचारणा के सन्दर्भ मे यह प्रतिपादन किया गया है, इससे प्रतीत होता है कि सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी का परिचारणा के परिणामों पर पृथक्-पृथक् असर पड़ता है। सम्यक्त्वी द्वारा की गई परिचारणा और मिथ्यात्वी द्वारा की गई परिचारणा मे भावो मे रात-दिन का अन्तर होगा, तदनुसार कर्मबन्ध मे भी अन्तर पड़ेगा।[3]

- यहाँ तक परिचारणा की पृष्ठभूमि के रूप मे पाच द्वार शास्त्रकार ने प्रतिपादित किये हैं—

---

१ पण्णवणासुत्त (प्रस्तावना) भा २, पृ १४५

२ (क) पण्णवणासुत्तं भा २ (प्रस्तावना-परिशिष्ट) पृ १४५
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५४५
(ग) पण्णवणासुत्त भा २ (मू पा टि) पृ १४६

३ (क) पण्णवणासुत्त भा २ (प्रस्तावना) पृ १४६-१४७
(ख) पण्णवणासुत्त भा १ (मू पा टि) पृ १४६

(१) अनन्तराहारद्वार, (२) आहाराभोगद्वार, (३) पुद्गलज्ञानद्वार, (४) अध्यवसानद्वार और (५) सम्यक्त्वाभिगमद्वार ।

✤ इसके पश्चात् छठा परिचारणाद्वार प्रारम्भ होता है । परिचारणा को शास्त्रकार ने चार पहलुओ से प्रतिपादित किया है—(१) देवो के सम्बन्ध मे परिचारणा की दृष्टि से निम्नलिखित तीन विकल्प सम्भव हैं, चौथा विकल्प सम्भव नही है । (१) सदेवीक सपरिचार देव (२) अदेवीक सपरिचार देव, (३) अदेवीक अपरिचार देव । कोई भी देव सदेवीक हो साथ ही अपरिचार भी हो, ऐसा सम्भव नही । अत उपर्युक्त तीन सम्भावित विकल्पो का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—(१) भवनपति वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान वैमानिक मे देवियाँ होती हैं । इसलिए इनमे कायिकपरिचारणा (देव देवियो का मैथुनसेवन) होती है । (२) सनत्कुमारकल्प से अच्युतकल्प के वैमानिक देवो मे अकेले देव ही होते हैं, देवियाँ नही होती, इसके लिए द्वितीय विकल्प है—उन विमानो मे देवियाँ नही होती, फिर भी परिचारणा होती है । (३) किन्तु नौ ग्रैवेयक और अनुत्तरविमानो मे देवी भी नही होती और वहा के देवो द्वारा परिचारणा भी नही होती । यह तीसरा विकल्प है ।

✤ जिस देवलोक मे देवी नही होती, वहा परिचारणा कैसे होती है ? इसका समाधान करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—(१) सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प मे स्पर्श-परिचारणा, (२) ब्रह्मलोक और लान्तककल्प में रूप-परिचारणा, (३) महाशुक्र और सहस्रारकल्प मे शब्द-परिचारणा, (४) आनत-प्राणत तथा आरण-अच्युतकल्प मे मन परिचारणा होती है ।

✤ कायपरिचारणा तब होती है, जब देवो मे स्वत इच्छा—मन की उत्पत्ति अर्थात् काय-परिचारणा को इच्छा होती है और तब देवियाँ—अप्सराएँ मनोरम मनोज्ञ रूप तथा उत्तर-वैक्रिय शरीर धारण करके उपस्थित होती हैं ।

✤ देवो की कायिक-परिचारणा मनुष्य के कायिक मैथुनसेवन के समान देविया के साथ होती है । शास्त्रकार ने आगे यह भी बताया है कि देवो मे शुक्र-पुद्गल होते हैं, वे उन देवियो मे सक्रमण करके पचेन्द्रियरूप मे परिणत होते है तथा अप्सरा के रूप-लावण्यवर्द्धक भी होते हैं । यहाँ एक विशेष वस्तु ध्यान देने योग्य है कि देव के उस शुक्र से अप्सरा मे गर्भाधान नही होता, क्योंकि देवो के वैक्रियशरीर होता है । उनकी उत्पत्ति गर्भ से नही, किन्तु औपपातिक है ।[१]

✤ जहाँ स्पर्श, रूप एव शब्द से परिचारणा होती है, उन देवलोको मे देविया नही होतीं । किन्तु देवो को जब स्पर्शादि-परिचारणा की इच्छा होती है, तब अप्सराएँ (देवियाँ) विक्रिया करके स्वय उपस्थित होती हैं । वे देवियाँ सहस्रारकल्प तक जाती हैं, यह खासतौर से ध्यान देने योग्य है । फिर वे देव क्रमश (यथायोग्य) स्पर्शादि से ही सन्तुष्टि—तृप्ति अनुभव करते हैं । यही उनकी परिचारणा है । स्पर्शादि से परिचारणा करने वाले देवो के भी शुक्र-विसर्जन होता है ।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५४९
(ख) वही, केवलमेते वैक्रियशरीरान्तगता इति न गर्भाधानहेतव । —पत्र ५५०-५५१

वृत्तिकार ने इस विषय में स्पष्टीकरण किया है कि देव-देवी का कायिक सम्पर्क न होने पर भी दिव्य-प्रभाव के कारण देवी में शुक्र-संक्रमण होता है और उसका परिणमन भी उन देवियों के रूप-लावण्य में वृद्धि करने में होता है।

✥ आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्प में केवल मन—(मन से) परिचारणा होती है। अत उन-उन देवों की परिचारणा की इच्छा होने पर देवियाँ वहाँ उपस्थित नहीं होतीं, किन्तु वे अपने स्थान में रह कर ही मनोरम शृंगार करती हैं, मनोहर रूप बनाती हैं और वे देव अपने स्थान पर रहते हुए ही मन सन्तुष्टि प्राप्त कर लेते हैं, साथ ही अपने स्थान में रही हुई वे देवियाँ भी दिव्य-प्रभाव से अधिकाधिक रूप लावण्यवती बन जाती हैं।[1]

✥ प्रस्तुत पद के अन्तिम सप्तम द्वार में पूर्वोक्त सभी परिचारणाओं की दृष्टि से देवों के अल्प-बहुत्व की विचारणा की गई है। उसमें उत्तरोत्तर वृद्धिगत क्रम इस प्रकार है,—(१) सबसे कम अपरिचारक देव हैं, (२) उनसे संख्यातगुण अधिक मन से परिचारणा करने वाले देव हैं, (३) उनसे असंख्यातगुणा शब्द-परिचारक देव हैं, (४) उनकी अपेक्षा रूप परिचारक देव असंख्यातगुणा हैं, (५) उनसे असंख्यातगुणा स्पर्श-परिचारक देव हैं और (६) इन सबसे कायपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं। उसमें उत्तरोत्तरवृद्धि का विपरीतक्रम परिचारणा में उत्तरोत्तर सुखवृद्धि की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ—सबसे कम सुख कायपरिचारणा में है और फिर उत्तरोत्तर सुखवृद्धि स्पर्श-रूप-शब्द और मन से परिचारणा में है। सबसे अधिक सुख अपरिचारणा वाले देवों में है। वृत्तिकार ने यह रहस्योद्घाटन किया है।[2]

---

१ (क) 'पुद्गल-संक्रमो दिव्यप्रभावाद्वसेय।' —प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५५१
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा. ५
(ग) पण्णवणासुत्त भा. २ (प्रस्तावना-परिशिष्ट) पृ. १४८

२ (क) पण्णवणासुत्त भा. २ (प्रस्तावना-परिशिष्ट) पृ. १४
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ८७१

चउतीसइमं परियारणापयं

चौतीसवाँ परिचारणापद

चौतीसवें पद का अर्थाधिकार-प्ररूपण

२०३२ अणतरागयआहारे १ आहाराभोगणाइ य २ ।
पोग्गला नेव जाणंति ३ अज्झवसाणा य आहिया ४ ॥ २२३ ॥
सम्मत्तस्स अभिगमे ५ तत्तो परियारणा य बोद्धव्वा ६ ।
काए फासे रूवे सद्दे य मणे य अप्पबहु ७ ॥ २२४ ॥

[२०३२ अर्थाधिकारप्ररूपक गाथार्थ] (१) अनन्तरागत आहार, (२) आहाराभोगता आदि (३) पुद्गलों को नहीं जानते, (४) अध्यवसान (५) सम्यक्त्व का अभिगम, (६) काय, स्पर्श, रूप, शब्द और मन से सम्बन्धित परिचारणा और (७) अन्त में काय आदि से परिचारणा करने वालों का अल्पबहुत्व, (इस प्रकार चौतीसवें पद का अर्थाधिकार) समझना चाहिए ॥ २२३-२२४ ॥

विवेचन—चौतीसवें पद में प्रतिपाद्य विषय—प्रस्तुत पद में दो संग्रहणीगाथाओं द्वारा निम्नोक्त विषयों की प्ररूपणा की गई है—(१) सर्वप्रथम नारक आदि अनन्तरागत-आहारक हैं, इस विषय की प्ररूपणा है, (२) तत्पश्चात् उनका आहार आभोगजनित होता है या अनाभोगजनित ?, इत्यादि कथन है। (३) नारकादि जीव आहाररूप में गृहीत पुद्गलों को जानते-देखते हैं या नहीं ? इस विषय में प्रतिपादन है। (४) फिर नारकादि के अध्यवसाय के विषय में कथन है। (५) तत्पश्चात् नारकादि के सम्यक्त्वप्राप्ति का कथन है। (६) शब्दादि विषयोपभोग की वक्तव्यता तथा काय, स्पर्श रूप, शब्द और मन सम्बन्धी परिचारणा का निरूपण है। (७) अन्त में, काय आदि से परिचारणा करने वालों के अल्प-बहुत्व की वक्तव्यता है।[1]

प्रथम अनन्तराहारद्वार

२०३३ णेरइया णं भंते ! अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया ततो परियाइयणया ततो परिणामणया ततो परियारणया ततो पच्छा विउव्वणया ?

हंता गोयमा ! णेरइया णं अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया ततो परियादियणता तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विउव्वणया ।

[२०३३ प्र.] भगवन् ! क्या नारक अनन्तराहारक होते हैं ?, उसके पश्चात् (उनके शरीर की) निष्पत्ति होती है ? फिर पर्यादानता, तदनन्तर परिणामना होती है ? तत्पश्चात् परिचारणा करते हैं ? और तब विकुर्वणा करते हैं ?

---

1. प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५ पृ. ८१७

[२०३३ उ] हाँ, गौतम ! नैरयिक अनन्तराहारक होते हैं, फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है, तत्पश्चात् पर्यादानता और परिणामना होती है, तत्पश्चात् वे परिचारणा करते हैं और तब वे विकुर्वणा करते हैं।

२०३४ [१] असुरकुमारा णं भंते ! अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ विउव्वणया तओ पच्छा परियारणया ?

गोयमा ! असुरकुमारा अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया जाव तओ पच्छा परियारणया।

[२०३४-१ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमार भी अनन्तराहारक होते हैं ? फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है ? फिर वे क्रमशः पर्यादान, परिणामना करते हैं ? और तत्पश्चात् विकुर्वणा और फिर परिचारणा करते हैं ?

[२०३४-१ उ] हाँ, गौतम ! असुरकुमार अनन्तराहारी होते हैं, फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है यावत् फिर वे परिचारणा करते हैं।

[२] एवं जाव थणियकुमारा।

[२०३४-२] इसी प्रकार की वक्तव्यता स्तनितकुमारपर्यन्त कहनी चाहिए।

२०३५ पुढविक्काइया णं भंते ! अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया य तओ परियारणया ततो विउव्वणया ?

हंता गोयमा ! तं चेव जाव परियारणया, णो चेव णं विउव्वणया।

[२०३५ प्र] भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक अनन्तराहारक होते हैं ? फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है। तत्पश्चात् पर्यादानता, परिणामना, फिर परिचारणा और तब क्या विकुर्वणा होती है ?

[२०३५ उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता यावत् परिचारणापर्यन्त पूर्ववत् कहनी चाहिए किन्तु वे विकुर्वणा नहीं करते।

२०३६ एवं जाव चउरिंदिया। णवरं वाउक्काइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा णेरइया (सु. २०३३)।

[२०३६] इसी प्रकार चतुरिन्द्रियपर्यन्त कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि वायुकायिक जीव, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्यों के विषय में (सू. २०३३ में उक्त) नैरयिकों के कथन के समान जानना चाहिए।

२०३७ वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा (सु. २०३४)।

[२०३७] वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिकों की वक्तव्यता असुरकुमारों की वक्तव्यता के समान जाननी चाहिए।

विवेचन—अनन्तराहार से विकुर्वणा तक के क्रम की चर्चा—नारक आदि चौबीस दण्डकवर्ती जीवो के विषय मे प्रथम द्वार मे अनन्तराहार, निष्पत्ति, पर्यादानता, परिणामना, परिचारणा और विकुर्वणा के क्रम की चर्चा की गई है।[1]

अनन्तराहारक आदि का विशेष अर्थ—अनन्तराहारक—उत्पत्ति क्षेत्र मे आने के समय ही आहार करने वाले। निवर्तना—शरीर की निष्पत्ति, पर्यादानता—आहार्य पुद्‌गलो को ग्रहण करना। परिणामना—गृहीत पुद्‌गलो को शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप मे परिणत करना। परिचारणा—यथायोग्य शब्दादि विषयो का उपभोग करना। विकुर्वणा—वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य से विक्रिया करना।

प्रश्न का आशय—यह है कि नारक आदि अनन्तराहारक होते हैं ? अर्थात्—क्या उत्पत्तिक्षेत्र मे पहुँचते ही समय के व्यवधान के बिना ही वे आहार करते हैं ? तत्पश्चात् क्या उनके शरीर की निवर्तना-निष्पत्ति (रचना) होती है ? शरीरनिष्पत्ति के पश्चात् क्या अग-प्रत्यगो द्वारा लोमाहार आदि से पुद्‌गलो का पर्यादान—ग्रहण होता है ? फिर उन गृहीत पुद्‌गलो का शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप मे परिणमन होता है ? परिणमन के बाद इन्द्रिया पुष्ट होने पर क्या वे परिचारणा करते हैं ? अर्थात्—यथायोग्य शब्दादि विषयो का उपभोग होता है ? और फिर क्या वे अपनी वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य से विक्रिया करते हैं ?[2]

उत्तर का साराश—भगवान् द्वारा इस क्रमबद्ध प्रक्रिया का 'हा' मे उत्तर दिया गया है। किन्तु वायुकायिक को छोडकर शेष एकेन्द्रियो एव विकलेन्द्रियो मे विकुर्वणा नही होती, क्योकि ये वैक्रियलब्धि प्राप्त नही कर सकते। दूसरी विशेष बात यह है कि भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको, इन चारो प्रकार के देवो मे विकुर्वणा पहले होती है, परिचारणा बाद मे, जबकि नारको आदि शेष जीवो मे परिचारणा के पश्चात् विकुर्वणा का क्रम है। देवगणो का स्वभाव ही ऐसा है कि विशिष्ट शब्दादि के उपभोग की अभिलाषा होने पर पहले वे अभीष्ट वैक्रिय रूप बनाते हैं, तत्पश्चात् शब्दादि का उपभोग करते हैं, किन्तु नैरयिक आदि जीव शब्दादि उपभोग प्राप्त होने पर हर्षातिरेक से विशिष्टतम शब्दादि के उपभोग की अभिलाषा के कारण विक्रिया करते हैं। इस कारण देवो की वक्तव्यता मे पहले विक्रिया और बाद मे परिचारणा का कथन किया गया है।

द्वितीय आहाराभोगताद्वार

२०३८ णेरइयाण भते ! आहारे किं आभोगणिव्वत्तिए अणाभोगणिव्वत्तिए ?
गोयमा ! आभोगणिव्वत्तिए वि अणाभोगणिव्वत्तिए वि।

[२०३८ प्र] भगवन् ! नैरयिको का आहार आभोग-निर्वर्तित होता है या अनाभोग-निर्वर्तित ?

---

१ पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ४१९
२ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ८२१
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५४४
३ वही, मलयवृत्ति, पत्र ५४४

[२०३८ उ] गौतम ! उनका आहार आभोग-निर्वतित भी होता है और अनाभोगनिर्वतित भी होता है।

२०३९ एवं असुरकुमाराणं जाव वेमाणियाणं। णवरं एगिंदियाणं णो आभोगणिव्वत्तिए, अणाभोगणिव्वत्तिए।

[२०३९] इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् वैमानिकों तक (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि एकेन्द्रिय जीवों का आहार आभोगनिर्वतित नहीं होता, किन्तु अनाभोगनिर्वतित होता है।

विवेचन—आभोगनिर्वतित और अनाभोगनिर्वतित का स्वरूप—यद्यपि आहारपद (२८ वाँ पद) में इन दोनों प्रकार के आहारों की चर्चा की गई है और आहार सम्बन्धी यह चर्चा भी उसी पद में होनी चाहिए थी, परन्तु परिचारणा के पूर्व की प्रक्रिया बताने हेतु आभोग अनाभोगनिर्वतितता की चर्चा की गई है। वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि ने मन प्रणिधानपूर्वक ग्रहण किये जाने वाले आहार को आभोगनिर्वतित कहा है। इसलिए नारक आदि जब मनोयोगपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं, तब वह आभोगनिर्वतित होता है, और जब वे मनोयोग के बिना ही आहार ग्रहण करते हैं, तब अनाभोगनिर्वतित आहार यानी लोमाहार करते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में अत्यन्त अल्प और अपटु मनोद्रव्यलब्धि होती है, इसलिए पटुतम मनोयोग न होने के कारण उनके आभोगनिर्वतित आहार नहीं होता।[1]

तृतीय पुद्गलज्ञानद्वार

२०४० णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं जाणंति पासंति आहारेंति ? उदाहु ण जाणंति ण पासंति आहारेंति ?

गोयमा ! ण जाणंति ण पासंति, आहारेंति।

[२०४० प्र] भगवन् ! नारक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या वे उन्हें जानते हैं, देखते हैं और उनका आहार करते हैं, अथवा नहीं जानते, नहीं देखते हैं किंतु आहार करते हैं ?

[२०४० उ] गौतम ! वे न तो जानते हैं और न देखते हैं किन्तु उनका आहार करते हैं।

२०४१ एवं जाव तेइंदिया।

[२०४१] इसी प्रकार (असुरकुमारादि से लेकर) त्रीन्द्रिय तक (कहना चाहिए।)

२०४२ चउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइया ण जाणंति पासंति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति आहारेंति।

[२०४२ प्र] चतुरिन्द्रियजीव क्या आहार के रूप में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों को जानते-देखते हैं और आहार करते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है।

---

1 प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा. ५, पृ. ८३१-८३२

[२०४२ उ] गौतम ! कई चतुरिन्द्रिय आहायमाण पुद्गलो को नही जानते, किन्तु देखते हैं और आहार करते है, कई चतुरिन्द्रिय न तो जानते हैं, न देखते हैं, किन्तु आहार करते हैं।

२०४३ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइया जाणति पासति आहारेंति १ अत्थेगइया जाणति ण पासति आहारेंति २ अत्थेगइया ण जाणति पासति आहारेंति ३ अत्थेगइया ण जाणति ण पासति आहारेंति ४।

[२०४३ प्र] पचेन्द्रियतिर्यचो के विषय मे (आहार सम्बन्धी) पूर्ववत् प्रश्न है।

[२०४३ उ] गौतम ! कतिपय पचेन्द्रियतियञ्च (आहायमाण पुद्गलो को) जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं १, कतिपय जानते हैं, देखते नही और आहार करते हैं, २, कतिपय जानते नही, देखते है और आहार करते है ३, कई पचेन्द्रियतियञ्च न तो जानते हैं और न ही देखते हैं, किन्तु आहार करते है ४।

२०४४ एव मणूसाण वि।

[२०४४] इसी प्रकार मनुष्यो के विषय मे (जानना चाहिए।)

२०४५ वाणमतर जोतिसिया जहा णेरइया (सु २०४०)।

[२०४५] वाणव्यन्तरो और ज्योतिष्को का कथन नैरयिको के समान (समझना चाहिए।)

२०४६ वेमाणियाण पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइया जाणति पासति आहारेंति १ अत्थेगइया ण जाणति ण पासति आहारेंति २।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति अत्थेगइया जाणति पासति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणति ण पासति आहारेंति ?

गोयमा ! वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा य, एव जहा इदियउद्देसए पढमे भणिय (सु ९९८) तहा भाणियव्व जाव से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति०।

[२०४६ प्र] भगवन् ! वैमानिक देव जिन पुद्गलो को आहार के रूप मे ग्रहण करते हैं, क्या वे उनको जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं ? अथवा वे न जानते हैं, न देखते हैं और आहार करते हैं ?

[२०४६ उ] गौतम ! (१) कई वैमानिक जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं और (२) कई न तो जानते हैं, न देखते हैं, किन्तु आहार करते हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि (१) कई वैमानिक (आहायमाण पुद्गलो को) जानते देखते हैं और आहार करते हैं और (२) कई वैमानिक उन्हें न तो जानते हैं, न देखते हैं किन्तु आहार करते हैं ?

[उ] गौतम ! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—मायीमिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायीसम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। इस प्रकार जैसे (सू ९९८ मे उक्त) प्रथम इन्द्रिय-उद्देशक मे कहा है, वैसे ही यहाँ सब—'इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया है', यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—चौवीसदण्डकवर्ती जीवों द्वारा आहार्यमाण पुद्‌गलों के जानने-देखने पर—यहाँ विचार किया गया है। नीचे एक तालिका दी जा रही है, जिससे आसानी से जाना जा सके—

	जीव	जानते हैं, देखते हैं, आहार करते है	नहीं जानते, न देखते आहार करते हैं
१	नरयिक		
	भवनवासी	— —	" "
	वाणव्यन्तर	— —	" "
	ज्योतिष्क	— —	" "
	एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय	— —	" "
२	चतुरिन्द्रिय जीव	(१) कई जानते, देखते, आहार करते हैं। (२) कई जानते हैं, देखते नहीं, आहार करते हैं।	— —
३	पचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य	(१) कई जानते, देखते व आहार करते हैं। (२) कई जानते हैं, देखते नहीं, आहार करते हैं।	(३) कई जानते नहीं, देखते हैं और आहार करते हैं। (४) न देखते, न जानते और आहार करते हैं।
४	वमानिक देव	(१) कई जानते, देखते और आहार करते हैं।	(२) कई नहीं जानते, नहीं देखते, आहार करते हैं।[1]

स्पष्टीकरण—नैरयिक और भवनवासीदेव एव एकेन्द्रिय आदि जीव जिन पुद्‌गलों का आहार करते हैं, उन्हें नहीं जानते, क्योंकि उनका लोमाहार होने से अत्यन्त सूक्ष्मता के कारण उनके ज्ञान का विषय नहीं होता। वे देखते भी नहीं। क्योंकि वह दर्शन का विषय नहीं होता। अज्ञानी होने के कारण द्वीन्द्रिय सम्यग्ज्ञान से रहित होते हैं, अतएव उन पुद्‌गलों को भी वे नहीं जानते देखते। उनका मति-अज्ञान भी इतना अस्पष्ट होता है कि स्वयं जो प्रक्षेपाहार वे ग्रहण करते हैं, उसे भी नहीं जानते। चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से वे उन पुद्‌गलों को देख भी नहीं सकते।[2]

चतुरिन्द्रिय के दो भग—कोई चतुरिन्द्रिय आहार्यमाण पुद्‌गलों को जानते नहीं, किन्तु देखते हैं, क्योंकि उनके चक्षुरिन्द्रिय होती है और आहार करते हैं। किन्हीं चतुरिन्द्रिय के आँख होते हुए भी अन्धकार के कारण उनके चक्षु काम नहीं करते, अत वे देख नहीं पाते, किन्तु आहार करते हैं। पचेन्द्रियतिर्यञ्चों और मनुष्यों के विषय में आहार्य पुद्‌गलों को जानने देखने के सम्बन्ध में चार भग पाए जाते हैं।[3]

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १ पृ ४२०

२ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५४५

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका सहित) भा ४, पृ ८३३-८३४

(ग) वही भा ४, पृ ८३५ से ८३९

प्रज्ञापना [illegible] पत्र ५४५

प्रक्षेपाहार की दृष्टि से चार भंग—(१) कोई जानते हैं, देखते है और आहार करते हैं। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य प्रक्षेपाहारी होते हैं, इसलिए इनमे जो सम्यग्ज्ञानी होते हैं, वे वस्तु-स्वरूप के ज्ञाता होने के कारण प्रक्षेपाहार को जानते हैं तथा चक्षुरिन्द्रिय होने से देखते भी हैं और आहार करते है। यह प्रथम भंग हुआ। (२) कोई जानते हैं, देखते नही और आहार करते हैं। सम्यग्ज्ञानी होने से कोई-कोई जानते तो है, किन्तु अंधकार आदि के कारण नेत्र के काम न करने से देख नही पाते। यह द्वितीय भंग हुआ। (३) कोई जानते नही हैं, किन्तु देखते हैं और आहार करते हैं। कोई कोई मिथ्याज्ञानी होने से जानते नही हैं, क्योकि उनमे सम्यग्ज्ञान नही होता, किन्तु वे चक्षुरिन्द्रिय के उपयोग से देखते है। यह तृतीय भंग हुआ। (४) कोई जानते भी नही, देखते भी नही, किन्तु आहार करते हैं। कोई मिथ्याज्ञानी होने से जानते नही तथा अंधकार के कारण नेत्रो का व्याघात हो जाने के कारण देखते भी नही पर आहार करते हैं। यह चतुर्थ भंग हुआ।

लोमाहार की अपेक्षा से चार भंग—(१) कोई कोई तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय एवं मनुष्य विशिष्ट अवधिज्ञान के कारण लोमाहार को भी जानते है और विशिष्ट क्षयोपशम होने से इन्द्रियपटुता अति विशुद्ध होने के कारण देखते भी हैं और आहार करते हैं। (२) कोई कोई जानते तो हैं, किन्तु इन्द्रिय-पाटव का अभाव होने से देखते नही है। (३) कोई जानते नही, किन्तु इन्द्रियपाटवयुक्त होने के कारण देखते हैं। (४) कोई मिथ्याज्ञानी होने से अवधिज्ञान के अभाव मे जानते नही और इन्द्रियपाटव का अभाव होने से देखते भी नही पर आहार करते हैं।

वैमानिको मे दो भंग—(१) कोई जानते नही, देखते भी नही, किन्तु आहार करते हैं। जो मायी मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक होते हैं, वे नौ ग्रैवेयक देवो तक पाये जाते हैं, वे अवधिज्ञान से मनोमय आहार के योग्य पुद्गलो को जानते नही हैं, क्योकि उनका विभंगज्ञान उन पुद्गलों को जानने मे समर्थ नही होता और इन्द्रियपटुता के अभाव के कारण चक्षुरिन्द्रिय से वे देख भी नही पाते। (२) जो वैमानिक देव अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक होते हैं, वे भी दो प्रकार के होते हैं—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। इन्हे क्रमश प्रथमसमयोत्पन्न और अप्रथमसमयोत्पन्न भी कह सकते हैं। अनन्तरोपपन्नक नही जानते और नही देखते हैं, क्योकि प्रथम समय मे उत्पन्न होने के कारण उनके अवधिज्ञान का तथा चक्षुरिन्द्रिय का उपयोग नही होता। परम्परोपपन्नको मे भी जो अपर्याप्त होते हैं, वे नही जानते और न ही देखते हैं, क्योकि पर्याप्तियो की अपूर्णता के कारण उनके अवधिज्ञाना-नादि का उपयोग नही लग सकता। पर्याप्तको मे भी जो अनुपयोगवान् होते हैं, वे नही जानते, न ही देखते हैं। जो उपयोग लगाते हैं, वे ही वैमानिक आहार के योग्य पुद्गलों को जानते-देखते हैं और आहार करते है। पाच अनुत्तरविमानवासी देव अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक ही होते है और उनके क्रोधादि कषाय बहुत ही मन्दतर होते हैं, या वे उपशान्तकषायी होते हैं, इसलिए अमायी भी होते है।[1]

चतुर्थ अध्यवसायद्वार

२०४७ णेरइयाण भंते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ४४६
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ८४१

विवेचन—चौवीसदण्डकवर्ती जीवों द्वारा आहार्यमाण पुद्गलों के जानने-देखने पर—यहाँ विचार किया गया है। नीचे एक तालिका दी जा रही है, जिससे आसानी से जाना जा सके—

१	नैरयिक	जानते हैं, देखते हैं, आहार करते हैं	नही जानते, न देखते आहार करते हैं
	भवनवासी	— —	" "
	वाणव्यन्तर	— —	" "
	ज्योतिष्क	— —	" "
	एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय	— —	" "
२	चतुरिन्द्रिय जीव	(१) कई जानते, देखते, आहार करते हैं। (२) कई जानते हैं, देखते नही, आहार करते हैं।	— —
३	पचेन्द्रियतिर्यञ्च मनुष्य	(१) कई जानते, देखते व आहार करते हैं। (२) कई जानते हैं, देखते नही, आहार करते है।	(३) कई जानते नही, देखते हैं और आहार करते हैं। (४) न देखते, न जानते और आहार करते हैं।
४	वमानिक देव	(१) कई जानते, देखते और आहार करते हैं।	(२) कई नही जानत, नही देखते, आहार करते हैं।[1]

स्पष्टीकरण—नैरयिक और भवनवासीदेव एव एकेन्द्रिय आदि जीव जिन पुद्गलो का आहार करते हैं, उन्हे नहीं जानते, क्योकि उनका लोमाहार होने से अत्यन्त सूक्ष्मता के कारण उनके ज्ञान का विषय नही होता। वे देखते भी नही। क्योकि वह दर्शन का विषय नही होता। अज्ञानी होने के कारण द्वीन्द्रिय सम्यग्ज्ञान से रहित होते हैं, अतएव उन पुद्गलो को भी वे नही जानते देखते। उनका मति-अज्ञान भी इतना अस्पष्ट होता है कि स्वय जो प्रक्षेपाहार वे ग्रहण करते हैं, उसे भी नही जानते। चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से वे उन पुद्गलो को देख भी नही सकते।[2]

चतुरिन्द्रिय के दो भग—कोई चतुरिन्द्रिय आहार्यमाण पुदगलो को जानते नही, किन्तु देखते हैं, क्योकि उनके चक्षुरिन्द्रिय होती है और आहार करते हैं। किन्ही चतुरिन्द्रिय के आंख होते हुए भी अन्धकार के कारण उनके चक्षु काम नही करते, अत वे देख नही पाते, किन्तु आहार करत हैं। पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो के विषय में आहार्य पुद्गलो को जानने देखने के सम्बन्ध मे चार भग पाए जाते हैं।[3]

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४२०

२ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५४५
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका सहित) भा ५, पृ ८३३-८३४

३ (क) वही भा ५, पृ ८३५ से ८३९
(ख) प्रज्ञापना मलयगिरिवृत्ति, पत्र ५४५

प्रक्षेपाहार को दृष्टि से चार भंग—(१) कोई जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य प्रक्षेपाहारी होते हैं, इसलिए इनमें जो सम्यग्ज्ञानी होते हैं, वे वस्तु-स्वरूप के ज्ञाता होने के कारण प्रक्षेपाहार को जानते हैं तथा चक्षुरिन्द्रिय होने से देखते भी हैं और आहार करते हैं। यह प्रथम भंग हुआ। (२) कोई जानते हैं, देखते नहीं और आहार करते हैं। सम्यग्ज्ञानी होने से कोई-कोई जानते तो हैं, किन्तु अन्धकार आदि के कारण नेत्र के काम न करने से देख नहीं पाते। यह द्वितीय भंग हुआ। (३) कोई जानते नहीं हैं, किन्तु देखते हैं और आहार करते हैं। कोई कोई मिथ्याज्ञानी होने से जानते नहीं हैं, क्योंकि उनमें सम्यग्ज्ञान नहीं होता, किन्तु वे चक्षुरिन्द्रिय के उपयोग से देखते हैं। यह तृतीय भंग हुआ। (४) कोई जानते भी नहीं, देखते भी नहीं, किन्तु आहार करते हैं। कोई मिथ्याज्ञानी होने से जानते नहीं तथा अन्धकार के कारण नेत्रों का व्याघात हो जाने के कारण देखते भी नहीं पर आहार करते हैं। यह चतुर्थ भंग हुआ।

लोमाहार की अपेक्षा से चार भंग—(१) कोई कोई तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय एवं मनुष्य विशिष्ट अवधिज्ञान के कारण लोमाहार को भी जानते हैं और विशिष्ट क्षयोपशम होने से इन्द्रियपटुता अति विशुद्ध होने के कारण देखते भी हैं और आहार करते हैं। (२) कोई कोई जानते तो हैं, किन्तु इन्द्रिय-पाटव का अभाव होने से देखते नहीं हैं। (३) कोई जानते नहीं, किन्तु इन्द्रियपाटवयुक्त होने के कारण देखते हैं। (४) कोई मिथ्याज्ञानी होने से अवधिज्ञान के अभाव में जानते नहीं और इन्द्रियपाटव का अभाव होने से देखते भी नहीं पर आहार करते हैं।

वैमानिकों में दो भंग—(१) कोई जानते नहीं, देखते भी नहीं, किन्तु आहार करते हैं। जो मायी मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक होते हैं, वे नौ ग्रैवेयक देवों तक पाये जाते हैं, वे अवधिज्ञान से मनोमय आहार के योग्य पुद्गलों को जानते नहीं हैं, क्योंकि उनका विभंगज्ञान उन पुद्गलों को जानने में समर्थ नहीं होता और इन्द्रियपटुता के अभाव के कारण चक्षुरिन्द्रिय से वे देख भी नहीं पाते। (२) जो वैमानिक देव अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक होते हैं, वे भी दो प्रकार के होते हैं—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। इन्हें क्रमशः प्रथमसमयोत्पन्न और अप्रथमसमयोत्पन्न भी कह सकते हैं। अनन्तरोपपन्नक नहीं जानते और नहीं देखते हैं, क्योंकि प्रथम समय में उत्पन्न होने के कारण उनके अवधिज्ञान का तथा चक्षुरिन्द्रिय का उपयोग नहीं होता। परम्परोपपन्नकों में भी जो अपर्याप्त होते हैं, वे नहीं जानते और न ही देखते हैं, क्योंकि पर्याप्तियों की अपूर्णता के कारण उनके अवधिज्ञाना-नादि का उपयोग नहीं लग सकता। पर्याप्तकों में भी जो अनुपयोगवान् होते हैं, वे नहीं जानते, न ही देखते हैं। जो उपयोग लगाते हैं, वे ही वैमानिक आहार के योग्य पुद्गलों को जानते-देखते हैं और आहार करते हैं। पांच अनुत्तरविमानवासी देव अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक ही होते हैं और उनके क्रोधादि कषाय बहुत ही मन्दतर होते हैं, या वे उपशान्तकषायी होते हैं, इसलिए अमायी भी होते हैं।[1]

चतुर्थ अध्यवसायद्वार

२०४७. णेरइयाणं भंते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति पत्र ५४६
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ८४१

ते ण भंते ! किं पसत्था अप्पसत्था ?

गोयमा ! पसत्था वि अप्पसत्था वि ।

[२०४७ प्र] भगवन् ! नारकों के कितने अध्यवसान (अध्यवसाय) कहे गए हैं ?

[२०४७ उ] गौतम ! उनके असंख्येय अध्यवसान कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! (नारकों के) वे अध्यवसान प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे प्रशस्त भी होते हैं, अप्रशस्त भी होते हैं।

२०४८ एवं जाव वेमाणियाणं ।

[२०४८] इसी प्रकार वैमानिकों तक कथन जानना चाहिए।

विवेचन—अध्यवसायद्वार के सम्बन्ध में यत्किंचित्—चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के अध्यवसाय असंख्यात बताए हैं। वे अध्यवसाय प्रशस्त, अप्रशस्त दोनों प्रकार के असंख्यात होते रहते हैं। प्रत्येक समय में पृथक् पृथक् संख्यातीत अध्यवसाय लगातार होते हैं।[1]

पंचम सम्यक्त्वाभिगमद्वार

२०४९ णेरइया णं भंते ! किं सम्मत्ताभिगमी मिच्छत्ताभिगमी सम्मामिच्छत्ताभिगमी ?

गोयमा ! सम्मत्ताभिगमी वि मिच्छत्ताभिगमी वि सम्मामिच्छत्ताभिगमी वि ।

[२०४९] भगवन् ! नारक सम्यक्त्वाभिगमी होते हैं, अथवा मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं, या सम्यग्मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं ?

[२०४९ उ] गौतम ! वे सम्यक्त्वाभिगमी भी हैं, मिथ्यात्वाभिगमी भी हैं और सम्यग्-मिथ्यात्वाभिगमी भी होते हैं।

२०५० एवं जाव वेमाणिया । णवरं एगिंदिय-विगलिंदिया णो सम्मत्ताभिगमी, मिच्छत्ताभिगमी, णो सम्मामिच्छत्ताभिगमी ।

[२०५०] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए। विशे[illegible] और विकलेन्द्रिय केवल मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं, वे न तो सम्यक्त्वाभिग[illegible] सम्यग्मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं।

विवेचन—पंचमद्वार का आशय—प्रस्तुत द्वार में नारक आदि च[illegible] सम्यक्त्वाभिगमी (अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति वाले), मिथ्यात्वाभिगमी [illegible] प्राप्ति वाले) अथवा सम्यग्मिथ्यात्वाभिगमी (अर्थात् मिश्रदृष्टि वाले) हैं, ये [illegible]

एकेन्द्रिय मिथ्याभिगामी ही क्यों ?—एकेन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि नहीं मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। किसी-किसी विकलेन्द्रिय में सास्वादन [illegible] अल्पकालिक होने से यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की गई है, क्योंकि वे [illegible] होते हैं।[2]

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति पत्र ४४६
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५ पृ. ८६१
२ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ८४२
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति पत्र ५४६

छठा परिचारणाद्वार

२०५१ देवा ण भंते ! किं सदेवीया सपरियारा सदेवीया अपरियारा अदेवीया सपरियारा अदेवीया अपरियारा ?

गोयमा ! अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा १ अत्थेगइया देवा अदेवीया सपरियारा २ अत्थेगइया देवा अदेवीया अपरियारा ३ णो चेव ण देवा सदेवीया अपरियारा ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा तं चेव जाव णो चेव ण देवा सदेवीया अपरियारा ?

गोयमा ! भवणवति वाणमंतर-जोतिस सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा सदेवीया सपरियारा, सणकुमार माहिंद-बंभलोग लंतग महासुक्क सहस्सार-आणय-पाणय आरण-अच्चुएसु कप्पेसु देवा अदेवीया सपरियारा, गेवेज्जऽणुत्तरोववाइयदेवा अदेवीया अपरियारा, णो चेव ण देवा सदेवीया अपरियारा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा तं चेव जाव णो चेव ण देवा सदेवीया अपरियारा ।

[२०५१ प्र] भगवन् ! (१) क्या देव देवियों सहित और सपरिचार (परिचारयुक्त) होते हैं ?, (२) अथवा वे देवियोंसहित एवं अपरिचार (परिचाररहित) होते हैं ?, (३) अथवा वे देवीरहित एवं परिचारयुक्त होते हैं ? या (४) देवीरहित एवं परिचाररहित होते हैं ?

[२०५१ उ] गौतम ! (१) कई देव देवियोंसहित सपरिचार होते हैं, (२) कई देव देवियों के बिना सपरिचार होते हैं और (३) कई देव देवीरहित और परिचाररहित होते हैं, किन्तु कोई भी देव देवियों सहित अपरिचार (परिचाररहित) नहीं होते हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि कई देव देवीसहित सपरिचार होते हैं, इत्यादि यावत् देवियों सहित परन्तु अपरिचार नहीं होते।

[उ] गौतम ! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशानकल्प के देव देवियों सहित और परिचारसहित होते हैं। सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्पों में देव, देवीरहित किन्तु परिचारसहित होते हैं। नौ ग्रैवेयक और पंच अनुत्तरौपपातिक देव देवीरहित और परिचाररहित होते हैं। किन्तु ऐसा कदापि नहीं होता कि देव देवीसहित हों, साथ ही परिचार-रहित हों।

२०५२ [१] कतिविहा ण भंते ! परियारणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा—कायपरियारणा १ फासपरियारणा २ रूवपरियारणा ३ सद्दपरियारणा ४ मणपरियारणा ५ ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति पंचविहा परियारणा पण्णत्ता तं जहा—कायपरियारणा जाव मणपरियारणा ?

गोयमा ! भवणवति-वाणमंतर-जोइस सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा, सणकुमार माहिंदेसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा, बंभलोय-लंतगेसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा, महासुक्क सहस्सारेसु देवा सद्दपरियारगा, आणय पाणय-आरण अच्चुएसु कप्पेसु देवा मणपरियारगा, गेवेज्जअणुत्तरोववाइया देवा अपरियारगा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! त चेव जाव मणपरियारगा।

[२०५२-१ प्र] भगवन् ! परिचारणा कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०५२-१ उ] गौतम ! परिचारणा पाच प्रकार की कही गई है। यथा—(१) कायपरिचारणा, (२) स्पर्शपरिचारणा, (३) रूपपरिचारणा, (४) शब्दपरिचारणा और (५) मन परिचारणा।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा गया कि परिचारणा पाच प्रकार की है, यथा—कायपरिचारणा यावत् मन परिचारणा ?

[उ] गौतम ! भवनपति, वाणव्य तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशानकल्प के देव कायपरिचारक होते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प मे देव स्पर्शपरिचारक होते हैं। ब्रह्मलोक और लान्तककल्प मे देव रूपपरिचारक होते हैं।[1] महाशुक्र और सहस्रारकल्प मे देव शब्द-परिचारक होते है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प मे देव मन परिचारक होते हैं। नौ ग्रवेयकों के और पाच अनुत्तरौपपातिक देव अपरिचारक होते हैं। हे गौतम ! इसी कारण से कहा गया है कि यावत् आनत आदि कल्पो के देव मन परिचारक होते हैं।

[२] तत्थ ण जे ते कायपरियारगा देवा तेसि ण इच्छामणे समुप्पज्जइ—इच्छामो ण अच्छराहिं सद्धि कायपरियारण करेत्तए, तए ण तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ ओरालाइ सिंगाराइ मणुण्णाइ मणोहराइ मणोरमाइ उत्तरवेउव्वियाइ रूवाइ विउव्वति, विउव्वित्ता तेसि देवाण अतियं पाउब्भवति, तए ण ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धि कायपरियारण करेंति, से जहाणामए सीया पोग्गला सीय पप्प सीय चेव अतिवतित्ता ण चिट्ठति, उसिणा वा पोग्गला उसिण पप्प उसिण चेव अइवइत्ता ण चिट्ठति एवामेव तेहिं देवेहिं ताहिं अच्छराहिं सद्धि कायपरियारणे कते समाणे से इच्छामणे खिप्पमेवावेति।

अत्थि ण भंते ! तेसि देवाण सुक्कपोग्गला ?

हंता अत्थि।

ते ण भंते तासि अच्छराण कीसत्ताए भुज्जो २ परिणमति ?

गोयमा ! सोइंदियत्ताए चक्खिदियत्ताए घाणिदियत्ताए रसिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए इट्ठत्ताए कंतत्ताए मणुण्णत्ताए मणामत्ताए सुभगत्ताए सोहग्ग रूव-जोव्वण गुणलायण्णत्ताए ते तासि भुज्जो भुज्जो परिणमति।

---

१ 'काय प्रवीचारा आ एशानात्।'
'शेषा स्पर्श रूप शब्द मनःप्रवीचारा द्वयोर्द्वयो।' —तत्त्वार्थ अ ४, सू ८-९

[२०५२-२] उनमे से कायपरिचारक (शरीर से विषयभोग सेवन करने वाले) जो देव हैं, उनके मन में (ऐसी) इच्छा समुत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के शरीर से परिचार (मैथुन) करना चाहते हैं। उन देवों द्वारा इस प्रकार मन से सोचने पर वे अप्सराएँ उदार आभूषणादियुक्त (शृंगार-युक्त), मनोज्ञ, मनोहर एवं मनोरम उत्तरवैक्रिय रूप विक्रिया से बनाती हैं। इस प्रकार विक्रिया करके वे उन देवों के पास आती हैं। तब वे देव उन अप्सराओं के साथ कायपरिचारणा (शरीर से मैथुन-सेवन) करते हैं। जैसे शीत पुद्‌गल शीतयोनि वाले प्राणी को प्राप्त होकर अत्यन्त शीत-अवस्था को प्राप्त करके रहते हैं, अथवा उष्ण पुद्‌गल जैसे उष्णयोनि वाले प्राणी को पाकर अत्यन्त उष्णअवस्था को प्राप्त करके रहते हैं, उसी प्रकार उन देवों द्वारा अप्सराओं के साथ काया से परिचारणा करने पर उनका इच्छामन (इच्छाप्रधान मन) शीघ्र ही हट जाता—तृप्त हो जाता है।

[प्र.] भगवन् ! क्या उन देवों के शुक्र-पुद्‌गल होते हैं ?

[उ.] हाँ (गौतम !) होते हैं।

[प्र.] भगवन् ! उन अप्सराओं के लिए वे किस रूप में बार-बार परिणत होते हैं ?

[उ.] गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियरूप से चक्षुरिन्द्रियरूप से, घ्राणेन्द्रियरूप से, रसेन्द्रियरूप से, स्पर्शेन्द्रियरूप से, इष्टरूप से, कमनीयरूप से, मनोज्ञरूप से, अतिशय मनोज्ञ (मनाम) रूप से, सुभगरूप से, सौभाग्यरूप यौवन-गुण-लावण्यरूप से वे उनके लिए बार-बार परिणत होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते फासपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ, एवं जहेव कायपरियारगा तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

[२०५२-३] उनमें जो स्पर्शपरिचारकदेव हैं, उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है, जिस प्रकार काया से परिचारणा करने वाले देवों की वक्तव्यता कही गई है, उसी प्रकार (यहाँ भी) समग्र वक्तव्यता कहनी चाहिए।

[४] तत्थ णं जे ते रूवपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ—इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेत्तए, तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे तहेव जाव उत्तर-वेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छंति, तेणामेव उवागच्छित्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा ताइं ओरालाइं जाव मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं उवदंसेमाणीओ उवदंसेमाणीओ चिट्ठंति, तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेंति, सेसं तं चेव जाव भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

[२०५२-४] उनमें जो रूपपरिचारक देव हैं, उनके मन में इच्छा समुत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के साथ रूपपरिचारणा करना चाहते हैं। उन देवों द्वारा मन से ऐसा विचार किये जाने पर (वे देवियाँ) उसी प्रकार (पूर्ववत्) यावत् उत्तरवैक्रिय रूप की विक्रिया करती हैं। विक्रिया करके जहाँ वे देव होते हैं, वहाँ जा पहुँचती हैं और फिर उन देवों के न बहुत दूर और न बहुत पास स्थित होकर उन उदार यावत् मनोरम उत्तरवैक्रिय कृत रूपों को दिखलाती-दिखलाती खड़ी रहती हैं। तत्पश्चात् वे देव उन अप्सराओं के साथ रूपपरिचारणा करते हैं। शेष सारा कथन उसी प्रकार (पूर्ववत्) वे बार-बार परिणत होते हैं, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

[५] तत्थ ण जे ते सद्दपरियारगा देवा तेसि ण इच्छामणे समुप्पज्जति—इच्छामो ण अच्छराहि सद्धि सद्दपरियारण करेत्तए, तए ण तेहि देवेहि एव मणसीकए समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियाइ रूवाइ विउव्वति, विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छति, तेणामेव उवागच्छित्ता तेसि देवाण अदूरसामते ठिच्चा अणुत्तराइ उच्चावयाइ सद्दाइ समुदीरेमाणीओ समुदीरेमाणीओ चिट्ठति, तए ण ते देवा ताहि अच्छराहि सद्धि सद्दपरियारण करेंति, सेस त चेव जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति।

[२०५२-५] उनमे जो शब्दपरिचारक देव होते हैं, उनके मन मे इच्छा उत्पन्न होती है कि हम अप्सराओ के साथ शब्दपरिचारणा करना चाहते हैं। उन देवो के द्वारा इस प्रकार मन मे विचार करने पर उसी प्रकार (पूर्ववत) यावत् उत्तरवैक्रिय रूपो की प्रक्रिया करके जहाँ वे देव होते हैं, वहाँ देवियां जा पहुँचती हैं। फिर वे उन देवो के न अति दूर न अति निकट रुककर सर्वोत्कृष्ट उच्च नीच शब्दो का बार-बार उच्चारण करती रहती हैं। इस प्रकार वे देव उन अप्सराओं के साथ शब्दपरिचारणा करते हैं। शेष कथन उसी प्रकार (पूर्ववत्) यावत् बार-बार परिणत होते हैं।

[६] तत्थ ण जे ते मणपरियारगा देवा तेसि इच्छामणे समुप्पज्जइ—इच्छामो ण अच्छराहि सद्धि मणपरियारण करेत्तए, तए ण तहि देवेहि एव मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ तत्थगताओ चेव समाणीओ अणुत्तराइ उच्चावयाइ मणाइ सपहारेमाणीओ सपहारेमाणीओ चिट्ठति, तए ण ते देवा ताहि अच्छराहि सद्धि मणपरियारण करेंति, सेस णिरवसेस त चेव जाव भुज्जो २ परिणमति।

[२०५२-६] उनमे जो मन परिचारक देव होते हैं, उनके मन मे इच्छा उत्पन्न होती है—हम अप्सराओ के साथ मन से परिचारणा करना चाहते हैं। तत्पश्चात् उन देवो के द्वारा मन मे इस प्रकार अभिलाषा करने पर वे अप्सराएँ शीघ्र ही, वही (अपने स्थान पर) रही हुई उत्कृष्ट उच्च-नीच मन को धारण करती हुई रहती हैं। तत्पश्चात् वे देव उन अप्सराओ के साथ मन से परिचारणा करते हैं। शेष सब कथन पूर्ववत् यावत् बार-बार परिणत होते हैं, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

सप्तम अल्पबहुत्वद्वार

२०५३ एतेसि ण भते ! देवाण कायपरियारगाण जाव मणपरियारगाण अपरियारगाण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा देवा अपरियारगा, मणपरियारगा सखेज्जगुणा, सद्दपरियारगा असखेज्जगुणा, रूवपरियारगा असखेज्जगुणा, फासपरियारगा असखेज्जगुणा, कायपरियारगा असखेज्जगुणा।

[२०५३ प्र] भगवन् ! इन कायपरिचारक यावत् मन परिचारक और अपरिचारक देवो मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२०५३ उ] गौतम ! सबसे कम अपरिचारक देव हैं, उनसे सख्यातगुणे मन परिचारक देव

हैं, उनसे असंख्यातगुणे शब्दपरिचारकदेव हैं, उनसे रूपपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं, उनसे स्पर्श-परिचारक देव असंख्यातगुणे हैं और उनसे कायपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं।

॥ पण्णवणाए भगवतीए चउतीसइमं पवियारणापयं समत्तं ॥

विवेचन—विविध पहलुओं से देव परिचारणा पर विचार—प्रस्तुत 'परिचारणा' नामक छठे द्वार में मुख्यतया चार पहलुओं से देवों की परिचारणा पर विचार किया गया है—(१) देव देवियों सहित ही परिचार करते हैं या देवियों के बिना भी? तथा क्या देव अपरिचारक भी होते हैं? (२) परिचारणा के पाँच प्रकार, कौन देव किस प्रकार की परिचारणा करते हैं और कौन देव अपरिचारक हैं? (३) कायपरिचारणा से लेकर मन परिचारणा तक का स्वरूप, तरीका और परिणाम। और अन्त में (४) परिचारक-अपरिचारक देवों का अल्पबहुत्व।[1]

निष्कर्ष—(१) कोई भी देव ऐसा नहीं होता, जो देवियों के साथ रहते हुए परिचाररहित हो, अपितु कतिपय देव देवियों सहित परिचार वाले होते हैं, कई देव देवियों के बिना भी परिचारवाले होते हैं। कुछ देव ऐसे भी होते हैं, जो देवियों और परिचार, दोनों से रहित होते हैं। (२) भवनवासी वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशानकल्प के वैमानिकदेव सदेवीक भी होते हैं और परिचारणा से युक्त भी। अर्थात् देवियाँ वहाँ जन्म लेती हैं। अतः वे देव उन देवियों के साथ रहते हैं और परिचार भी करते हैं। किन्तु सनत्कुमार से लेकर अच्युतकल्प तक के वैमानिक देव देवियों के साथ नहीं रहते, क्योंकि इन देवलोकों में देवियों का जन्म नहीं होता। फिर भी वे परिचारणासहित होते हैं। ये देव सौधर्म और ईशानकल्प में उत्पन्न देवियों के साथ स्पर्श, रूप, शब्द और मन से परिचार करते हैं।

भवनवासी से लेकर ईशानकल्प तक के देव शरीर से परिचारणा करते हैं, सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देव स्पर्श से, ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के देव रूप से, महाशुक्र और सहस्रारकल्प के देव शब्द से और आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प के देव मन से परिचारणा करते हैं। नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तरविमानवासी देव देवियों और परिचारणा दोनों से रहित होते हैं।[2]

उनका पुरुषवेद अतीव मन्द होता है। अतः वे मन से भी परिचारणा नहीं करते।

इस पाठ से यह स्पष्ट है कि मैथुनसेवन केवल कायिक ही नहीं होता, वह स्पर्श, रूप, शब्द और मन से भी होता है।

कायपरिचारक देव काय से परिचारणा मनुष्य नर-नारी की तरह करते हैं, असुरकुमारों से लेकर ईशानकल्प तक के देव संक्लिष्ट उदयवाले पुरुषवेद के वशीभूत होकर मनुष्यों के समान वैषयिक सुख में निमग्न होते हैं और उसी से उन्हें तृप्ति का अनुभव होता है अन्यथा तृप्ति-सन्तुष्टि नहीं होती। स्पर्शपरिचारक देव भोग की अभिलाषा से अपनी समीपवर्तिनी देवियों के स्तन, मुख, नितम्ब आदि का स्पर्श करते हैं और इसी स्पर्शमात्र से उन्हें कायपरिचारणा की अपेक्षा अनन्तगुणित सुख एवं वेदोपशान्ति का अनुभव होता है। रूपपरिचारक देव देवियों के सौन्दर्य कमनीय एवं काम के आधारभूत दिव्य मादकरूप को देखने मात्र से कायपरिचारणा की अपेक्षा अनन्तगुणित वैषयिक

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५ पृ. ८४५ से ८५३
(ख) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ. ४२१ से ४२ तक

२ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५४९

सुखानुभव करते हैं। इतने से ही उनका वेद (काम) उपशान्त हो जाता है। शब्दपरिचारक देवों का विषयभोग शब्द में ही होता है। वे अपनी प्रिय देवांगनाओं के गीत, हास्य, भावभंगीयुक्त मधुर स्वर, आलाप एवं नूपुरों आदि की ध्वनि के श्रवणमात्र से कायिकपरिचारणा की अपेक्षा अनन्तगुणित सुखानुभव करते हैं, उसी से उनका वेद उपशान्त हो जाता है। मन परिचारक देवों का विषयभोग मन से ही हो जाता है। वे कामविकार उत्पन्न होने पर मन से अपनी मनोनीत देवांगनाओं की अभिलाषा करते हैं और उसी से उनकी तृप्ति हो जाती है। कायिकविषयभोग की अपेक्षा उन्हें मानसिकविषयभोग से अनन्तगुणा सुख प्राप्त होता है, वेद भी उपशान्त हो जाता है। अप्रवीचारक नौ ग्रैवेयकों तथा पांच अनुत्तरविमानों के देव अपरिचारक होते हैं। उनका मोहोदय या वेदोदय अत्यन्त मन्द होता है। अतः वे अपने प्रशमसुख में निमग्न रहते हैं। परन्तु चारित्र-परिणाम का अभाव होने से वे ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते।

दो प्रश्न (१) किस प्रकार की तृप्ति ?—देवों को अपने अपने तथाकथित विषयभोग से उसी प्रकार की तृप्ति एवं भोगाभिलाषा निवृत्ति हो जाती है, जिस प्रकार शीतपुद्गल अपने सम्पर्क से शान्तस्वभाव वाले प्राणी के लिए अत्यन्त सुखदायक होते हैं अथवा उष्णपुद्गल उष्णस्वभाव वाले प्राणी को अत्यन्त सुखशान्ति के कारण होते हैं। इसी प्रकार की तृप्ति, सुखानुभूति अथवा विषयाभिलाषानिवृत्ति हो जाती है। आशय यह है कि उन-उन देवों को देवियों के शरीर, स्पर्श, रूप, शब्द और मनोनीत कल्पना का सम्पर्क पाकर आनन्ददायक होते हैं।

(२) कायिक मैथुनसेवन से मनुष्यों की तरह शुक्रपुद्गलों का क्षरण होता है, परन्तु वह वैक्रियशरीरवर्ती होने से गर्भाधान का कारण नहीं होता, किन्तु देवियों के शरीर में उन शुक्रपुद्गलों के संक्रमण से सुख उत्पन्न होता है तथा वे शुक्रपुद्गल देवियों के लिए पांचों इन्द्रियों के रूप में तथा इष्ट, कान्त, मनोज्ञ, मनोहर रूप में तथा सौभाग्य, रूप, यौवन, लावण्य के रूप में बारबार परिणत होते हैं।[1]

कठिन शब्दार्थ—इच्छामणे—दो अर्थ—(१) इच्छाप्रधान मन, (२) मन में इच्छा या अभिलाषा। मणसीकए समाणे—मन करने पर। उच्चावयाइं—दो अर्थ—(१) उच्च तथा नीच—ऊबड-खाबड, (२) न्यूनाधिक—विविध। उवदंसेमाणीओ—दिखलाती हुई। समुदीरेमाणीओ—उच्चारण करती हुई। सिंगाराइं—शृंगारयुक्त। तत्थगताओ चेव समाणीओ—अपने-अपने विमानों में रही हुई। अणुत्तराइं उच्चावयाइं मणाइं संपहारेमाणीओ चिट्ठंति—उत्कट सन्तोष उत्पन्न करनेवाले एवं विषय में आसक्त, अश्लील कामोद्दीपक मन करती हुई।[2]

॥ प्रज्ञापना भगवती का चौतीसवाँ पद सम्पूर्ण ॥

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ८५३-८५४

२ वही भा. ५, पृ. ८५४ से ८६८ तक

पणतीसइमं वेयणापयं

पैंतीसवाँ वेदनापद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र के वेदनापद मे ससारी जीवो को अनुभूत होने वाली सात प्रकार की वेदनाओ की चौबीस दण्डक के माध्यम से प्ररूपणा की गई है।

- इस ससार मे जब तक जीव छद्मस्थ है, तब तक विविध प्रकार की अनुभूतियाँ होती रहती है। इन अनुभूतियो का मुख्य केन्द्र मन है। मन पर विविध प्रकार की वेदनाएँ अकित होती रहती हैं। वह जिस रूप मे जिस वेदना को ग्रहण करता है, उसी रूप मे उसकी प्रतिध्वनि अनुभूति के रूप मे व्यक्त होती है। यही कारण है कि शास्त्रकार ने इस पद म विविध निमित्तो से मन पर अकित होने वाली विविध वेदनाओ का दिग्दर्शन कराया है।

- वेदना के विभिन्न अर्थ मिलते हैं। यथा—ज्ञान, सुख दु खादि का अनुभव, पीडा, दु ख, सताप, रोगादिजनित वेदना, कर्मफल-भोग, साता-असातारूप अनुभव, उदयावलिकाप्रविष्ट कर्म का अनुभव आदि।[1]

- इन सभी अर्थों के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत पद मे वेदना-सम्बन्धी सात द्वार प्रस्तुत किये गए हैं, जिनमे विविध वेदनाओ का निरूपण है।

- वे सात द्वार इस प्रकार है—(१) प्रथम शीतवेदनाद्वार है, जिसमे शीत, उष्ण और शीतोष्ण वेदना का निरूपण है, (२) द्वितीय द्रव्यद्वार है, जिसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से होने वाली वेदना का निरूपण है, (३) तृतीय शरीरवेदनाद्वार है, जिसमे शारीरिक, मानसिक और शारीरिक-मानसिक वेदना का वर्णन है, (४) चतुर्थ सातावेदनाद्वार है, जिसमे साता असाता और साता असाता वेदना का निरूपण है, (५) पचम दु खवेदनाद्वार है, इसमे दु खरूप, सुखरूप तथा दु ख-सुखरूप वेदना का प्रतिपादन है, (६) छठा आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकीवेदनाद्वार है, जिसमे इन दोनो प्रकार की वेदनाओ का निरूपण है तथा (७) सातवाँ निदा अनिदावेदनाद्वार है, जिसमे इन दोनो प्रकार की वेदनाओ की प्ररूपणा है।[2]

- इसके पश्चात यह बताया गया है कि कौनसी वेदना किस-किस जीव को होती है और किसको नही ? यथा—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा असज्ञीपचेन्द्रिय जीव मानसवेदना से रहित होते हैं। शेष सभी द्वारो मे वेदना का अनुभव सभी ससारी जीवो को होता है।

---

१ (क) पाइअसद्दमहण्णवो, पृ ७७६
(ख) अभि रा कोष, भा ६, पृ १४३८

२ पण्णवणासुत्त भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४२४

❖ इन सात द्वारों में से छठे और सातवें द्वार की वेदनाएँ जानने योग्य हैं। जो वेदनाएँ सुखपूर्वक स्वेच्छा से स्वीकार की जाती हैं, यथा—केशलोचादि, वे आभ्युपगमिकी होती हैं, किन्तु जो वेदनाएँ कर्मों की उदीरणा द्वारा वेदनीयकर्म का उदय होने से होती हैं, वे औपक्रमिकी हैं। ये दोनों वेदनाएँ कर्मों से सम्बन्धित हैं। सातवें द्वार में निदा अनिदा दो प्रकार की वेदना का निरूपण है। जिसमें चित्त पूर्णरूप से लग जाए या जिसका ध्यान भलीभांति रखा जाए, उसे निदा और इससे विपरीत जिसकी ओर चित्त बिलकुल न हो, उसे अनिदा वेदना कहते हैं। अथवा *चित्तवती—सम्यक् विवेकवती वेदना निदा है, इसके विपरीत वेदना अनिदा है।* वस्तुतः इन दोनों वेदनाओं का सम्बन्ध आगे चलकर क्रमशः संज्ञी और असंज्ञी से जोड़ा गया है। निदावेदना का फलितार्थ वृत्तिकार ने यह बताया है कि पूर्वभव-सम्बन्धी शुभाशुभ कर्म, वैरविरोध या विषयों का स्मरण करने में असंज्ञी जीव का चित्त कुशल नहीं होता। जबकि संज्ञीभूत जीव का चित्त कुशल होता है। इसलिए असंज्ञी जीवों के अनिदा और संज्ञी जीवों के निदावेदना अनुभव के आधार पर होती है। इसी तरह एक रहस्य यह भी बताया गया है कि जो जीव मायीमिथ्यादृष्टि हैं, वे अनिदा और अमायीसम्यग्दृष्टि निदा वेदना भोगते हैं।

❖ कुछ स्पष्टीकरण—(१) शीतोष्ण वेदना का उपयोग (अनुभव) क्रमिक होता है अथवा युगपत्? इसका समाधान वृत्तिकार ने किया है कि वस्तुतः उपयोग क्रमिक ही है, परन्तु शीघ्र संचार के कारण अनुभव करने में क्रम प्रतीत नहीं होता है। (२) इसी प्रकार शीतोष्ण आदि वेदना समझनी चाहिए। इसी प्रकार अदुःखा असुखा वेदना को सुखसंज्ञा अथवा दुःखसंज्ञा नहीं दी जा सकती। इसी तरह शारीरिक-मानसिक संज्ञा, साता असाता, सुख-दुःख, इत्यादि के विषय में समझ लेना चाहिए। (३) साता असाता और सुख-दुःख इन दोनों में क्या अन्तर है? इसका उत्तर वृत्तिकार ने यह दिया है कि वेदनीयकर्म के पुद्गलों का क्रमप्राप्त उदय होने से जो वेदना हो, वह साता-असाता है। परन्तु जब दूसरा कोई उदीरणा करे तथा उससे साता असाता का अनुभव हो, उसे सुख-दुःख कहते हैं।[1]

❖ षट्खण्डागम में 'बज्झमाणिया वेयणा, उदिण्णा वेयणा, उवसंता वेयणा', इन तीनों का उल्लेख है।

१ (क) पण्णवणासुत्तं, भा. २ (प्रस्तावना), पृ. १५०
(ख) प्रज्ञापना. म. वृत्ति पत्र ५५७

पणतीसइमं वेयणापयं

पंतीसवाँ वेदनापद

पंतीसवें पद का अर्थाधिकार प्ररूपण

२०५४ सीता १ य दव्व २ सारीर ३ सात ४ तह वेदणा हवति दुक्खा ५ ।
अब्भुवगमोवक्कमिया ६ णिदा य अणिदा य ७ णायव्वा ॥ २२५ ॥
सातमसात सव्वे सुह च दुक्ख अदुक्खमसुह च ।
माणसरहिय विगलिंदिया उ सेसा दुविहमेव ॥ २२६ ॥

[२०५४ सग्रहणी-गाथार्थ] (पंतीसवें वेदनापद के) सात द्वार (इस प्रकार) समझने चाहिए—(१) शीत, (२) द्रव्य, (३) शरीर, (४) साता, (५) दु खरूप वेदना, (६) आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना तथा (७) निदा और अनिदा वेदना ॥ २२५ ॥

साता और असाता वेदना सभी जीव (वेदते हैं ।) इसी प्रकार सुख, दु ख और अदु ख-असुख वेदना भी (सभी जीव वेदते हैं ।) विकलेन्द्रिय मानस वेदना से रहित हैं । शेष सभी जीव दोनो प्रकार की वेदना वेदते ह ॥ २२६ ॥

विवेचन—सात द्वारो का स्पष्टीकरण—(१)सर्वप्रथम शीतवेदनाद्वार है, च शब्द से उष्णवेदना और शीतोष्णवेदना भी कही जाएगी, (२) द्वितीय द्रव्यद्वार है, जिसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से वेदना का निरूपण है । (३) तृतीय शरीरवेदनाद्वार है, जिसमे शारीरिक, मानसिक और शारीर-मानसिक वेदना का वर्णन है, (४) चतुर्थ सातावेदनाद्वार है, जिसमे साता, असाता और साता-असाता उभयरूप वेदना का निरूपण है, (५) पचम दु खवेदनाद्वार है, जिसमे दु खरूप, सुखरूप और अदु ख-असुखरूप वेदना का प्रतिपादन है, (६) छठा आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकीवेदनाद्वार है, जिसमे इन दोनो वेदनाओ का वणन है और (७) सप्तम निदा-अनिदावेदनाद्वार है, जिसमे इन दोनो प्रकार की वेदनाओ के सम्बन्ध मे प्ररूपणा है ।[1]

कौन-सा जीव किस-किस वेदना से युक्त ?—द्वितीय गाथा मे बताया है कि सभी जीव साता-असाता एव साता-असाता वेदना से युक्त हैं। इसी प्रकार सभी जीव सुखरूप, दु खरूप या अदु ख असुखरूप वेदना वेदते हैं । विकलेन्द्रिय तथा असज्ञीपचेन्द्रिय जीव मानसवेदना से रहित(मनोहीन) वेदना वेदते हैं । शेप जीव दोनो प्रकार की अर्थात्—शारीरिक और मानसिक वेदना वेदते (भोगते) हैं ।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५ पृ ८७४-८७५
(ख) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ ४२४

२ (क) वही, पृ २२४
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भाग ५, पृ ८७३-७४

प्रथम : शीतादि-वेदनाद्वार

२०५५ कतिविहा ण भंते ! वेदणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा वेदणा पण्णत्ता । त जहा—सीता १ उसिणा २ सीतोसिणा ३ ।

[२०५५ प्र] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०५५ उ] गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही है यथा—(१) शीतवेदना, (२) उष्णवेदना और (३) शीतोष्णवेदना ।

२०५६ णेरइया ण भंते ! कि सीत वेदण वेदेंति, उसिण वेदण वेदेंति, सीतोसिण वेदण वेदेंति ?

गोयमा ! सीय पि वेदण वेदेंति उसिण पि वेदण वेदेंति, णो सीतोसिण वेदण वेदेंति ।

[२०५६ प्र] भगवन् ! नरयिक शीतवेदना वेदते हैं, उष्णवेदना वेदते हैं, या शीतोष्णवेदना वेदते है ?

[२०५६ उ] गौतम ! (नरयिक) शीतवेदना भी वेदते हैं और उष्णवेदना भी वेदते हैं, शीतोष्णवेदना नही वेदते ।

२०५७ [१] केई एक्केक्कीए पुढवीए वेदणाओ भणति—

[२०५७-१] कोई-कोई प्रत्येक (नरक-) पृथ्वी मे वेदनाओ के विषय मे कहते हैं—

[२] रयणप्पभापुढविणेरइया ण भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! णो सीय वेदण वेदेंति, उसिण वेदण वेदेंति, णो सीतोसिण वेदण वेदेंति । एव जाव वालुयप्पभापुढविणेरइया ।

[२०५७-२ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नरयिक शीतवेदना वेदते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है ।

[२०५७ २ उ] गौतम ! वे शीतवेदना नही वेदते और न शीतोष्णवेदना वेदते हैं, किन्तु उष्णवेदना वेदते है । इसी प्रकार वालुकाप्रभा (तृतीय नरकपृथ्वी) के नैरयिको तक कहना चाहिए ।

[३] पकप्पभापुढविणेरइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! सीय पि वेदण वेदेंति, उसिण पि वेदण वेदेंति, णो सीओसिण वेदण वेदेंति । ते बहुयतरागा जे उसिण वेदण वेदेंति, ते थोवतरागा जे सीय वेदण वेदेंति ।

[२०५७-३ प्र] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी के नरयिक शीतवेदना वेदते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है ।

[२०५७-३ उ] गौतम ! वे शीतवेदना भी वेदते हैं और उष्णवेदना भी वेदते हैं, किन्तु शीतोष्णवेदना नही वेदते । वे नारक बहुत हैं जो उष्णवेदना वेदते हैं और वे नारक अल्प हैं जो शीतवेदना वेदते हैं ।

[४] धूमप्पभाए एव चेव दुविहा । नवर ते बहुयतरागा जे सीयं वेदण वेदेंति, ते थोवतरागा जे उसिण वेयण वेदेंति ।

[२०५७-४] धूमप्रभापृथ्वी के (नैरयिको) मे भी दोनो प्रकार की वेदना कहनी चाहिए। विशेष यह है कि इनमे वे नारक बहुत हे, जो शीतवेदना वेदते है तथा वे नारक अल्प ह, जो उष्णवेदना वेदते ह ।

[५] तमाए तमतमाए य सीय वेदण वेदेंति, णो उसिण वेदण वेदेंति, णो सीओसिण वेदण वेदेंति ।

[२०५७-५] तमा और तमस्तमा पृथ्वी के नारक शीतवेदना वेदते हैं, किन्तु उष्णवेदना तथा शीतोष्णवेदना नही वेदते ।

२०५८ असुरकुमाराण पुच्छा ।

गोयमा ! सोय पि वेदण वेदेंति, उसिण पि वेदण वेदेंति, सीतोसिण पि वेदण वेदेंति ।

[२०५८ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के विषय मे (पूर्ववत्) वेदना वेदन सम्बन्धी प्रश्न है ।

[२०५८ उ] गौतम ! वे शीतवेदना भी वेदते ह, उष्णवेदना भी वेदते है और शीतोष्णवेदना भी वेदते हैं ।

२०५९ एव जाव वेमाणिया ।

[२०५९] इसी प्रकार वैमानिको तक (कहना चाहिए) ।

विवेचन—शीतादि त्रिविध वेदना और उनका अनुभव—वेदना एक प्रकार की अनुभूति है, वह तीन प्रकार की है—शीत, उष्ण और शीतोष्ण । शीतल पुद्गलो के सम्पर्क से होने वाली वेदना शीतवेदना, उष्ण पुद्गलो के सयोग से होने वाली वेदना उष्णवेदना और शीतोष्ण पुद्गलो के सयोग से उत्पन्न होने वाली वेदना शीतोष्णवेदना कहलाती है ।[1] सामान्यतया नारक शीत या उष्ण वेदना का अनुभव करते है किन्तु शीतोष्णवेदना का अनुभव नही करते । प्रारम्भ की तीन नरकपृथ्वियो के नारक उष्णवेदना वेदते हैं, क्योकि उनके आधारभूत नारकावास खर के अगारों के समान अत्यन्त लाल, अतिसतप्त एव अत्यन्त उष्ण पुद्गलो के बने हुए हैं । चौथी पकप्रभापृथ्वी मे कोई नारक उष्णवेदना और कोई शीतवेदना का अनुभव करते हैं, क्योकि वहाँ के कोई नारकवास शीत और कोई उष्ण होते हैं । इसलिए वहाँ उष्णवेदना अनुभव करने वाले नारक अत्यधिक हैं, क्योकि उष्णवेदना बहुत अधिक नारकावासो मे होती है, जबकि शीतवेदना वाले नारक अत्यल्प हैं, क्योकि थोड़े-से नारकावासो मे ही शीतवेदना होती है । धूमप्रभापृथ्वी मे कोई नारक शीतवेदना और कोई उष्णवेदना का अनुभव करते ह, किन्तु वहाँ शीतवेदना वाले नारक अत्यधिक हैं और उष्णवेदना वाले नारक स्वल्प हैं, क्योकि वहा अत्यधिक नारकावासो मे शीतवेदना ही होती है, उष्णवेदना वाले नारकावास बहुत ही कम हैं । छठी और सातवी नरकपृथ्विया मे नारक शीतवेदना का ही अनुभव करते हैं, क्योकि वहाँ के सभी नारक उष्ण स्वभाव वाले हैं और नारकावास हैं अत्यधिक शीतल ।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ ८८५-८८६
(ख) प्रज्ञापना म वृत्ति, अ रा कोष, भाग ६, पृ १४३८-३९

असुरकुमारों से लेकर वैमानिकों तक शीत आदि तीनों ही प्रकार की वेदना वेदते हैं। तात्पर्य यह है कि असुरकुमार आदि भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देव शीतल जल से पूर्ण महाह्रद आदि में जब जलक्रीडा आदि करते हैं, तब शीतवेदना वेदते हैं। जब कोई महर्द्धिक देव क्रोध के वशीभूत होकर अत्यन्त विकराल भ्रुकुटि चढा लेता है या मानो प्रज्वलित करता हुआ देख कर मन ही मन संतप्त होता है, तब उष्णवेदना वेदता है। जैसे ईशानेन्द्र ने बलिचंचा राजधानी के निवासी असुरकुमारों को संतप्त कर दिया था अथवा उष्ण पुद्गलों के सम्पर्क से भी वे उष्णवेदना वेदते हैं। जब शरीर के विभिन्न अवयवों में एक साथ शीत और उष्ण पुद्गलों का सम्पर्क होता है, तब वे शीतोष्णवेदना वेदते हैं। पृथ्वीकायिकों से लेकर मनुष्य पर्यन्त बर्फ आदि पड़ने पर शीतवेदना वेदते हैं, अग्नि आदि का सम्पर्क होने पर उष्णवेदना वेदते हैं तथा विभिन्न अवयवों में दोनों प्रकार के पुद्गलों का संयोग होने पर शीतोष्णवेदना वेदते हैं।[1]

द्वितीय द्रव्यादि-वेदनाद्वार

२०६० कतिविहा णं भंते! वेदणा पण्णत्ता?

गोयमा! चउव्विहा वेदणा पण्णत्ता। तं जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावतो।

[२०६० प्र] भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

[२०६० उ] गौतम! वेदना चार प्रकार की कही गई है, यथा—(१) द्रव्यतः, (२) क्षेत्रतः, (३) कालतः और (४) भावतः (वेदना)।

२०६१ णेरइया णं भंते! किं दव्वओ वेदणं वेदेंति जाव किं भावओ वेदणं वेदेंति?

गोयमा! दव्वओ वि वेदणं वेदेंति जाव भावओ वि वेदणं वेदेंति।

[२०६१ प्र] भगवन्! नैरयिक क्या द्रव्यतः वेदना वेदते हैं यावत् भावतः वेदना वेदते हैं?

[२०६१ उ] गौतम! वे द्रव्य से भी वेदना वेदते हैं, क्षेत्र से भी वेदते हैं यावत् भाव से भी वेदना वेदते हैं।

२०६२ एवं जाव वेमाणिया।

[२०६२] इसी प्रकार का कथन वैमानिकों पर्यन्त करना चाहिए।

विवेचन—चतुर्विध वेदना का तात्पर्य—वेदना की उत्पत्ति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप सामग्री के निमित्त से होती है, इसलिए द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से चार प्रकार से वेदना कही है। किसी पुद्गल आदि द्रव्य के संयोग से उत्पन्न होने वाली वेदना द्रव्यवेदना कहलाती है। नारक आदि उपपातक्षेत्र आदि से होने वाली वेदना क्षेत्रवेदना कही जाती है। ऋतु, दिन-रात आदि काल के संयोग से होने वाली वेदना कालवेदना कहलाती है और वेदनीयकर्म के उदयरूप प्रधान कारण से उत्पन्न होने वाली वेदना भाववेदना कहलाती है। चौबीस ही दण्डकों के जीव पूर्वोक्त चारों प्रकार से वेदना का अनुभव करते हैं।[2]

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ.

२ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ.

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भाग ६,

तृतीय शारीरादि-वेदनाद्वार

२०६३ कतिविहा ण भंते ! वेयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा वेदणा पण्णत्ता । तं जहा—सारीरा १ माणसा २ सारीरमाणसा ३ ।

[२०६३ प्र] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०६३ उ] गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है । यथा—१ शारीरिक, २ मानसिक और ३ शारीरिक-मानसिक ।

२०६४ णेरइया णं भंते ! किं सारीरं वेदणं वेदेंति माणसं वेदणं वेदेंति सारीरमाणसं वेदणं वेदेंति ?

गोयमा ! सारीरं पि वेयणं वेदेंति, माणसं पि वेदणं वेदेंति, सारीरमाणसं पि वेदणं वेदेंति ।

[२०६४ प्र] भगवन् ! नैरयिक शारीरिकवेदना वेदते हैं, मानसिकवेदना वेदते हैं अथवा शारीरिक-मानसिकवेदना वेदते है ?

[२०६४ उ] गौतम ! वे शारीरिकवेदना भी वेदते हैं, मानसिकवेदना भी वेदते हैं और शारीरिक-मानसिकवेदना भी वेदते हैं ।

२०६५ एवं जाव वेमाणिया । णवरं एगिंदिय विगलिंदिया सारीरं वेदणं वेदेंति, णो माणसं वेदणं वेदेंति णो सारीरमाणसं वेयणं वेदेंति ।

[२०६५] इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए । विशेष—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय केवल शारीरिकवेदना ही वेदते हैं, किन्तु मानसिकवेदना या शारीरिक-मानसिकवेदना नहीं वेदते ।

विवेचन—प्रकारान्तर से त्रिविध वेदना का स्वरूप—शरीर में होने वाली वेदना शारीरिक-वेदना, मन में होने वाली वेदना मानसिक तथा शरीर और मन दोनों में होने वाली वेदना शारीरिक मानसिकवेदना कहलाती है । एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर शेष समस्त दण्डकवर्ती जीवों से तीनों ही प्रकार की वेदना पाई जाती है । एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में मानसिक और शारीर-मानसवेदना नहीं होती ।[1]

चतुर्थ साताादि-वेदनाद्वार

२०६६ कतिविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा वेयणा पण्णत्ता । तं जहा—साया १ असाया २ सायासाया ३ ।

[२०६६ प्र] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०६६ उ] गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, यथा—(१) साता, (२) असाता और (३) साता-असाता ।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ ८८९

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा ६, पृ १४४०

२०६७ णेरइया ण भंते ! किं सायं वेदणं वेदेंति असायं वेदणं वेदेंति सायासायं वेदणं वेदेंति ?

गोयमा ! तिविहं पि वेयणं वेदेंति ।

[२०६७ प्र.] भगवन् ! नैरयिक क्या सातावेदना वेदते हैं, असातावेदना वेदते हैं, अथवा साता-असातावेदना वेदते हैं ?

[२०६७ उ.] गौतम ! तीनों प्रकार की वेदना वेदते हैं ।

२०६८ एवं सव्वजीवा जाव वेमाणिया ।

[२०६८] इसी प्रकार वैमानिकों तक सभी जीवों की वेदना के विषय में (जानना चाहिए ।)

विवेचन—सातादि त्रिविध वेदना—सुखरूप वेदना को सातावेदना, दुःखरूप वेदना को असातावेदना और सुख-दुःखरूप वेदना को उभयरूप वेदना कहते हैं । नारक से वैमानिकदेव पर्यन्त तीनों प्रकार की वेदना वेदते हैं । नारकजीव तीर्थंकर के जन्मदिवस आदि के अवसर पर साता और अन्य समयों में असाता वेदते हैं । पूर्वसांगतिक देवों या असुरों के मधुर-मधुर आलापरूपी अमृत की वर्षा होने पर मन में सातावेदना और क्षेत्र के प्रभाव से, असुर के कठोर व्यवहार में असातावेदना होती है । इन दोनों की अपेक्षा से साता-असातारूप वेदना होती है । सभी जीवों को त्रिविध वेदना होती है । पृथ्वीकायिक आदि को जब कोई उपद्रव नहीं होता, तब वे सातावेदना का अनुभव करते हैं । उपद्रव होने पर असाता का तथा जब एकदेश से उपद्रव होता है, तब साता-असाता—उभयरूप वेदना का अनुभव होता है । देवों को सुखानुभव के समय सातावेदना, च्यवनादि के समय असातावेदना तथा दूसरे देव के वैभव को देखकर मात्सर्य होने से असातावेदना, साथ ही अपनी प्रिय देवी के साथ मधुरालापादि करते समय सातावेदना, यों दोनों प्रकार की वेदना होती है ।[1]

पंचम दुःखादि-वेदनाद्वार

२०६९ कतिविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा वेयणा पण्णत्ता । तं जहा—दुक्खा सुहा अदुक्खसुहा ।

[२०६९ प्र.] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०६९ उ.] गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, यथा—(१) सुखा, (२) दुःखा और (३) अदुःख-सुखा ।

२०७० णेरइया णं भंते ! किं दुक्खं वेयणं वेदेंति० पुच्छा ।

गोयमा ! दुक्खं पि वेदणं वेदेंति, सुहं पि वेदणं वेदेंति, अदुक्खसुहं पि वेदणं वेदेंति ।

[२०७० प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीव दुःखवेदना वेदते हैं, सुखवेदना वेदते हैं अथवा अदुःख-असुखावेदना वेदते हैं ?

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ. ८९३-८९४

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५५६

[२०७० उ] गौतम ! वे दु खवेदना भी वेदते हैं, सुखवेदना भी वेदते हैं और अदु ख-असुखा-वेदना भी वेदते हैं ।

२०७१ एव जाव वेमाणिया ।

[२०७१] इसी प्रकार वैमानिको पर्यन्त कहना चाहिए ।

विवेचन—दु खादि त्रिविध वेदना का स्वरूप—जिसमे दु ख का वेदन हो वह दु खा, जिसमे सुख का वेदन हो वह सुखा और जिसमे सुख भी विद्यमान हो और जिसे दु खरूप भी न कहा जा सके, ऐसी वदना अदु ख असुखरूपा कहलाती है ।

साता, असाता और सुख, दु ख मे अन्तर—स्वय उदय मे आए हुए वेदनीयकर्म के कारण जो अनुकूल और प्रतिकूल वेदन होता है, उसे क्रमश साता और असाता कहते हैं तथा दूसरे के द्वारा उदीरित (उत्पादित) साता और असाता को सुख और दु ख कहते हैं, यही इन दोनो मे अन्तर है । सभी जीव इन तीनो प्रकार की वेदना को वेदते हैं ।[1]

छठा आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदनाद्वार

२०७२ कतिविहा ण भते ! वेदणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा वेदणा पण्णत्ता । त जहा—अब्भोवगमिया य ओवक्कमिया य ।

[२०७२ प्र] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०७२ उ] गौतम । वेदना दो प्रकार की कही गई है । यथा—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी ।

२०७३ णेरइया ण भते ! किं अब्भोवगमिय वेदण वेदेंति ओवक्कमिय वेदण वेदेंति ?

गोयमा ! णो अब्भोवगमिय वेदण वेदेंति, ओवक्कमिय वेदण वेदेंति ।

[२०७३ प्र] भगवन् ! नैरयिक आभ्युपगमिकी वेदना वेदते हैं या औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं ?

[२०७३ उ] गौतम ! वे आभ्युपगमिकी वेदना नही वेदते, औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं ।

२०७४ एव जाव चउरिंदिया ।

[२०७४] इसी प्रकार चतुरिन्द्रियो तक कहना चाहिए ।

२०७५ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य दुविह पि वेदण वेदेंति ।

[२०७५] पचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य दोनो प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं ।

२०७६ वाणमतर जोइसिय वेमाणिया जहा णेरइया (सु २०७३) ।

[२०७६] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वमानिको के विषय में (सू २०७३ में उक्त) नैरयिको के समान कहना चाहिए ।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ८९३-८९४
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५५७

विवेचन—दो प्रकार की विशिष्ट वेदना स्वरूप और अधिकारी—स्वेच्छापूर्वक अंगीकार की जाने वाली वेदना आभ्युपगमिकी कहलाती है। जैसे—साधुगण केशलोच, तप, आतापना आदि से होने वाली शारीरिक पीडा स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं। जो वेदना स्वयमेव उदय को प्राप्त अथवा उदीरित वेदनीयकर्म से उत्पन्न होती है, वह औपक्रमिकी कहलाती है, जैसे नारक आदि की वेदना।

नारकों से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवो तक की वेदना औपक्रमिकी होती है, इसी तरह वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक की वेदना भी औपक्रमिकी होती है। पचेन्द्रियतिर्यंचो और मनुष्यो की वेदना दोनों ही प्रकार की होती है।[1]

सप्तम निदा-अनिदा-वेदना-द्वार

२०७७ कतिविहा ण भते ! वेवणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा वेयणा पण्णत्ता। त जहा—णिदा य अणिदा य।

[२०७७ प्र] भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

[२०७७ उ] गौतम ! वेदना दो प्रकार की कही गई है, यथा— निदा और अनिदा।

२०७८ णेरइया ण भते ! कि णिदाय वेदण वेदेंति अणिदाय वेदण वेदेंति ?

गोयमा ! णिदाय पि वेदण वेदेंति अणिदाय पि वेदण वेदेंति।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति णेरइया णिदाय पि वेदण वेदेंति अणिदाय पि वेदण वेदेंति ?

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सण्णिभूया य असण्णिभूया य। तत्थ ण जे ते सण्णिभूया ते ण निदाय वेदण वेदेंति, तत्थ ण जे ते असण्णिभूया ते ण अणिदाय वेदण वेदेंति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति णेरइया निदाय पि वेदण वेदेंति अणिदाय पि वेदण वेदेंति।

[२०७८ प्र] भगवन् ! नारक निदावेदना वदते हैं, या अनिदावेदना वेदते है ?

[२०७८ उ] गौतम ! नारक निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नारक निदावेदना भी वेदते ह और अनिदावेदना भी वेदते हैं ?

[उ] गौतम ! नारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सज्ञीभूत और असज्ञीभूत। उनमें जो सज्ञीभूत नारक होते हैं, वे निदावदना को वेदते हैं और जो असज्ञीभूत नारक होते हैं, वे अनिदावेदना वेदते हैं। इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नारक निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदा-वेदना भी वदते हैं।

२०७९ एव जाव थणियकुमारा।

[२०७९] इसी प्रकार स्तनितकुमारों पयन्त कहना चाहिए।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५ पृ ९०१-९०२

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५५७

२०८० पुढविक्काइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! णो निदाय वेदण वेदेंति, अणिदाय वेदण वेदेंति ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति पुढविक्काइया णो णिदाय वेदण वेदेंति अणिदाय वेयण वेदेंति ?

गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे असण्णी असण्णिभूत अणिदाय वेदण वेदेंति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति पुढविक्काइया णो णिदाय वेयण वेदेंति, अणिदाय वेदण वेदेंति ।

[२०८० प्र] भगवन् ! पृच्छा है—पृथ्वीकायिक जीव निदावेदना वेदते हैं या अनिदावेदना वदत हैं ?

[२०८० उ] गौतम ! वे निदावेदना नही वेदते, किन्तु अनिदावेदना वेदते हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से यह कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीव निदावेदना नही वेदते, किन्तु अनिदावेदना वेदते हैं ?

[उ] गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक असज्ञी और असज्ञीभूत होते हैं, इसलिए अनिदावेदना वेदते हैं, (निदा नही), इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीव निदावेदना नही वेदते, किन्तु अनिदावेदना वेदते हैं ।

२०८१ एव जाव चउरिंदिया ।

[२०८१] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पयन्त (कहना चाहिए ।)

२०८२ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणसा वाणमतरा जहा णेरइया (सु २०७८) ।

[२०८२] पचेन्द्रियतियञ्च, मनुष्य और वाणव्यन्तर देवो का कथन (सू २०७८ में उक्त) नरयिको के कथन के समान जानना चाहिए ।

२०८३ जोइसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! णिदाय पि वेदण वेदेंति अणिदाय पि वेदण वेदेंति ।

से केणट्ठेण भते ! एव वच्चति जोइसिया णिदाय पि वेदण वेदेंति अणिदाय पि वेदण वेदेंति ?

गोयमा ! जोइसिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्म द्दिट्ठिउववण्णगा य, तत्य ण जे ते माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा ते ण अणिदाय वेदण वेदेंति, तत्य ण जे ते अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा ते ण णिदाय वेदण वेदेंति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति जोतिसिया दुविह पि वेदण वेदेंति ।

[२०८३ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्कदेव निदावेदना वेदते हैं या अनिदावेदना वेदते हैं ?

[२०८३ उ] गौतम ! वे निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि ज्योतिष्कदेव निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं ?

[उ] गौतम ! ज्योतिष्क देव दो प्रकार के कहे हैं, यथा—मायिमिथ्यादृष्टिउपपन्नक और अमायिसम्यग्दृष्टिउपपन्नक । उनमें से जो मायिमिथ्यादृष्टिउपपन्नक हैं, वे अनिदावेदना वेदते हैं और जो अमायिसम्यग्दृष्टिउपपन्नक हैं, वे निदावेदना वेदते हैं । इस कारण से हे गौतम ! यह कहा जाता है कि ज्योतिष्क देव दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं ।

२०८४. एवं वेमाणिया वि ।

[२०८४] वैमानिक देवों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

॥ पण्णवणाए भगवतीए पचतीसइमं वेयणापयं समत्तं ॥

विवेचन—निदा और अनिदा : स्वरूप और अधिकारी—जिसमें पूर्ण रूप से चित्त लगा हो, जिसका भलीभांति ध्यान हो, उसे निदा वेदना कहते हैं, जो इससे बिलकुल भिन्न हो, अर्थात्—जिसकी ओर चित्त बिलकुल न हो, वह अनिदावेदना कहलाती है ।

जो संज्ञी जीव मर कर नारक हुए हों, वे संज्ञीभूत नारक और जो असंज्ञी जीव मरकर नारक हुए हों, वे असंज्ञीभूत नारक कहलाते हैं । इनमें से संज्ञीभूत नारक निदावेदना और असंज्ञीभूत नारक अनिदावेदना वेदते हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य और वाणव्यन्तर देवों का कथन है । ज्योतिष्क देवों में जो मायिमिथ्यादृष्टि हैं, वे अनिदावेदना वेदते हैं और जो अमायिसम्यग्दृष्टि हैं, वे निदावेदना वेदते हैं । पृथ्वीकायिक से लेकर चतुरिन्द्रियपर्यन्त सभी अनिदावेदना वेदते हैं, निदावेदना नहीं, क्योंकि असंज्ञी होने से इनके मन नहीं होता, इस कारण ये अनिदावेदना ही वेदते हैं । असंज्ञी जीवों को जन्मान्तर में किये हुए शुभाशुभ कर्मों का अथवा वैर आदि का स्मरण नहीं होता । तथ्य यह है कि केवल तीव्र अध्यवसाय से किये गए कर्मों का ही स्मरण होता है, किन्तु पहले के असंज्ञीभव में पृथ्वीकायिकादि का अध्यवसाय तीव्र नहीं था, क्योंकि वे द्रव्यमन से रहित थे । इस कारण असंज्ञी नारक पूर्वभवसम्बन्धी विषयों का स्मरण करने में कुशलचित्त नहीं होता, जबकि संज्ञी नारक पूर्वभवसम्बन्धी कर्म या वैर-विरोध का स्मरण करते हैं । इस कारण वे निदावेदना वेदते हैं । सभी पृथ्वीकायिक आदि जीव असंज्ञी होने से विवेकहीन अनिदावेदना वेदते हैं ।[1]

॥ प्रज्ञापना भगवती का पैंतीसवाँ वेदनापद समाप्त ॥

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भाग ५, पृ. ९०३ से ९०५ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५५७

छत्तीसइमं समुग्घायपयं

छत्तीसवां समुद्घातपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह छत्तीसवा समुद्घातपद है।

- इसमे समुद्घात, उसके प्रकार तथा चौवीस दण्डको मे से किसमे कौन-सा समुद्घात होता है, इसकी विचारणा की गई है।

- 'समुद्घात' जैन शास्त्रो का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ शब्दशास्त्रानुसार होता है। एकीभावपूर्वक प्रबलता से वेदनादि पर घात—चोट करना। इसकी व्याख्या वृत्तिकार ने इस प्रकार की है—वेदना आदि के अनुभवरूप परिणामो मे साथ आत्मा का उत्कृष्ट एकीभाव। इसका फलितार्थ यह है कि तदितरपरिणामो से विरत होकर वेदनीयादि उन-उन कर्मों के बहुत-से प्रदेशो की उदीरणा के द्वारा शीघ्र उदय मे लाकर, भोग कर उसकी निर्जरा करना—यानी आत्मप्रदेशो से उनको पृथक् करना, झाड डालना।[1]

- वस्तुत देखा जाए तो समुद्घात का कर्मों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आत्मा पर लगे हुए ऐसे कर्म, जो चिरकाल बाद भोगे जाकर क्षीण होने वाले हो, उन्हें उदीरणा करके उदयावलिका मे लाकर वेदनादि के साथ एकीभूत होकर निर्जीर्ण कर देना—प्रबलता से उन कर्मों पर चोट करना समुद्घात है। जैनदर्शन आत्मा पर लगे हुए कर्मों को क्षय किये बिना आत्मा का विकास नही मानता। आत्मा की शुद्धि एव विकासशीलता समुद्घात के द्वारा कर्मनिर्जरा करने से शीघ्र हो सकती है। इसलिए समुद्घात एक ऐसा आध्यात्मिक शस्त्र है, जिसके द्वारा साधक जाग्रत रह कर कर्मफल का समभावपूर्वक वेदन कर सकता है, कर्मों को शीघ्र ही क्षय कर सकता है। इसी कारण समुद्घात सात प्रकार का बताया गया है—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात (६) आहारकसमुद्घात और (७) केवलिसमुद्घात।

- वृत्तिकार ने बताया है कि कौन-सा समुद्घात किस कर्म के आश्रित है? यथा—वेदनासमुद्घात असातावेदनीय-कर्माश्रित है, कषायसमुद्घात चारित्रमोहनीय कर्माश्रित है, मारणान्तिक-समुद्घात आयुष्य-कर्माश्रित है, वैक्रियसमुद्घात वैक्रियशरीरनाम-कर्माश्रित है, तैजस समुद्घात तैजसशरीरनाम-कर्माश्रित है, आहारकसमुद्घात आहारकशरीरनाम-कर्माश्रित है और केवलिसमुद्घात शुभ-अशुभनामकर्म, साता-असातावेदनीय तथा उच्च-नीचगोत्र-कर्माश्रित है।[2]

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५५९

२ (क) पण्णवणासुत्त भा १, पृ ४२८

(ख) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्र ५५९

- इसके पश्चात् इन सातों समुद्घातों में से कौन-से समुद्घात की प्रक्रिया क्या है और उसके परिणामस्वरूप उस समुद्घात से सम्बन्धित कर्म की निर्जरा आदि कैसे होती है, इसका संक्षेप में निरूपण है।
- तदनन्तर वेदनासमुद्घात आदि सातों में से कौन सा समुद्घात कितने समय का है, इसकी चर्चा है। इनमें केवलिसमुद्घात ८ समय का है, शेष समुद्घात असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त-काल के हैं।
- इसके पश्चात् यह स्पष्टीकरण किया गया है कि सात समुद्घातों में से किस जीव में कितने समुद्घात पाये जाते हैं?
- तदनन्तर यह चर्चा विस्तार से की गई है कि एक-एक जीव में, उन-उन दण्डकों के विभिन्न जीवों में अतीतकाल में कितनी संख्या में कौन-कौन से समुद्घात होते हैं तथा भविष्य में कितनी संख्या में सम्भवित हैं?
- उसके बाद बताया गया है कि एक एक दण्डक के जीव को तथा उन-उन दण्डकों के जीवों को (स्वस्थान में) उस-उस रूप में और अन्य दण्डक के जीवरूप (परस्थान) में अतीत-अनागत काल में कितने समुद्घात संभव हैं?
- इसके पश्चात् समुद्घात की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।
- तत्पश्चात् कषायसमुद्घात चार प्रकार के बताकर उनकी अपेक्षा से भूत-भविष्यकाल के समुद्घातों की विचारणा की गई है। इसमें भी स्वस्थान परस्थान की अपेक्षा से अतीत-अनागत कषायसमुद्घातों की एवं अल्पबहुत्व की विचारणा की गई है।
- इसके पश्चात् वेदना आदि समुद्घातों का अवगाहन और स्पर्श की दृष्टि से विचार किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि उस उस जीव की अवगाहना (क्षेत्र) तथा (काल) स्पर्शना कितनी कितने काल की होती है तथा किस समुद्घात के समय उस जीव को कितनी क्रियाएँ लगती हैं?[1]
- अन्त में केवलिसमुद्घात सम्बन्धी चर्चा विभिन्न पहलुओं से की गई है। सयोगी केवली जब तक मन वचन काय योग का निरोध करके अयोगिदशा प्राप्त नहीं करता तब तक सिद्ध नहीं होता। साथ ही सिद्धत्व प्राप्ति की प्रक्रिया का सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया गया है। अन्त में सिद्धों के स्वरूप का निरूपण किया गया है।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्र ५९०
   (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पृ. १५१-१५२

२ पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. ४४६

छत्तीसइमं समुग्घायपयं

छत्तीसवाँ समुद्घातपद

समुद्घात-भेद-प्ररूपणा

२०८५ वेयण १ कसाय २ मरणे ३ वेउव्विय ४ तेयए य ५ आहारे ६ ।
केवलिए चेव भवे ७ जीव-मणुस्साण सत्तेव ॥ २२७ ॥

[२०८५ सग्रहणी गाथार्थ] जीवो और मनुष्यो के ये सात ही समुद्घात होते हैं—(१) वेदना, (२) कषाय, (३) मरण (मारणान्तिक), (४) वैक्रिय, (५) तैजस, (६) आहार (आहारक) और (७) केवलिक।

२०८६ कति ण भंते ! समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता । त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयासमुग्घाए ५ आहारगसमुग्घाए ६ केवलिसमुग्घाए ७ ।

[२०८६ प्र] भगवन् ! समुद्घात कितने कहे गए हैं ?

[२०८६ उ] गौतम ! समुद्घात सात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात, (६) आहारकसमुद्घात और (७) केवलिसमुद्घात।

विवेचन—समुद्घात स्वरूप और प्रकार—समुद्घात मे सम+उद्+घात, ये तीन शब्द हैं। इनका व्याकरणानुसार अर्थ होता है—सम्—एकीभावपूर्वक, उत्—प्रबलता से, घात—घात करना। तात्पर्य यह हुआ कि एकाग्रतापूर्वक प्रबलता के साथ घात करना। भावार्थ यह है कि वेदना आदि के साथ उत्कृष्टरूप से एकीभूत हो जाना। फलितार्थ यह हुआ कि वेदना आदि समुद्घात के समय आत्मा वेदनादिज्ञानरूप मे परिणत हो जाता है, उसे अन्य कोई भान नही रहता। जब जीव वेदनादि समुद्घातो मे परिणत होता है, तब कालान्तर मे अनुभव करने योग्य वेदनीयादि कर्मों के प्रदेशो को उदीरणाकरण के द्वारा खीचकर, उदयावलिका मे डालकर, उनका अनुभव करके निर्जीर्ण कर डालता है, अर्थात्—आत्मप्रदेशो से पृथक् कर देता है। यही घात की प्रबलता है। पूर्वकृत कर्मों का झड जाना, आत्मा से पृथक् हो जाना ही निर्जरा है।

समुद्घात सात प्रकार के हैं—(१) वेदना, (२) कषाय, (३) मारणान्तिक, (४) वैक्रिय, (५) तैजस, (६) आहारक और (७) केवली।

कौन समुद्घात किस कर्म के आश्रित है ?—इनमे से वेदनासमुद्घात असातावेदनीय-कर्माश्रय है, कषायसमुद्घात चारित्रमोहनीय-कर्माश्रय है, मारणान्तिकसमुद्घात अन्तर्मुहूर्त शेष आयुष्यकर्माश्रय है, वैक्रियसमुद्घात वैक्रियशरीरनाम-कर्माश्रय है तैजससमुद्घात तैजसशरीरनाम-कर्माश्रय है,

आहारकसमुद्घात आहारकशरीरनाम-कर्माश्रय है और केवलिसमुद्घात साता-असातावेदनीय, शुभ-अशुभनामकर्म और उच्च-नीचगोत्र-कर्माश्रित है।

१ वेदनासमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—वेदनासमुद्घात करने वाला जीव असातावेदनीय कर्म के पुद्गलों की परिशाटना (निर्जरा) करता है। आशय यह है कि वेदना से पीड़ित जीव अनन्तानन्त कर्मपुद्गलों से व्याप्त अपने आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकालता है और मुख एवं उदर आदि छिद्रों को तथा कान, स्कन्ध आदि के अपान्तरालों (बीच के रिक्त स्थानों) को परिपूरित करके, लम्बाई और विस्तार में शरीरमात्र क्षेत्र को व्याप्त करके अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। उस अन्तर्मुहूर्त में वह बहुत-से असातावेदनीयकर्म के पुद्गलों को निर्जीर्ण कर डालता है।

२ कषायसमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—कषायसमुद्घात करने वाला जीव कषाय-चारित्रमोहनीयकर्म के पुद्गलों का परिशाटन करता है—कषाय के उदय से युक्त जीव अपने प्रदेशों को बाहर निकालता है। उन प्रदेशों से मुख, उदर आदि छिद्रों को तथा कान, स्कन्ध आदि अन्तरालों को पूरित करता है। लम्बाई तथा विस्तार से शरीरमात्र क्षेत्र को व्याप्त करके रहता है। ऐसा करके वह बहुत-से कषायकर्मपुद्गलों का परिशाटन करता है—झाड़ देता है।

३. मारणान्तिकसमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—मारणान्तिकसमुद्घात करने वाला जीव आयुकर्म के पुद्गलों का परिशाटन करता है। इस समुद्घात में यह विशेषता है कि मारणान्तिकसमुद्घात करने वाला जीव अपने प्रदेशों को बाहर निकाल कर मुख तथा उदर आदि के छिद्रों को तथा कान, स्कन्ध आदि अन्तरालों को पूरित करके विस्तार और मोटाई में अपने शरीरप्रमाण होकर किन्तु लम्बाई में अपने शरीर के अतिरिक्त जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग तक और उत्कृष्ट असंख्यात योजन तक एक दिशा के क्षेत्र को व्याप्त करके रहता है।

४ वैक्रियसमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—वैक्रियसमुद्घात करने वाला जीव अपने प्रदेशों को शरीर से बाहर निकाल कर शरीर के विस्तार और मोटाई के बराबर तथा लम्बाई में संख्यातयोजनप्रमाण दण्ड निकालता है। फिर यथासम्भव वैक्रियशरीरनामकर्म के स्थूल पुद्गलों का परिशाटन करता है।

५ तैजससमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—तैजससमुद्घात करने वाला जीव तेजोलेश्या के निकालने के समय तैजसशरीरनामकर्म के पुद्गलों का परिशाटन करता है।

६ आहारकसमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—आहारकसमुद्घात करने वाला आहारकशरीरनामकर्म के पुद्गलों का परिशाटन करता है।

७ केवलिसमुद्घात की प्रक्रिया और परिणाम—केवलिसमुद्घात करने वाला जीव साता-असातावेदनीय आदि कर्मों के पुद्गलों का परिशाटन करता है। केवली ही केवलिसमुद्घात करता है। इसमें आठ समय लगते हैं। केवलिसमुद्घात करने वाला केवली प्रथम समय में मोटाई में अपने शरीरप्रमाण आत्मप्रदेशों का दण्ड ऊपर और नीचे लोकान्त तक रचता है। दूसरे समय में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में कपाट की रचना करता है। तीसरे समय में मन्थान (मथानी) की रचना करता है। चौथे समय में अवकाशान्तरों को पूरित करता (भरता) है। पांचवें समय में उन अवका-

प्रान्तरो को सिकोडता है, छठे समय मे मन्थान को सिकोडता है, सातवें समय मे कपाट को समुचित करता है और आठवे समय मे दण्ड का सकोच करके आत्मस्थ हो जाता है।[1]

समुद्घात-काल-प्ररूपणा

२०८७ [१] वेदणासमुग्घाए ण भते ! कतिसमइए पण्णत्ते ?

गोयमा ! असखेज्जसमइए अतोमुहुत्तिए पण्णत्ते।

[२०८७-१ प्र] भगवन् ! वेदनासमुद्घात कितने समय का कहा गया है ?

[२०८७-१ उ] गौतम ! वह असख्यात समयो वाले अन्तमुहूर्त का कहा है।

[२] एव जाव आहारगसमुग्घाए।

[२०८७-२] इसी प्रकार आहारकसमुद्घात पर्यन्त कथन करना चाहिए।

२०८८ केवलिसमुग्घाए ण भते ! कतिसमइए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठसमइए पण्णत्ते।

[२०८८ प्र] भगवन् ! केवलिसमुद्घात कितने समय का कहा है ?

[२०८८ उ] गौतम ! वह आठ समय का कहा है।

विवेचन—निष्कर्ष—वेदनासमुदघात से लेकर आहारकसमुदघात तक समुद्घातकाल अन्तमुहूर्त का है, किन्तु वह अन्तमुहूर्त असख्यात समयो का समझना चाहिए। केवलिसद्घात का काल आठ समय का है।[2]

चौवीस दण्डको मे समुद्घात-सख्या-प्ररूपणा

२०८९ णेरइयाण भते ! कति समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता। त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४।

[२०८९ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[२०८९ उ] गौतम ! उनके चार समुद्घात कहे हैं। यथा—(१) वेदनासमुदघात, (२) कपायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात एव (४) वैक्रियसमुद्घात।

२०९० [१] असुरकुमाराण भते ! कति समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच समुग्घाया पण्णत्ता ! त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयासमुग्घाए ५।

[२०९० प्र] भगवन् असुरकुमारो के कितने समुद्घात कहे हैं ?

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ९१३-९१४

२ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ९१९-९२०

[२०९०-१ उ] गौतम ! उनके पाच समुद्घात कहे हैं । यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात (४) वैक्रियसमुद्घात और (५) तैजससमुद्घात।

[२] एव जाव थणियकुमाराण।

[२०९०-२] इसी प्रकार स्तनितकुमारो पर्यन्त कहना चाहिए।

२०९१ [१] पुढविक्काइयाण भते ! कति समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता । त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ ।

[२०९१-१ प्र] भगवन ! पृथ्वीकायिक जीवो के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[२०९१-१ उ] गौतम ! उनके तीन समुद्घात कहे हैं । यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात और (३) मारणान्तिकसमुद्घात ।

[२] एव जाव चउरिंदियाण । णवर वाउक्काइयाण चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ ।

[२०९१-२] इसी प्रकार चतुरिन्द्रियो पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष यह है कि वायुकायिक जीवो के चार समुद्घात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात और (४) वैक्रियसमुद्घात।

२०९२ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव वेमाणियाण भते ! कति समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच समुग्घाया पण्णत्ता । त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयासमुग्घाए ५ । णवर मणूसाण सत्तविहे समुग्घाए पण्णत्ते, त जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयासमुग्घाए ५ आहारगसमुग्घाए ६ केवलिसमुग्घाए ७ ।

[२०९२ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यञ्चों से लेकर वैमानिको पर्यन्त कितने समुद्घात कहे हैं ?

[२०९२ उ] गौतम ! उनके पाच समुद्घात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात (४) वैक्रियसमुद्घात और (५) तैजससमुद्घात। विशेष यह है कि मनुष्यों के सात समुद्घात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात, (६) आहारकसमुद्घात और (७) केवलिसमुद्घात ।

विवेचन—समुद्घात किसमें कितने और क्यों ?—नारकों में आदि के ४ समुद्घात होते हैं, क्योंकि नारको मे तेजोलब्धि, आहारकलब्धि और केवलित्व का अभाव होने से तैजस, आहारक और केवलिसमुद्घात नहीं होते। असुरकुमारादि दस भवनवासी देवों में प्रारम्भ के चार और पाचवा तैजस-समुद्घात भी हो सकता है। पृथ्वीकायिकादि पाच स्थावरो मे प्रारम्भ के तीन समुद्घात होते हैं, किन्तु वायुकायिक जीवो मे पहले के तीन और एक वैक्रियसमुद्घात, यों चार समुद्घात होते हैं। पचेन्द्रियतिर्यञ्चो से लेकर वैमानिको तक प्रारम्भ के पाच समुद्घात पाये जाते हैं। किन्तु मनुष्यों मे सातों

ही समुदघात पाये जाते हैं। तियञ्चपचेन्द्रियो मे लेकर वैमानिको तक पाच समुद्घात इसलिए पाये जाते हैं कि तियञ्चपचेन्द्रियो आदि मे आहारकलब्धि और केवलित्व नही होते। अत अन्तिम दो समुदघात उनमे नही पाये जाते।

चौवीस दण्डको मे एकत्वरूप से अतीतादि-समुद्घात-प्ररूपणा

२०९३ [१] एगमेगस्स ण भते ! णेरइयस्स केवतिया वेदणासमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! अणता।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा।

[२०९३-१ प्र] भगवन ! एक-एक नारक के कितने वेदनासमुद्घात अतीत—व्यतीत हुए हैं ?

[२०९३-१ उ] हे गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

[प्र] भगवन् ! वे भविष्य मे (आगे) कितने होने वाले हैं ?

[उ] गौतम ! किसी के होते हैं और किसी के नही होते। जिसके हाेत हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात या अनन्त होते हैं।

[२] एव असुरकुमारस्स वि, णिरतर जाव वेमाणियस्स।

[२०९३-२] इसी प्रकार असुरकुमार के विषय मे भी जानना चाहिए। यहाँ से लगातार वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिए।

२०९४ [१] एव जाव तेयगसमुग्घाए।

[२०९४-१] इसी प्रकार तैजससमुद्घात तक (जानना चाहिए।)

[२] एव एते पच चउवीसा दडगा।

[२०९४-२] इसी प्रकार ये पाचो समुद्घात (वेदना, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस) भी चौवीस दण्डको के क्रम से समझ लेने चाहिए।

२०९५ [१] एगमेगस्स ण भते ! णेरइयस्स केवतिया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा, उक्कोसेण तिण्णि।

केवतिया पुरेक्खडा ?

कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण चत्तारि।

[२०९५-१ प्र] भगवन् ! एक-एक नारक के अतीत आहारकसमुद्घात कितने हैं ?

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभि रा कोष भा ७, पृ ४३६

[२०९५-१ उ] गौतम ! वे किसी के होते हैं और किसी के नही होते । जिसके (अतीत आहारकसमुदघात) होते हैं, उसके भी जघन्य एक या दो होते हैं और उत्कृष्ट तीन होते हैं ।

[प्र] भगवन् ! एक-एक नारक के भावी समुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! किसी के होते हैं और किसी के नही होते । जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार समुद्घात होते है ।

[२] एवं णिरंतरं जाव वेमाणियस्स। नवरं मणूसस्स अतीता वि पुरेक्खडा वि जहा णेरइयस्स पुरेक्खडा ।

[२०९५-२] इसी प्रकार (असुरकुमारो से लेकर) लगातार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए । विशेष यह है कि मनुष्य के अतीत और अनागत नारक के (अतीत और अनागत आहारक समुद्घात के) समान हैं ।

२०९६ [१] एगमेगस्स ण भंते ! णेरइयस्स केवतिया केवलिसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को ।

[२०९६-१ प्र] भगवन् ! एक-एक नारक के अतीत केवलिसमुद्घात कितने हुए हैं ?

[२०९६-१ उ] गौतम ! (एक भी नारक के एक भी अतीत केवलिसमुदघात) नहीं हैं ।

[प्र] भगवन् ! (एक-एक नारक के) भावी (केवलिसमुदघात) कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! किसी (नारक) के (भावी केवलिसमुद्घात) होता है, किसी के नही होता । जिसके होता है, उसके एक ही होता है ।

[२] एवं जाव वेमाणियस्स । णवरं मणूसस्स अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि। जस्सऽत्थि एक्को । एवं पुरेक्खडा वि ।

[२०९६-२] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त (अतीत और अनागत केवलिसमुद्घात-विषयक कथन करना चाहिए ।) विशेष यह है कि किसी मनुष्य के अतीत केवलिसमुद्घात होता है, किसी के नही होता । जिसके होता है, उसके एक ही होता है । इसी प्रकार (अतीत केवलि-समुद्घात के समान मनुष्य के) भावी (केवलिसमुद्घात) का भी (कथन जान लेना चाहिए)।

विवेचन—एक-एक जीव के अतीत अनागत समुद्घात कितने ?—प्रस्तुत प्रकरण मे एक एक जीव के कितने वेदनादि समुद्घात अतीत हो चुके हैं और कितने भविष्य मे होने वाले हैं ?, इसका चौवीस दण्डको के क्रम से निरूपण किया गया है ।

(१) वेदनासमुद्घात—एक एक नारक के अनन्त वेदनासमुदघात अतीत हुए हैं, क्योंकि नारकादि स्थान अनन्त हैं । एक-एक नारक-स्थान को अनन्तवार प्राप्त किया है और एक बार नारक स्थान की प्राप्ति के समय एक नारक के अनेक वार वेदनासमुद्घात हुए हैं । यह कथन बाहुल्य की अपेक्षा से समझना चाहिए । बहुत-से जीवो को अव्यवहार-राशि से निकले अनन्तकाल

व्यतीत हो चुका है। उनकी अपेक्षा से एक -एक नारक के अनन्त वेदनासमुद्घात अतीत कहे गए हैं। जिन जीवो को व्यवहारराशि से निकले अल्पसमय व्यतीत हुआ है, उनकी अपेक्षा से यथासम्भव सख्यात या असख्यात वेदनासमुद्घात व्यतीत हुए समझने चाहिए।

एक एक नारक के भावी समुद्घात के विषय मे कहा गया है कि किसी नारक के भावी-समुदघात होते हैं किसी के नही होते। तात्पय यह है कि जो जीव पृच्छा के समय के पश्चात् वेदनासमुदघात के बिना ही नरक से निकल कर अन तर मनुष्यभव प्राप्त करके वेदनासमुद्घात किये बिना ही सिद्धि प्राप्त करेगा, उसकी अपेक्षा से एक भी वदनासमुद्घात नही है। जो इस पृच्छा के समय के पश्चात आयु शेष होने के कारण कुछ काल तक नरक मे स्थित रह कर फिर मनुष्यभव प्राप्त करके सिद्ध होगा, उसके एक, दो या तीन वेदनासमुद्घात सम्भव ह। सख्यातकाल तक ससार मे रहने वा‍े नारक के सख्यात तथा असख्यातकाल तक ससार मे रहने वाले के असख्यात और अन तकाल तक ससार मे रहने वाले के अन त भावी समुदघात होते हैं। नारको के समान ही असुरकुमारादि भवनवासियो, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियो, विकलेन्द्रियो, पचेन्द्रियतिर्यञ्चो, मनुष्यो, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिको के भी अन त वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं तथा भावी-वेदनासमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नही होते। जिसके होते हैं, वे जघ य एक, दो या तीन होते हैं, उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात या अन त होते हैं।[1]

[२-३-४-५] वेदनासमुद्घात की तरह कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय एव तैजस समुद्घात-विषयक कथन चोवीस दण्डका के क्रम से समझ लेना चाहिए।[2]

(६) आहारकसमुद्घात—एक-एक नारक के अतीत आहारक-समुद्घात के प्रश्न के उत्तर म कहा गया है कि आहारकसमुद्घात किसी-किसी का होता है, किसी का नही होता। जिस नारक के अतीत आहारकसमुद्घात होता है, उसके भी जघन्य एक या दो होते हैं और उत्कृष्ट तीन होते हैं। जिस नारक ने पहले मनुष्यभव प्राप्त कर के अनुकूल सामग्री के अभाव मे चोदह पूर्वों का अध्ययन नही किया अथवा चोदह पूर्वों का अध्ययन होन पर भी आहारकलब्धि के अभाव मे या वसा कोई विशिष्ट प्रयोजन न होने से आहारकशरीर का निर्माण नही किया, उसके अतीत आहारक-समुद्घात नही होते। उससे भिन्न प्रकार के नारक के जघ य एक या दो और उत्कृष्ट तीन आहारक-समुद्घात होते ह। चार नही हो सकते, क्योकि चार वार आहारकशरीर का निर्माण करने वाला जीव नरक मे नही जा सकता।

भावी आहारकसमुद्घात भी किसी के होते ह, किसी के नही। जिनके होते हैं, उनके जघ य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट चार होते हैं। जो नारक मनुष्यभव को प्राप्त करके अनुकूल सामग्री न मिलने से चोदह पूर्वों का अध्ययन नही करेगा या अध्ययन करके भी आहारक-समुद्घात नही करेगा और सिद्ध हो जाएगा, उसके भावी आहारकसमुद्घात नहीं होते। इसमे

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ९२७ से ९२९ तक

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभिधान रा कोष भा ७, पृ ४३७

२ (क) वही अ रा कोष भा ७, पृ ४३७

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ९३०

भिन्न नारक के जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार भावी आहारकसमुद्घात होते हैं। इससे अधिक भावी आहारकसमुद्घात नहीं हो सकते, क्योंकि तदनन्तर वह जीव नियम से किसी दूसरी गति में नहीं जाता और आहारकसमुद्घात किये बिना ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार असुरकुमारादि भवनवासियों से लेकर वैमानिकों तक के अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात के विषय में समझ लेना चाहिए। परन्तु मनुष्य के अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात नारक के अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात के समान हैं। नारक के अतीत और अनागत जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार हैं, इसी प्रकार मनुष्य के हैं।[1]

(७) केवलिसमुद्घात—एक एक नारक के अतीत केवलिसमुद्घात एक भी नहीं है, क्योंकि केवलिसमुद्घात के पश्चात् नियम से अन्तर्मुहूर्त में ही जीव को मोक्ष प्राप्ति हो जाती है। फिर उसका नरक में जाना और नारक होना सम्भव नहीं है। अतएव किसी भी नारक के अतीत केवलिसमुद्घात सम्भव नहीं है। अब रहा नारक के भावी केवलिसमुद्घात का प्रश्न—यह किसी के होता है, किसी के नहीं होता। जिस नारक के होता है, उसके एक ही केवलिसमुद्घात होता है। एक से अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि एक केवलिसमुद्घात के द्वारा ही चारों अघातिक कर्मों की स्थिति समान करके केवली अन्तर्मुहूर्त में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। फिर दूसरी बार किसी को भी केवलिसमुद्घात की आवश्यकता नहीं होती। जो नारक भवभ्रमण करके मुक्तिपद प्राप्त करने का अवसर पायेगा, उस समय उसके अघातिकर्मों की स्थिति विषम होगी तो उसे सम करने के लिए वह केवलिसमुद्घात करेगा। यह उसका भावी केवलिसमुद्घात होगा। जो नारक केवलिसमुद्घात के बिना ही मुक्ति प्राप्त करेगा अथवा जो (अभव्य) कभी मुक्ति प्राप्त कर ही नहीं सकेगा, उसकी अपेक्षा से भावी केवलिसमुद्घात नहीं होता।

मनुष्य के अतिरिक्त भवनवासी, पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव के भी अतीत केवलिसमुद्घात नहीं होता। भावी केवलिसमुद्घात किसी के होता है, किसी के नहीं होता। जिसके होता है, एक ही होता है। युक्ति पूर्ववत् समझना चाहिये। किसी मनुष्य के अतीत केवलिसमुद्घात होता है, किसी के नहीं। केवलिसमुद्घात जिसके होता है, एक ही होता है। जो मनुष्य केवलिसमुद्घात कर चुका है और अभी तक मुक्त नहीं हुआ है—अन्तर्मुहूर्त में मुक्त होने वाला है, उसकी अपेक्षा से अतीत केवलिसमुद्घात है, किन्तु जिस मनुष्य ने केवलिसमुद्घात नहीं किया है, उसकी अपेक्षा से नहीं है।

अतीत केवलिसमुद्घात के समान मनुष्य के भावी केवलिसमुद्घात का कथन भी जान लेना चाहिए। अतीत की तरह भावी केवलिसमुद्घात भी किसी का होता है, किसी का नहीं। जिसका होता है, उसका एक ही होता है, अधिक नहीं।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५ पृ १३० से १३२ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति अ रा कोष भा ७, पृ ४३८
२ (क) वही अ रा कोष भा ७, पृ ४५८
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५ पृ १३३ से १३५ तक

चौवीस दण्डको मे बहुत्व की अपेक्षा से अतीत-अनागत-समुद्घात-प्ररूपणा

२०९७ [१] णेरइयाण भंते ! केवतिया वेदणासमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोतमा ! अणता ।

[२०९७-१ प्र] भगवन् ! नारको के कितने वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२०९७-१ उ] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं ।

[प्र] भगवन् ! (उनके) भावी वेदनासमुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे भी अनन्त होते है ।

[२] एव जाव वेमाणियाण ।

[२०९७ २] इसी प्रकार वैमानिको (के वेदनासमुद्घात) तक (के विषय में जानना चाहिए) ।

२०९८ [१] एव जाव तेयगसमुग्घाए ।

[२०९८ १] इसी प्रकार (वेदनासमद्घात के समान) तैजससमुद्घात पयन्त समझना चाहिए ।

[२] एव एते वि पच चउवीसा दडगा ।

[२०९८-२] इस प्रकार इन (वेदना से लेकर तैजस तक) पाचा समुद्घातो का (कथन) चौवोसा दण्डको मे (बहुवचन के रूप मे समझ लेना चाहिए ।)

२०९९ [१] णेरइयाण भते ! केवतिया आहारगसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! असखेज्जा ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! असखेज्जा ।

[२०९९-१ प्र] भगवान् ! नारका के कितने आहारकसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२०९९-१ उ] गौतम ! वे असख्यात हुए हैं ।

[प्र] भगवन् ! उनके आगामी आहारकसमुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे भी असख्यात होते हैं ।

[२] एव जाव वेमाणियाण णवर वणस्सइकाइयाण मणूसाण य इम णाणत्त ।

वणस्सइकाइयाण भते ! केवतिया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! अणता ।

मणूसाण भते ! केवतिया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! सिय सखेज्जा सिय असखेज्जा । एव पुरेक्खडा वि ।

[२०९९-२] इसी प्रकार (नारकों के समान) वैमानिकों तक का कथन समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों और मनुष्यों की वक्तव्यता में इनसे भिन्नता है, यथा—

[प्र.] भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने आहारकसमुद्घात अतीत हुए हैं?

[उ.] गौतम! (उनके) अनन्त (आहारकसमुद्घात अतीत हुए हैं)।

[प्र.] भगवन्! मनुष्यों के कितने आहारकसमुद्घात अतीत हुए हैं?

[उ.] गौतम! (उनके आहारकसमुद्घात) कथंचित् संख्यात और कथंचित असंख्यात (हुए हैं।)

इसी प्रकार उनके भावी आहारकसमुद्घात भी समझ लेने चाहिए।

२१०० [१] णेरइयाणं भंते! केवतिया केवलिसमुग्घाया अतीया?

गोयमा! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा?

गोयमा! असंखेज्जा।

[२१००-१ प्र.] भगवन्! नैरयिकों के कितने केवलिसमुद्घात अतीत हुए हैं?

[२१००-१ उ.] गौतम! एक भी नहीं है।

[प्र.] भगवन्! नारकों के कितने केवलिसमुद्घात आगामी हैं?

[उ.] गौतम! वे असंख्यात हैं।

[२] एवं जाव वेमाणियाणं। णवरं वणस्सइकाइय-मणूसेसु इमं णाणत्तं।

वणस्सइकाइयाणं भंते! केवतिया केवलिसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता।

मणूसाणं भंते! केवतिया केवलिसमुग्घाया अतीया?

गोयमा! सिय अत्थि सिय णत्थि। जदि अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

केवतिया पुरेक्खडा?

गोयमा! सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा।

[२१००-२ प्र.] इसी प्रकार वैमानिकों तक समझना चाहिए। विशेष यह है कि वनस्पतिकायिकों और मनुष्यों में (केवलिसमुद्घात के विषय में पूर्वकथन से) भिन्नता है, यथा—

[प्र.] भगवन्! वनस्पतिकायिकों के कितने केवलिसमुद्घात अतीत हैं?

[उ.] गौतम! (इनके केवलिसमुद्घात अतीत) नहीं हैं।

[प्र] भगवन् ! इनके कितने भावी केवलिसमुद्घात हैं ?

[उ] गौतम ! वे अनन्त हैं।

[प्र] भगवन् ! मनुष्यों के कितने केवलिसमुद्घात अतीत हैं ?

[उ] गौतम ! कथञ्चित् हैं और कथञ्चित नहीं हैं। यदि हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व है।

[प्र] भगवन् ! उनके भावी केवलिसमुद्घात कितने कहे हैं ?

[उ] गौतम ! कथञ्चित् सख्यात हैं और कथञ्चित् असख्यात हैं।

विवेचन—नारकादि मे बहुत्व की अपेक्षा से वेदनासमुदघात आदि का निरूपण— नारको के वेदनासमुदघात अनन्त अतीत हुए है, क्योकि बहुत-से नारको को व्यवहारराशि से निकले अनन्तकाल हो चुका है। इनके भावी समुदघात भी अनन्त हैं, क्योकि बहुत से नारक अनन्तकाल तक ससार मे स्थित रहेगे।

असुरकुमारादि भवनवासियो, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियो, विकलेन्द्रियो, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिको के भी वेदनासमुद्घात अतीत और अनागत (भावी) मे अनन्त होते हैं।

वेदनासमुद्घात की भाति कषाय मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस समुद्घात की वक्तव्यता भी समझ लेनी चाहिए।[1]

इन सबका निरूपण चौबीस दण्डको मे बहुवचन के रूप मे करना चाहिए।

आहारकसमुद्घात—नारको के अतीत आहारकसमुदघात असख्यात हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि सभी नारक असख्यात हैं, तथापि उनमे भी कुछ असख्यात नारक ऐसे होते हैं, जो पहले आहारकसमुद्घात कर चुके हैं, उनकी अपेक्षा से नारको के अतीत आहारकसमुदघात असख्यात कहे हैं। इसी प्रकार नारको के भावी आहारकसमुद्घात भी पूर्वोक्त युक्ति से असख्यात समझ लेने चाहिए।

वनस्पतिकायिको और मनुष्यो को छोडकर शेष दण्डको मे वैमानिक पर्यन्त अतीत और अनागत आहारकसमुदघात पूर्ववत् असख्यात हैं।

वनस्पतिकायिकों के अतीत आहारकसमुद्घात—बहुवचन की अपेक्षा से अनन्त हैं, क्योकि ऐसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं, जिन्होने चौदह पूर्वों का ज्ञान भूतकाल मे किया था, किन्तु प्रमाद के वशीभूत होकर ससार की वृद्धि करके वनस्पतिकायिको मे विद्यमान हैं। वनस्पतिकायिको के भावी आहारकसमुद्घात भी अनन्त हैं, क्योकि पृच्छा के समय जो जीव वनस्पतिकाय में हैं, उनमे से अनन्त जीव वनस्पतिकायिको मे से निकल कर मनुष्यभव पाकर चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करके आहारकसमुद्घात करके सिद्धिगमन करेंगे।

मनुष्यो के अतीत अनागत आहारकसमुद्घात—बहुवचन की अपेक्षा से कदाचित सख्यात और कदाचित् असख्यात हैं। तात्पर्य यह है कि समूच्छिम और गर्भज मनुष्य मिलाकर उत्कृष्ट सख्या में अगुलमात्र क्षेत्र मे जितने प्रदेशो की राशि है, उसके प्रथम वर्गमूल का तृतीय वर्गमूल से गुणाकार

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति अ रा कोष, भा ७ पृ ४३८

करने पर जो परिमाण आता है, उतने प्रदेशोवाले खण्ड-घनीकृत लोक की एकप्रदेश वाली श्रेणी में जितने मनुष्य होते हैं, उनमे से एक कम करने पर जितने मनुष्य हों, उतने ही हैं। ये मनुष्य नारक आदि अन्य जीवराशियों की अपेक्षा कम हैं। उनमें भी ऐसे मनुष्य कम हैं, जिन्होंने पूर्वभवो में आहारकशरीर बनाया हो, इस कारण वे कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के भावी आहारकसमुद्घात भी पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात समझने चाहिए।[1]

केवलिसमुद्घात—नारकों के अतीत केवलिसमुद्घात एक भी नही होता, क्योंकि जिन जीवों ने केवलिसमुद्घात किया है, उनका नारक में जाना और नारक होना सम्भव नहीं है। नारकों के भावी केवलिसमुद्घात असंख्यात है, क्योंकि पृच्छा के समय सदैव भविष्य में केवलिसमुद्घात करने वाले नारक असंख्यात ही होते है। केवलज्ञान से ऐसा ही जाना जाता है।

नारकों के समान ही वनस्पतिकायिकों एवं मनुष्यों को छोडकर असुरकुमारादि भवनवासियों से लेकर वैमानिकों तक भी इसी प्रकार समझना चाहिए। इनके भी अतीत केवलिसमुद्घात नहीं होते और भावी केवलिसमुद्घात असंख्यात होते हैं।

वनस्पतिकायिकों के अतीत केवलिसमुद्घात पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार नहीं होते। इनमे भावी-केवलिसमुद्घात अनन्त होते हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिकों मे अनन्त जीव ऐसे होते हैं, जो भविष्यत्काल में केवली होकर केवलिसमुद्घात करेंगे।

मनुष्यों के अतीत केवलिसमुद्घात कदाचित् होते है, कदाचित् नहीं होते। पृच्छा के समय अगर केवलिसमुद्घात से निवृत्त कोई मनुष्य (केवली) विद्यमान हो तो अतीत केवलिसमुद्घात होते हैं, अन्य समय मे नही होते। यदि अतीत केवलिसमुद्घात हो तो वे जघन्यतः एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्टतः शतपृथक्त्व अर्थात् दो सौ से लेकर नौ सौ तक होते हैं।

मनुष्यों के भावी केवलिसमुद्घात कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं। सम्मूच्छिम और गर्भज मनुष्यों में पृच्छा के समय बहुत से अभव्य भी होते हैं, जिनके भावी केवलिसमुद्घात सम्भव नहीं, इस अपेक्षा से भावी केवलिसमुद्घात संख्यात होते हैं। कदाचित् वे असंख्यात भी होते हैं, क्योंकि उस समय भविष्य में केवलिसमुद्घात करने वाले मनुष्य बहुत होते हैं।[2]

चौवीस दण्डकों की चौवीस दण्डक पर्यायों मे एकत्व की अपेक्षा से अतीतादि समुद्घात प्ररूपणा

२१०१ [१] एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवतिया वेदणासमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! अणंता।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा।

---

1 प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अ. रा. कोष, भा. ७ पृ. ४३०
2 वही, मलयवृत्ति अ. रा. कोष, भा. ७, पृ. ४३१

[२१०१-१ प्र] भगवन् ! एक-एक नैरयिक के नारकत्व मे (अर्थात्—नारक-पर्याय मे रहते हुए) कितने वेदनासमुद्घात अतीत हुए है ।

[२१०१-१ उ] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

[प्र] भगवन् ! (एक-एक नारक के नारकत्व मे) कितने भावी (वेदनासमुद्घात) होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे किसी के होते हैं, किसी के नही होते । जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होते है ।

[२] एव असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते ।

[२१०१-२] इसी प्रकार एक-एक नारक के असुरकुमारत्व यावत वैमानिकत्व मे रहते हुए पूर्ववत् अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात समझने चाहिए ।

२१०२ एगमेगस्स ण भते ! असुरकुमारस्स णेरइयत्ते केवतिया वेयणासमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि तस्स सिय सखेज्जा सिय असखेज्जा सिय अणता ।

[२१०२ प्र] भगवन् ! एक-एक असुरकुमार के नारकत्व मे (रहते हुए) कितने वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१०२ उ] गौतम ! वे अनन्त हो चुके हैं।

[प्र] भगवन् ! भावी वेदनासमुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! किसी के होते हैं और किसी के नही होते हैं, जिसके होते हैं, उसके कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं ।

२१०३ [१] एगमेगस्स ण भते ! असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते केवतिया वेदणासमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा ।

[२१०३-१ प्र] भगवन् ! एक एक असुरकुमार के असुरकुमारपर्याय मे कितने वेदना-समुद्घात अतीत हुए है ?

[२१०३-१ उ] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

[प्र] भगवन् ! उनके भावी वेदनासमुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते हैं, जिनके होते हैं उनके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होते हैं ।

[२] एव णागकुमारत्ते वि जाव वेमाणियत्ते ।

[२१०३-२] इसी प्रकार नागकुमारपर्याय यावत वैमानिकपर्याय मे रहते हुए अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात समझने चाहिए ।

२१०४ [१] एव जहा वेदणासमुग्घाएण असुरकुमारे णेरइयादि वेमाणियपज्जवसाणेसु भणिए तहा णागकुमारादीया अवसेसेसु सट्ठाण परट्ठाणेसु भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते ।

[२१०४-१] जिस प्रकार असुरकुमार के नारकपर्याय से लेकर वमानिकपर्याय पयन्त वेदना समुद्घात कहे हैं, उसी प्रकार नागकुमार आदि से लेकर शेष सब स्वस्थानो और परस्थानो मे वेदना समुद्घात यावत् वमानिक के वमानिकपर्याय पयन्त कहने चाहिए ।

[२] एवमेते चउव्वीस चउव्वीसा दडगा भवति ।

[२१०४-२] इसी प्रकार चौवीस दण्डको मे से प्रत्येक के चौवीस दण्डक होते हैं।

२१०५ एगमेगस्स ण भते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवतिया कसायसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एगुत्तरियाए जाव अणता ।

[२१०५ प्र] भगवन् ! एक-एक नारक के नारकपर्याय (नारकत्व) म कितने कषायसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१०५ उ] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं ।

[प्र] भगवन् ! भावी कषायसमुदघात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! किसी के होते है और किसी के नही होते । जिसके होते हैं उसके एक से लेकर यावत् अनन्त है ।

२१०६ एगमेगस्स ण भते । नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवतिया कसायसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि सिय सखेज्जा सिय असखेज्जा सिय अणता ।

[२१०६ प्र] भगवन् ! एक एक नारक के असुरकुमारपर्याय मे कितने कषायसमुद्घात अतीत होते हैं ?

[२१०६ उ] गौतम ! अनन्त होते हैं ।

[प्र] भगवन् ! (उनके) भावी (कषायसमुद्घात) कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे किसी के होते हैं, किसी के नही होते । जिसके होते हैं उसके कदाचित सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं ।

२१०७ एव जाव णेरइयस्स थणियकुमारत्ते । पुढविकाइयत्ते एगुत्तरियाए णेयव्व, एव जाव मणूसत्ते । वाणमतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते (सु २१०६) । जोतिसियत्ते अतीया अणता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि । जस्सऽत्थि सिय असखेज्जा सिय अणता । एव वेमाणियत्ते वि सिय असखेज्जा सिय अणता ।

[२१०७] इसी प्रकार नारक का यावत् स्तनितकुमारपर्याय मे (अतीत अनागत कषाय-समुद्घात समझना चाहिए ।) नारक का पृथ्वीकायिकपर्याय मे एक से लेकर जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत् मनुष्यपर्याय मे समझना चाहिए । वाणव्यन्तरपर्याय मे नारक के असुरकुमारत्व (सु २१०६ म उक्त) के समान जानना । ज्योतिष्कदेवपर्याय मे अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं तथा भावी कषायसमुद्घात किसी का होता है, किसी का नही होता । जिसका होता, उसका कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त होता है । इसी प्रकार वमानिकपर्याय मे भी कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त (भावी कषायसमुद्घात) होते हैं ।

२१०८ असुरकुमारस्स णेरइयत्ते अतीता अणता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि । जस्सऽत्थि सिय सखेज्जा सिय असखेज्जा सिय अणता ।

[२१०८] असुरकुमार के नैरयिकपर्याय मे अतीत कषायसमुद्घात अनन्त होते हैं । भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नही होते । जिसके होते हैं, उसके कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं ।

२१०९ असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते अतीया अणता । पुरेक्खडा एगुत्तरिया ।

[२१०९] असुरकुमार के असुरकुमारपर्याय मे अतीत (कषायसमुद्घात) अनन्त हैं और भावी (कषायसमुद्घात) एक से लेकर कहने चाहिए ।

२११० एव नागकुमारत्ते निरतर जाव वेमाणियत्ते जहा णेरइयस्स भणिय (सु २१०७) तहेव भाणियव्व ।

[२११०] इसी प्रकार नागकुमारत्व से लेकर लगातार वैमानिकत्व तक जसे (२१०७ सूत्र मे) नैरयिक के लिए कहा है, वैसे ही कहना चाहिए ।

२१११ एव जाव थणियकुमारस्स वि [जाव] वेमाणियत्ते । णवरं सव्वेसि सट्ठाणे एगुत्तरिए परट्ठाणे जहेव असुरकुमारस्स (सु २१०८-१०) ।

[२१११] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक भी यावत् वैमानिकत्व मे पूर्ववत् कथन समझना चाहिए । विशेष यह है कि इन सबके स्वस्थान म भावी कषायसमुद्घात एक से लगा कर (उत्तरोत्तर अनन्त तक) हैं और परस्थान मे (सू २१०८-१० के अनुसार) असुरकुमार के (भावी कषायसमुद्घात के) समान हैं ।

२११२ पुढविक्काइयस्स णेरइयत्ते जाव थणियकुमारत्ते अतीता अणंता । पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता ।

[२११२] पृथ्वीकायिक जीव के नारकपर्याय मे यावत् स्तनितकुमारपर्याय मे अनन्त (कषायसमुद्घात) अतीत हुए हैं, उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त नहीं होते हैं, जिसके होते हैं, उसके कदाचित संख्यात कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं ।

२११३ पुढविक्काइयस्स पुढविक्काइयत्ते जाव मणूसत्ते अतीता अणंता । पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एगुत्तरिया । वाणमंतरत्ते जहा णेरइयत्ते (सु २११२) । जोतिसिय-वेमाणियत्ते अतीया अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि सिय असंखेज्जा सिय अणंता ।

[२११३] पृथ्वीकायिक के पृथ्वीकायिक अवस्था मे यावत् मनुष्य अवस्था मे (कषायसमुद्घात) अतीत अनन्त हु । इसके भावी (कषायसमुद्घात) किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते । जिसके होते ह, उसके एक से लगा कर अनन्त होते हैं । वाणव्यन्तर-अवस्था में (सु २११२ में उक्त) नारक-अवस्था के समान जानना चाहिए । ज्योतिष्क और वैमानिक-अवस्था मे (कषायसमुद्घात) अनन्त अतीत हुए हैं । (उसके) भावी (कषायसमुद्घात) किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते । जिसके होते हैं, उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं ।

२११४ एवं जाव मणूसे वि णेयव्वं ।

[२११४] इसी प्रकार (पृथ्वीकायिक के समान) मनुष्यत्व तक मे भी जान लेना चाहिए ।

२११५ [१] वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारे (सु २१०८-१०) । णवरं सट्ठाणे एगुत्तरियाए भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते ।

[२११५-१] वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्कों और वैमानिकों की वक्तव्यता (सू २१०८-१० में उक्त) असुरकुमारों की वक्तव्यता के समान समझना चाहिए । विशेष बात यह है कि स्वस्थान मे (सर्वत्र) एक से लेकर समझना तथा वैमानिक के वैमानिकत्व पर्यन्त कहना चाहिए ।

[२] एवं एते चउवीसं चउवीसा दंडगा ।

[२११५-२] इस प्रकार ये सब पूर्वोक्त चौवीसों दण्डक चौवीसों दण्डकों में कहने चाहिए ।

२११६ [१] मारणंतियसमुग्घाओ सट्ठाणे वि परट्ठाणे वि एगुत्तरियाए नेयव्वो जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते ।

[२११६-१] मारणान्तिकसमुद्घात स्वस्थान मे भी और परस्थान में भी पूर्वोक्त एकोत्तरिका से (यथा—एक से लगाकर) समझ लेना चाहिए, यावत् वैमानिक का वैमानिकपर्याय में (यहाँ तक अन्तिम दण्डक कहना चाहिए ।

[२] एवमेते चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा ।

इसी प्रकार ये चौवीस दण्डक चौवीसों दण्डकों मे कह देना चाहिए ।

२११७ [१] वेउव्वियसमुग्घाओ जहा कसायसमुग्घाओ (सु २१०५-१५) तहा णिरवसेसो भाणियव्वो । णवर जस्स णत्थि तस्स ण वुच्चति ।

[२११७-१] वैक्रियसमुद्घात की समग्र वक्तव्यता कषायसमुद्घात (सू २१०५ से २११५ तक में उक्त) के समान कहनी चाहिए । विशेष यह है कि जिसके (वैक्रियसमुद्घात) नही होता, उसके विषय मे कथन नही करना चाहिए ।

[२] एत्थ वि चउवीस चउवीसा दडगा भाणियव्वा ।

[२११७ २] यहा भी चौवीस दण्डक चौवीस दण्डको मे कहने चाहिए ।

२११८ [१] तेयागसमुग्घाओ जहा मारणतियसमुग्घाओ (सु २११६) । णवर जस्स अत्थि ।

[२११८-१] तैजससमुद्घात का कथन (सू २११६ मे उक्त) मारणान्तिकसमुद्घात के समान कहना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके वह होता है, (उसी के कहना चाहिए) ।

[२] एव एते वि चउवीस चउवीसा दडगा भाणियव्वा ।

[२११८-२] इस प्रकार ये भी चौवीसा दण्डको मे घटित करना चाहिए ।

२११९ [१] एगमेगस्स ण भते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवतिया आहारगसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! णत्थि ।

[२११९-१ प्र] भगवन् ! एक-एक नारक के नारक अवस्था मे कितने आहारकसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२११९-१] गौतम ! (नारक के नारकपर्याय मे अतीत आहारकसमुद्घात) नही होते हैं ।

[प्र] भगवन् ! उसके भावी आहारकसमुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! (भावी आहारकसमुद्घात भी) नही होते ।

[२] एव जाव वेमाणियत्ते । णवर मणूसत्ते अतीया कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा, उक्कोसेण तिण्णि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि ।

[२११९-२] इसी प्रकार (नारक के) यावत वैमानिक अवस्था मे (अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात का कथन समझना चाहिए) । विशेष यह है कि (नारक के) मनुष्यपर्याय में

अतीत (आहारकसमुद्घात) किसी के होता है, किसी के नहीं होता। जिसके होता है, उसके जघन्य एक अथवा दो और उत्कृष्ट तीन होते हैं।

[प्र.] भगवन्! (नारक के मनुष्यपर्याय में) भावी (आहारकसमुद्घात) कितने होते हैं?

[उ.] गौतम! किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होते हैं।

[३] एवं सव्वजीवाणं मणूसेसु भाणियव्वं।

[२११९-३] इसी प्रकार समस्त जीवों और मनुष्यों के (अतीत और भावी आहारकसमुद्घात के विषय में जानना चाहिए।)

[४] मणूसस्स मणूसत्ते अतीया कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि। एवं पुरेक्खडा वि।

[२११९-४] मनुष्य के मनुष्यपर्याय में अतीत आहारकसमुद्घात किसी के हुए हैं, किसी के नहीं हुए। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होते हैं। इसी प्रकार भावी (आहारकसमुद्घात) जानने चाहिए।

[५] एवमेते वि चउवीसं चउवीसा दंडगा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

[२११९-५] इस प्रकार ये चौवीस दण्डक चौवीसों दण्डकों में यावत् वैमानिकपर्याय में (आहारकसमुद्घात तक) कहना चाहिए।

२१२० [१] एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवलिया केवलिसमुग्घाया अतीया?

गोयमा! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

[२१२०-१ प्र.] भगवन्! एक-एक नैरयिक के नारकत्वपर्याय में कितने केवलिसमुद्घात अतीत हुए हैं?

[२१२०-१ उ.] गौतम! नहीं हुए हैं।

[प्र.] भगवन्! इसके भावी (केवलिसमुद्घात) कितने होते हैं?

[उ.] गौतम! वे भी नहीं होते।

[२] एवं जाव वेमाणियत्ते। णवरं मणूसत्ते अतीया णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को।

[२१२०-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्याय तक में (केवलिसमुद्घात कहना चाहिए।) विशेष यह है कि मनुष्यपर्याय में अतीत (केवलिसमुद्घात) नहीं होता। भावी (केवलिसमुद्घात) किसी के होता है, किसी के नहीं होता है। जिसके होता है, उसके एक होता है।

[३] मणूसस्स मणूसत्ते अतीया कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को। एवं पुरेक्खडा वि।

[२१२०-३] मनुष्य के मनुष्यपर्याय मे अतीत केवलिसमुद्घात किसी के होता है, किसी के नहीं होता। जिसके होता है, उसके एक होता है। इसी प्रकार भावी (केवलिसमुद्घात के विषय मे भी कहना चाहिए।)

[४] एवमेते चउवीस चउवीसा दंडगा।

[२१२०-४] इस प्रकार ये चौवीसो दण्डक चौवीसो दण्डको मे (जानना चाहिए।)

विवेचन—एक एक जीव के नारकत्वादि पर्याय मे अतीत अनागत समुद्घात प्ररूपणा—पहले यह प्रश्न किया गया था कि नारक के अतीत समुद्घात कितने हैं? यहा यह प्रश्न किया जा रहा है कि नारक ने नारक-अवस्था मे रहते हुए कितने वेदनासमुद्घात किए? अर्थात - पहले नारकजीव के द्वारा चौवीस दण्डको मे से किसी भी दण्डक मे किए हुए वेदनासमुद्घातो की गणना विवक्षित थी, जबकि यहा पर केवल नारकपर्याय मे किए हुए वेदनासमुद्घातो की गणना विवक्षित है। वर्तमान मे जो नारकजीव है, उसने नरकेतरपर्यायो मे जो वेदनासमुद्घात किये, वे यहाँ विवक्षित नहा। इसी प्रकार परस्थानो मे भी एक-एक पर्याय ही विवक्षित है। यथा—नारक ने असुरकुमार अवस्था म जो वेदनासमुद्घात किये, उन्ही की गणना की जाएगी, अन्य अवस्थाओ मे किये हुए वेदनासमुद्घात विवक्षित नहीं होंगे। इस प्रकरण मे सर्वत्र यह विशेषता ध्यान मे रखनी चाहिए।

(१) वेदनासमुद्घात—नारकपर्याय मे रहे हुए एक नारक के अनन्त वेदनासमुद्घात हुए हैं, क्योकि उसने अनन्त वार नारकपर्याय प्राप्त की है और एक-एक नारकभव मे भी कम से कम सख्यात वेदनासमुद्घात होते हैं। साथ ही किसी एक नारक के मोक्षपर्यन्त अनागतकाल की अपेक्षा से नारकपर्याय मे भावी वेदनासमुद्घात होते हैं, किसी के नही होते। जिस नारक की मृत्यु निकट है, वह कदाचित् वेदनासमुद्घात किये विना ही, मारणान्तिकसमुद्घात के द्वारा नरक से उद्वर्तन करके मनुष्यभव पाकर मुक्त हो जाता है, उस नारक को नारकपर्यायसम्बन्धी भावी वेदनासमुद्घात नही होता। जिस नारक के नारकपर्यायसम्बन्धी भावी समुद्घात हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात या अनन्त होते हैं। जसे नारको के नरकपर्यायसम्बन्धी वेदनासमुद्घातो का निरूपण किया गया, उसी प्रकार नारक के असुरकुमारपर्यायों मे स्तनितकुमार पर्यन्त भवनवासीदेवपर्याय मे, पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियपर्याय मे, विकलेन्द्रियपर्याय मे पचेन्द्रियपर्याय मे, मनुष्यपर्याय मे, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकपर्याय मे भी सम्पूर्ण अतीतकाल की अपेक्षा अनन्त वेदनासमुद्घात अतीत होते हैं। भावी वेदनासमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नही होते। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन होते है और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात या अनन्त होते हैं। इनमे से जिनकी शेष आयु क्षीण हो गई है और जो उसी भव मे मोक्ष जाने वाले है, उनकी अपेक्षा से एक, दो या तीन भावी वेदनासमुद्घात कहे गए हैं। जो जीव पुन नरक मे उत्पन्न होने वाला होता है उसके जघन्यरूप से भी सख्यात भावी वेदनासमुद्घात होते हैं। ये सख्यात समुद्घात भी उसी नारक के समझने चाहिए, जो एक ही वार और वह भी जघन्य स्थिति वाले नरक म उत्पन्न होने वाला हो। जो अनेक वार और दीर्घस्थितिक नरक में उत्पन्न होने वाला हो, उसके भावी वेदनासमुद्घात असख्यात होते हैं, जो अनन्तवार उत्पन्न होने वाला हो उसके अनन्त होते हैं।

एक-एक असुरकुमार के नैरयिक अवस्था में अनन्त वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं, क्योंकि उसने अतीतकाल में अनन्त वार नारक अवस्था प्राप्त की है और एक एक नारकभव में संख्यात वेदनासमुद्घात होते हैं। एक-एक असुरकुमार के नारक अवस्था में भावी वेदनासमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त वेदनासमुद्घात होते हैं। जो असुरकुमार के भव से निकल कर नरकभव में कभी जन्म नहीं लेगा, किन्तु अनन्तर भव में या फिर परम्परा से मनुष्यभव प्राप्त करके सिद्ध हो जाएगा, उसके नारकपर्यायभावी आगामी वेदनासमुद्घात नहीं होते, क्योंकि उसे नारकपर्याय ही प्राप्त होने वाला नहीं है। जो असुरकुमार उस भव के पश्चात् परम्परा से नरक में जाएगा, उसके भावी वेदनासमुद्घात होते हैं तथा उनमें से जो एक वार जघन्य स्थिति वाले नरक में उत्पन्न होगा, उस असुरकुमार के जघन्य भी संख्यात वेदनासमुद्घात होते हैं। क्योंकि नरक में वेदना की बहुलता होती है। कई वार जघन्यस्थिति वाले नरक में जाने पर असंख्यात वेदनासमुद्घात होंगे और अनन्त वार नरक में जाए तो अनन्त वेदनासमुद्घात होंगे।

एक-एक असुरकुमार के असुरकुमारावस्था में अतीतकाल में (यानी जब वह असुरकुमारपर्याय में था, तब) अनन्त वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं तथा इसी अवस्था में भावी वेदनासमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त भावी वेदनासमुद्घात होते हैं। इनमें से जो असुरकुमार संख्यातवार, असंख्यातवार या अनन्तवार पुन:-पुन: असुरकुमाररूप में उत्पन्न होगा, उसके भावी वेदनासमुद्घात क्रमश: संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगे।

जैसे असुरकुमार के असुरकुमारावस्था में वेदनासमुद्घात कहे हैं, उसी प्रकार असुरकुमार के नागकुमारावस्था में भी यावत् वैमानिक अवस्था में अनन्त वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं। भावी समुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होते हैं। युक्ति पूर्ववत् समझनी चाहिए।

जिस प्रकार असुरकुमार के नारक-अवस्था से लेकर वैमानिक अवस्था तक में वेदनासमुद्घात का प्रतिपादन किया गया है, उसी प्रकार नागकुमार आदि के वेदनासमुद्घात का प्ररूपण भी समझ लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि असुरकुमार के असुरकुमाररूप स्वस्थान में कितने अतीत अनागत वेदनासमुद्घात हैं? तथा नारक आदि परस्थानों में कितने वेदनासमुद्घात अतीत अनागत हैं? इस विषय में जैसे ऊपर बतलाया गया है, उसी प्रकार नागकुमार आदि से लेकर वैमानिकों तक भी स्वस्थानों में वेदनासमुद्घात समझ लेने चाहिए।

इस प्रकार चौवीस दण्डकों में से प्रत्येक दण्डक का २४ दण्डकों को लेकर कथन करने पर १०५६ आलापक होते हैं, क्योंकि २४ को २४ से गुणा करने पर १०५६ संख्या होती है।[1]

कषायसमुद्घात—एक-एक नारक के नारकावस्था में अनन्त कषायसमुद्घात सम्पूर्ण अतीत काल की अपेक्षा से व्यतीत हुए हैं तथा भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं।

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा ७ पृ ४४०

जिसके होता है, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात या अनन्त हैं। प्रश्न के समय में जो नारक अपने भव के अंतिम काल में वर्तमान है, वह अपनी नरकायु का क्षय करके कषायसमुद्घात किये बिना ही नरकभव से निकलकर अनन्तर मनुष्यभव या परम्परा से मनुष्यभव पाकर मोक्ष प्राप्त करेगा, अर्थात् पुनः कदापि नरकभव में नहीं आएगा, उस नारक के नारकपर्यायसम्बन्धी भावी कषायसमुद्घात नहीं है। जो नारक ऐसा नहीं है, अर्थात् जिसे नरकभव में दीर्घकाल तक रहना है, अथवा जो पुनः कभी नरकभव को प्राप्त करेगा, उसके भावी कषायसमुद्घात होते हैं। उनमें भी जिनकी लम्बी नरकायु व्यतीत हो चुकी है, केवल थोड़ी सी शेष है, उनके एक, दो या तीन कषायसमुद्घात होते हैं, किन्तु जिनकी आयु संख्यातवर्ष की या असंख्यातवर्ष की शेष है, या जो पुनः नरकभव में उत्पन्न होने वाले हैं उनके क्रमशः संख्यात, असंख्यात या अनन्त भावी कषायसमुद्घात समझने चाहिए।

एक एक नारक के असुरकुमारपर्याय में अनन्त कषायसमुद्घात अतीत हुए हैं। जो नारक भविष्य में असुरकुमार में उत्पन्न होगा उस नारक के असुरकुमारपर्याय सम्बन्धी भावी कषायसमुद्घात हैं और जो नहीं उत्पन्न होगा, उसके नहीं हैं। जिसके हैं, उसके कदाचित् संख्यात, असंख्यात या अनन्त भावी कषायसमुद्घात होते हैं। जो नारक भविष्य में जघन्य स्थिति वाला असुरकुमार होगा, उसकी अपेक्षा से संख्यात कषायसमुद्घात जानने चाहिए, क्योंकि जघन्य स्थिति में संख्यात समुद्घात ही होते हैं, इसका कारण यह है कि उसमें लोभादि कषाय का बाहुल्य पाया जाता है। असंख्यात कषायसमुद्घात उस असुरकुमार की अपेक्षा से कहे हैं, जो एक बार दीर्घकालिकरूप में अथवा कई बार जघन्य स्थिति के रूप में उत्पन्न होगा। जो नारक भविष्य में अनन्तबार असुरकुमारपर्याय में उत्पन्न होगा, उसकी अपेक्षा से अनन्त कषायसमुद्घात समझना चाहिए।

जैसे नारक के असुरकुमारपने में भावी कषायसमुद्घात कहे हैं, वैसे ही नागकुमार से स्तनितकुमारपर्याय तक में अनन्त अतीत कषायसमुद्घात कहने चाहिए। भावी जिसके हों उसके जघन्य संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात या अनन्त समझने चाहिए।

नारक के पृथ्वीकायिकपर्याय में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं तथा भावी कषायसमुद्घात किसी के हैं, किसी के नहीं हैं। पूर्ववत् एक से लगाकर हैं। अर्थात् जघन्य एक, दो या तीन हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त हैं। जो नारक नरक से निकल कर पृथ्वीकायिक होगा, उसके इस प्रकार से भावी कषाय समुद्घात होंगे, यथा—जो पंचेन्द्रियतिर्यञ्चभव से, मनुष्यभव से अथवा देवभव से कषायसमुद्घात को प्राप्त होकर एक ही बार पृथ्वीकायिकभव में गमन करेगा, उसका एक, दो बार गमन करने वाले के दो, तीन बार गमन करने वाले के तीन, संख्यात बार जाने वाले के संख्यात असंख्यात बार गमन करने वाले के असंख्यात और अनन्त बार गमन करने वाले के अनन्त भावी कषायसमुद्घात समझने चाहिए। जो नारक नरकभव से निकल कर पुनः कभी पृथ्वीकाय का भव ग्रहण नहीं करेगा, उसके भावी कषायसमुद्घात नहीं होते।

जैसे नारक के पृथ्वीकायिकरूप में कषायसमुद्घात कहे, उसी प्रकार नारक के अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्यरूप में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त होते हैं। भावी कषायसमुद्घात किन्हीं के होते हैं किन्हीं के नहीं होते हैं।

युक्ति पूर्ववत् है। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होते हैं।

नारक के असुरकुमारपर्याय में जैसे अतीत-अनागत कषायसमुद्घातों का प्रतिपादन किया है, वैसे ही यहाँ (वाणव्यन्तर-अवस्था में) कहना चाहिए। नारक के ज्योतिष्क और वैमानिक पर्याय में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं और भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं।

यहाँ तक नारक जीव के चौवीस दण्डकों के रूप में अतीत और अनागत काल की अपेक्षा से कषायसमुद्घात का निरूपण किया गया। असुरकुमार के नारकपने में सकल अतीतकाल की अपेक्षा अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं, भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते। जिस असुरकुमार को नारकरूप में भावी कषायसमुद्घात हैं, उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त हैं। असुरकुमार के असुरकुमारत्व में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं। वर्तमान में जो जीव असुरकुमारपर्याय में है, वह भूतकाल में असुरकुमारपर्याय में अनन्तबार कषाय समुद्घात कर चुका है। भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त कहने चाहिए। इसी प्रकार नागकुमारपर्याय में यावत् लगातार वैमानिकपर्याय में जैसे नारक के कषायसमुद्घात कहे हैं, वैसे ही असुरकुमार के भी कहने चाहिए। असुरकुमार के अतीत और भावी कषायसमुद्घात के समान नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भी नारकपने से लेकर वैमानिकपने तक चौवीस दण्डकों में अतीत और भावी कषायसमुद्घात जानने चाहिए। विशेष यह है कि इन सबके स्वस्थानों में भावी कषायसमुद्घात जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त कहने चाहिए। उदाहरणार्थ—असुरकुमारों का असुरकुमारपर्याय और नागकुमारों का नागकुमारपर्याय स्वस्थान है। शेष तेईस दण्डक परस्थान हैं।

पृथ्वीकायिक के असुरकुमारपर्याय में यावत् स्तनितकुमारपर्याय में सकल अतीतकाल की अपेक्षा से अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं। भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित अनन्त होते हैं। पृथ्वीकायिक के पृथ्वीकायिकपर्याय में यावत् अप्कायिकत्व, तेजस्कायिकत्व, वायुकायिकत्व, वनस्पतिकायिकत्व से मनुष्यपर्याय तक में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं। भावी कषायसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं। पृथ्वीकायिक के वाणव्यन्तरपन में अतीत और अनागत कषायसमुद्घात उतने ही समझने चाहिए, जितने नारकपन में कहे हैं। ज्योतिष्क और वैमानिक पर्याय में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त होते हैं तथा भावी किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते हैं। जिन पृथ्वीकायिक के होते हैं, उनके जघन्य असंख्यात और उत्कृष्ट अनन्त होते हैं। पृथ्वीकायिक की तरह यावत् अप्कायिक के नारकपन में, भवनवासीपन में, एकेन्द्रियपन में, विकलेन्द्रियपन में, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपन में और मनुष्यपन में भी जान लेना चाहिए।

वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकों की कषायसमुद्घातसम्बन्धी वक्तव्यता असुरकुमारों के समान समझनी चाहिए। विशेषता यही है कि स्वस्थान में सर्वत्र एक से लेकर कहना चाहिए।

अर्थात् किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो अथवा तीन होते हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होते है। इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च से लेकर वैमानिकपर्यन्त के नारकपन से लेकर यावत् वैमानिकपन तक मे अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं और भावी कषायसमुद्घात जघन्य एक, दो या तीन हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं।

इस प्रकार ये सब पूर्वोक्त चौवीसों दण्डक चौवीसों दण्डको मे घटाये जाते हैं। अत सब मिलकर १०५६ दण्डक होते है।[1]

मारणान्तिकसमुद्घात स्वस्थान मे और परस्थान मे भी पूर्वोक्त एकोत्तरिका से समझने चाहिए। चौवीस दण्डकों के वाच्य नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के नारकपन आदि स्वस्थानो में और असुरकुमारपन आदि परस्थानो मे अतीत मारणान्तिकसमुद्घात अनन्त हैं। तात्पर्य यह है कि नारक के स्वस्थान नारकपर्याय और परस्थान असुरकुमारादि पर्याय मे अर्थात् वैमानिक तक के सभी स्थानो मे अतीत मारणान्तिक समुद्घात अनन्त होते हैं। भावी मारणान्तिकसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते है। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात और अनन्त होते हैं।

जैसे नारक के नारकत्व आदि चौवीस स्व-परस्थानो मे अतीत और अनागत मारणान्तिक समुद्घात का कथन किया है, उसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर वैमानिकों तक चौवीस दण्डकों के क्रम से स्व परस्थानो मे, अतीत-अनागत-कालिक मारणान्तिकसमुद्घात का प्ररूपण कर लेना चाहिए। इस प्रकार कुल मिलाकर ये १०५६ आलापक होते हैं।[2]

वैक्रियसमुद्घात का कथन पूर्णरूप से कषायसमुद्घात के समान ही समझना चाहिए। इसमे विशेष बात यह है कि जिस जीव मे वैक्रियलब्धि न होने से वैक्रियसमुद्घात नहीं होता उसको वैक्रियसमुद्घात नहीं कहना चाहिए। जिन जीवो मे वह सम्भव है, उन्ही मे कहना चाहिए। इस प्रकार वायुकायिको के सिवाय पृथ्वीकायिक आदि चार एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियो मे वैक्रिय-समुद्घात नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इनमे वैक्रियलब्धि नहीं होती। अतएव इनके अतिरिक्त नारकों, भवनपतियो, वायुकायिको, पंचेन्द्रियतिर्यंचों, मनुष्यों, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिकों मे वैक्रियसमुद्घात कहना चाहिए। इसी दृष्टि से यहाँ कहा गया है—एत्थ वि चउवीस चउवीसा दंडगा भाणियव्वा। वैक्रियसमुद्घात मे भी चौवीसों दण्डकों की चौवीसों दण्डको में प्ररूपणा करनी चाहिए। इस प्रकार कुल मिला कर १०५६ आलापक होते हैं।[3]

---

१ (क) अभि रा कोष, भा ७, पृ ४४१
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५
२ (क) वही, भा ५
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा ७ पृ ४४२
३ (क) वही अभि रा कोष, भा ७, पृ ४४३
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५

तैजससमुद्घात की प्ररूपणा मारणान्तिकसमुद्घात के सदृश जानना चाहिए। किन्तु इसमें भी विशेषता यह है कि जिस जीव में तैजससमुद्घात हो, उसी का कथन करना चाहिए। जिसमें तैजससमुद्घात सम्भव ही न हो, उसका कथन नहीं करना चाहिए। नारकों, पृथ्वीकायिकादि चार एकेन्द्रियों एवं विकलेन्द्रियों में तैजससमुद्घात सम्भव ही नहीं है, अतएव उनमें कथन नहीं करना चाहिए। पूर्वोक्त प्रकार से किसी दण्डक में विधिरूप से किसी में निषेधरूप से आलापक कहने से कुल १०५६ आलापक होते हैं। ये आलापक चौबीस दण्डकों के क्रम से चौबीसों दण्डकों के कथन के हैं।

आहारकसमुद्घात नारक के नारकपर्याय में आहारकसमुद्घात का सम्भव न होने से अतीत आहारकसमुद्घात नहीं होता। इसी प्रकार भावी आहारकसमुद्घात भी नहीं होता, क्योंकि नारकपर्याय में जीव को आहारकलब्धि नहीं हो सकती और उसके अभाव में आहारकसमुद्घात भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार असुरकुमारादि भवनपतिपर्याय में, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियपर्याय में, विकलेन्द्रियपर्याय, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय में तथा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक पर्याय में भी भावी आहारकसमुद्घात नहीं होते, क्योंकि इन सब पर्यायों में आहारकसमुद्घात का निषेध है। विशेष यह है कि जब कोई नारक पूर्वकाल में मनुष्यपर्याय में रहा, उस पर्याय की अपेक्षा किसी के आहारकसमुद्घात होते हैं, किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक या दो और उत्कृष्ट तीन होते हैं।

किसी नारक के मनुष्यपर्याय में भावी आहारकसमुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होते हैं। जिस प्रकार नारक के मनुष्यपर्याय में आहारकसमुद्घात कहे हैं, उसी प्रकार असुरकुमार आदि सभी जीवों के अतीत एवं भावी मनुष्यपर्याय में भी कहना चाहिए। किन्तु मनुष्यपर्याय में किसी मनुष्य के अतीत आहारकसमुद्घात होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन आहारकसमुद्घात होते हैं। अतीत आहारकसमुद्घात की तरह भावी आहारकसमुद्घात भी किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार आहारकसमुद्घात होते हैं। इस प्रकार इन २४ दण्डकों में से प्रत्येक को चौबीस दण्डकों में क्रमशः घटित करके कहना चाहिए। ये सब मिलकर १०५६ आलापक होते हैं। यह ध्यान रहे कि मनुष्य के सिवाय किसी में भी आहारकसमुद्घात नहीं होता है।[1]

केवलिसमुद्घात—नारक के नारकपर्याय में अतीत अथवा अनागत केवलिसमुद्घात नहीं होता, क्योंकि नारक केवलिसमुद्घात कर ही नहीं सकता। इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्याय में वैमानिक के अतीत और अनागत केवलिसमुद्घात का अभाव है, क्योंकि इनमें केवलिसमुद्घात का होना कदापि सम्भव नहीं है। हाँ, नारक आदि के मनुष्यपर्याय में केवलिसमुद्घात होता है, किन्तु उनमें भी अतीत केवलिसमुद्घात नहीं होता। भावी केवलिसमुद्घात किसी नारक के मनुष्यपर्याय में होता है किसी के नहीं होता है। जिसके होता है, उसके एक ही होता है। मनुष्य के मनुष्यपर्याय में अतीत और भावी केवलिसमुद्घात किसी के होता है, किसी के नहीं होता है। जिसके होता है एक ही होता है। इस प्रकार मनुष्यपर्याय के सिवाय सभी स्व-पर स्थानों में केवलिसमुद्घात का अभाव कहना

---

1. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. ७ पृ. ४४२

चाहिए। इस प्रकार केवलिसमुद्घात सम्बन्धी चौवीस दण्डकों में से प्रत्येक में चौवीस दण्डक घटित किए गए हैं। ये सब विधिनिषेध के कुल आलापक १०५६ हैं।[1]

चौवीस दण्डकों की चौवीस दण्डक-पर्यायों में बहुत्व की अपेक्षा से अतीतादि समुद्घात-प्ररूपणा

२१२१ [१] णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवतिया वेदणासमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! अणंता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अणंता । एवं जाव वेमाणियत्ते ।

[२१२१-१ प्र.] भगवन् ! (बहुत-से) नारकों के नारकपर्याय में रहते हुए कितने वेदनासमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१२१-१ उ.] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! (नारकों के) भावी (वेदनासमुद्घात) कितने होते हैं ?

[उ.] गौतम ! अनन्त होते हैं । इसी प्रकार वैमानिकपर्याय तक में (भी अतीत और अनागत अनन्त होते हैं ।)

[२] एवं सव्वजीवाणं भाणियव्वं जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते ।

[२१२१-२] इसी प्रकार सब जीवों के (अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात) यावत् वैमानिकों के वैमानिकपर्याय में (कहने चाहिए ।)

२१२२ एवं जाव तेयगसमुग्घाओ । णवरं उवउज्जिऊण णेयव्वं जस्सऽत्थि वेउव्विय-तेयगा ।

[२१२२] इसी प्रकार तैजससमुद्घात पर्यन्त कहना चाहिए । विशेष उपयोग लगा कर समझ लेना चाहिए कि जिसके वैक्रिय और तैजससमुद्घात सम्भव हों (उसी के कहना चाहिए ।)

२१२३ [१] णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवतिया आहारगसमुग्घाता अतीया ?

गोयमा ! णत्थि ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! णत्थि ।

[२१२३-१ प्र.] भगवन् ! (बहुत) नारकों के नारकपर्याय में रहते हुए कितने आहारकसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१२३-१ उ.] गौतम ! एक भी नहीं हुआ है ।

[प्र.] भगवन् ! (नारकों के) भावी (आहारकसमुद्घात) कितने होते हैं ?

[उ.] गौतम ! नहीं होते ।

[२] एवं जाव वेमाणियत्ते । णवरं मणूसत्ते अतीया असंखेज्जा, पुरेक्खडा असंखेज्जा ।

[२१२३-२] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्याय में (अतीत अनागत आहारकसमुद्घात का कथन करना चाहिए ।) विशेष यह है कि मनुष्यपर्याय में असंख्यात अतीत और असंख्यात भावी (आहारकसमुद्घात होते हैं ।)

---

1 प्र. रा. कोष भाग ७, पृ. ४४३

[३] एवं जाव वेमाणियाणं। णवरं वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीया अणंता, पुरेक्खडा अणंता। मणूसाणं मणूसत्ते अतीया सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा, एवं पुरेक्खडा वि। सेसा सव्वे जहा णेरइया।

[२१२३-३] इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्यपर्याय में अनन्त अतीत और अनन्त भावी (आहारकसमुद्घात) होते हैं। मनुष्यों के मनुष्यपर्याय में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात अतीत (आहारकसमुद्घात) होते हैं। इसी प्रकार भावी (आहारकसमुद्घात भी समझने चाहिए।) शेष सब नारकों के (कथन के) समान (समझना चाहिए)।

[४] एवं एते चउवीसं चउवीसा दंडगा।

[२१२३-४] इस प्रकार इन चौवीसों के चौवीस दण्डक होते हैं।

२१२४ [१] णेरइयाणं भंते! णेरइयत्ते केवलिसमुग्घाया अतीया?

गोयमा! णत्थि।

केवतिया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

[२१२४-१ प्र] भगवन्! नारकों के नारकपर्याय में रहते हुए कितने केवलिसमुद्घात अतीत हुए हैं?

[२१२४-१ उ] गौतम! नहीं हुए हैं।

[प्र] भगवन्! कितने भावी (केवलिसमुद्घात) होते हैं?

[उ] गौतम! वे भी नहीं होते हैं।

[२] एवं जाव वेमाणियत्ते। णवरं मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरेक्खडा असंखेज्जा।

[२१२४-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्याय पर्यन्त कहना चाहिए। विशेष यह है कि मनुष्यपर्याय में अतीत (केवलिसमुद्घात) नहीं होते, किन्तु भावी असंख्यात होते हैं।

[३] एवं जाव वेमाणिया। णवरं वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीया णत्थि, पुरेक्खडा अणंता। मणूसाणं मणूसत्ते अतीया सिय अत्थि सिय णत्थि। जदि अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

केवतिया पुरेक्खडा?

गोयमा! सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा।

[२१२४-३] इसी प्रकार वैमानिकों तक (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्यपर्याय में अतीत (केवलिसमुद्घात) नहीं होते। भावी अनन्त होते हैं। मनुष्यों के मनुष्यपर्याय में अतीत (केवलिसमुद्घात) कदाचित् होते हैं कदाचित् नहीं होते। जिसके होता है, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व होते हैं।

[प्र] भगवन् ! (मनुष्यों के) भावी (केवलिसमुद्घात) कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात होते हैं।

[४] एव एते चउवीस चउवीसा दडगा सव्वे पुच्छाए भाणियव्वा जाव वेमाणियाण वेमाणियत्ते।

[२१२४-४] इस प्रकार इन चौवीस दण्डकों मे चौवीस दण्डक घटित करके पृच्छा के अनुसार वैमानिकों मे वैमानिकपर्याय मे, यहाँ तक कहने चाहिए।

विवेचन—बहुत्व की अपेक्षा से अतीत अनागत वेदनादिसमुद्घात निरूपण—इससे पूर्व एक-एक नैरयिक आदि के नरयिकादि पर्याय मे अतीत अनागत वेदनादि समुद्घातों का निरूपण किया गया था। अब बहुत्व की अपेक्षा से नारकादि के उस-उस पर्याय मे रहते हुए अतीत अनागत वेदनादि समुद्घातों का निरूपण किया गया है।

(१) **वेदनादि पाच समुद्घात**—नारकों के नारकपर्याय मे रहते हुए अतीत वेदनासमुद्घात अनन्त हुए हैं, क्योंकि अनेक नारकों को अव्यवहारराशि से निकले अनन्तकाल व्यतीत हो चुका है। इसी प्रकार उनके भावी वेदनासमुद्घात भी अनन्त हैं, क्योंकि वर्तमानकाल मे जो नारक हैं, उनमे से बहुत से नारक अनन्तबार पुन नरक मे उत्पन्न होंगे। नारकों के नारकपर्याय में वेदनासमुद्घात कहे हैं, वैसे ही असुरकुमारादि भवनवासीपर्याय मे, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियपर्याय मे, विकलेन्द्रियपर्याय मे, पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय मे, मनुष्यपर्याय मे, वाणव्यन्तरपर्याय मे, ज्योतिष्कपर्याय मे और वैमानिकपर्याय मे, अर्थात् इन सभी पर्यायों मे रहते हुए नारकों के अतीत और अनागत वेदना समुद्घात अनन्त हैं।

नारकों के समान नारकपर्याय से वैमानिकपर्याय तक मे रहे हुए असुरकुमारादि भवनवासियों से लेकर वैमानिकों तक के अतीत अनागत वेदनासमुद्घात का कथन करना चाहिए। अर्थात् नारकों के समान ही वैमानिकों तक सभी जीवों के स्वस्थान और परस्थान मे (चौवीस दण्डकों मे) अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात कहने चाहिए।

इस प्रकार बहुवचन सम्बन्धी वेदनासमुद्घात के आलापक भी कुल मिलाकर १०५६ होते हैं।

वेदनासमुद्घात के समान अतीत और अनागत कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस समुद्घात भी नारकों से लेकर वैमानिकों तक तथा नारकपर्याय से लेकर वैमानिकपर्याय तक चौवीस दण्डकों मे कहना चाहिए। इस प्रकार कषायसमुद्घात आदि के भी प्रत्येक के १०५६ आलापक होते हैं।

विशेष सूचना—उपयोग लगाकर अर्थात् ध्यान रखकर जो समुद्घात जिसमे (जहाँ) सम्भव है, उसमे (वहाँ) वे ही अतीत अनागत समुद्घात कहने चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ जिसमे जो समुद्घात सम्भव न हो, वहाँ उसमे वे समुद्घात नहीं कहने चाहिए। इसी का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—**उवउज्जिऊण णेयव्व, जस्सऽत्थि वेउव्वियतेयगा**—अर्थात् जिन नारकादि में वैक्रिय और तैजस समुद्घात सम्भव हैं उन्ही मे उनका कथन करना चाहिए। इनके अतिरिक्त पृथ्वीकायिकादि मे नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उनमें वे सम्भव नहीं हैं। अतीत और अनागत

कषायसमुद्घात एवं मारणान्तिकसमुद्घात का कथन वेदनासमुद्घात की तरह सर्वत्र समानरूप से कहना चाहिए।[1]

आहारकसमुद्घात—नारकों के नारक अवस्था में अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि आहारकसमुद्घात आहारकशरीर से ही होता है और आहारकशरीर आहारकलब्धि की विद्यमानता में ही होता है। आहारकलब्धि चतुर्दशपूर्वधर मुनियों को ही प्राप्त होती है, चौदह पूर्वों का ज्ञान मनुष्यपर्याय में ही हो सकता है, अन्य पर्याय में नहीं। इस कारण मनुष्येतर पर्यायों में सर्वत्र अतीत अनागत आहारकसमुद्घात का अभाव है।

जैसे नारकों के नारक पर्याय में आहारकसमुद्घात सम्भव नहीं है, उसी प्रकार नारकों के असुरकुमारादि भवनवासीपर्याय में, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियपर्याय में, विकलेन्द्रियपर्याय में तिर्यञ्च पंचेन्द्रियपर्याय में, वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकपर्याय में भी नारकों के अतीत और भावी आहारकसमुद्घात भी पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार नहीं हैं।

विशेष—(नारकों के) मनुष्यपर्याय में अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात असंख्यात हैं, क्योंकि पृच्छा के समय जो नारक विद्यमान हैं, उनमें से असंख्यात नारक ऐसे हैं जिन्होंने पूर्वकाल में कभी न कभी मनुष्यपर्याय प्राप्त की थी, जो चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे और जिन्होंने एक बार या दो तीन बार आहारकसमुद्घात भी किया था। इस कारण नारकों के मनुष्यावस्था में असंख्यात अतीत आहारकसमुद्घात कहे गए हैं। इसी प्रकार पृच्छा के समय विद्यमान नारकों में से असंख्यात ऐसे हैं, जो नरक से निकल कर अनन्तरभव में या परम्परा से मनुष्यभव प्राप्त करके चौदह पूर्वों के धारक होंगे और आहारकलब्धि प्राप्त करके आहारकसमुद्घात करेंगे। इसी कारण नारकों के मनुष्यपर्याय में भावी समुद्घात असंख्यात कहे गए हैं।

नारकों के समान असुरकुमारों से लेकर वैमानिकों तक चौवीसों दण्डकों के क्रम से स्व-परस्थानों में आहारकसमुद्घातों का (मनुष्यपर्याय को छोड़कर) निरूपण करना चाहिए। विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्यपर्याय में अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात अनन्त कहना चाहिए, क्योंकि अनन्त जीव ऐसे हैं जिन्होंने मनुष्यभव में चौदह पूर्वों का अध्ययन किया था और यथासम्भव एक, दो या तीन बार आहारकसमुद्घात भी किया था, किन्तु अब वे वनस्पतिकायिक अवस्था में हैं। अनन्त जीव ऐसे भी हैं, जो वनस्पतिकाय से निकल कर मनुष्यभव धारण करके भविष्य में आहारकसमुद्घात करेंगे। मनुष्यों के मनुष्यावस्था में पृच्छा समय से पूर्व अतीत समुद्घात कदाचित् संख्यात हैं और कदाचित् असंख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के मनुष्यपर्याय में रहते हुए भावी आहारकसमुद्घात कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं, क्योंकि वे पृच्छा के समय उत्कृष्टरूप से भी सबसे कम श्रेणी के असंख्यातवें भाग में रहे हुए आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। इस कारण प्रश्न के समय कदाचित् असंख्यात समझना चाहिए तथा प्रत्येक ने यथासम्भव एक, दो या तीन बार आहारकसमुद्घात किया है, या करेंगे, इस दृष्टि से कदाचित् असंख्यात भी हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त शेष सब असुरकुमारों आदि का कथन नारकों के समान समझना चाहिए।

---

1. (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५ पृ. ९१२-९१३
   (ख) प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. ७ पृ. ४४८

इस प्रकार यहाँ चौवीसो दण्डको मे से प्रत्येक को चौवीस ही दण्डको पर घटित करना चाहिए। सब मिलकर १०५६ आलापक होते हैं।[1]

केवलिसमुद्घात—नारको के नारकपर्याय मे अतीत और भावी केवलिसमुद्घात नही होता, क्योंकि केवलिसमुद्घात केवल मनुष्यावस्था मे ही हो सकता है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य अवस्था मे वह सम्भव ही नही है। जो जीव केवलिसमुद्घात कर चुका हो, वह ससार-परिभ्रमण नही करता, क्योकि केवलिसमुद्घात के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मे ही नियम से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अतएव नारको के मनुष्य से भिन्न अवस्था मे अतीत और अनागत केवलिसमुद्घात ही नही है। इसी प्रकार असुरकुमारादि से लेकर (मनुष्यपर्याय के सिवाय) वैमानिक अवस्था मे भी अतीत केवलिसमुद्घात नही हो सकता। अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य केवलिसमुद्घात कर चुके हो, उनका नरक मे गमन नही होता। अत मनुष्यावस्था मे भी अतीत केवलिसमुद्घात सम्भव नही है। पृच्छा के समय मे जो नारक विद्यमान हो, उनमे से असख्यात ऐसे हैं, जो मोक्षगमन के योग्य हैं। इस दृष्टि से भावी केवलिसमुद्घात असख्यात कहे गए हैं। इसी प्रकार असुरकुमार आदि भवनवासियो के पृथ्वीकायिक आदि चार एकेन्द्रियो (वनस्पतियो के सिवाय), तीन विकलेन्द्रियो, पचेन्द्रियतिर्यञ्चो, वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिको के भी मनुष्येतरपर्याय मे अतीत अथवा अनागत केवलिसमुद्घात पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार नही हो सकते। वनस्पतिकायिको के मनुष्यावस्था में अतीत केवलिसमुद्घात तो नही होते, क्योकि केवलिसमुद्घात के पश्चात उसी भव मे मुक्ति प्राप्त हो जाती है, फिर वनस्पतिकायिको मे जन्म लेना सभव नही है, किन्तु भावी केवलिसमुद्घात अनन्त हैं। इसका कारण यह है कि पृच्छा के समय जो वनस्पतिकायिक जीव हैं, उनमे अनन्त जीव ऐसे भी हैं, जो वनस्पतिकाय से निकल कर अनन्तरभव मे या परम्परा से केवलिसमुद्घात करके सिद्धि प्राप्त करेंगे।

मनुष्यो के मनुष्यावस्था मे अतीत केवलिसमुद्घात कदाचित् होता है, कदाचित् नही होता। जब कई मनुष्य केवलिसमुद्घात कर चुके हो और मुक्त हो चुके हो और अन्य किसी केवली ने केवलिसमुद्घात न किया हो, तब केवलिसमुद्घात का अभाव समझना चाहिए। जब मनुष्यो के मनुष्यपर्याय मे केवलिसमुद्घात होते हैं तब जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ तक) होते हैं।

मनुष्यो के मनुष्यपर्याय मे रहते हुए भावी केवलिसमुद्घात कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात होते हैं। पृच्छा के समय मे कदाचित् सख्यात मनुष्य ऐसे हो सकते हैं, जो भविष्य मे मनुष्यावस्था मे केवलिसमुद्घात करेंगे, कदाचित् असख्यात भी हो सकते हैं।

इस प्रकार के चौवीस-चौवीस दण्डक हैं, जिनमे अतीत और अनागत केवलिसमुद्घातो का प्रतिपादन किया गया है। ये सब मिलकर १०५६ आलापक होते हैं। ये आलापक नरयिकपर्याय से लेकर वैमानिकपर्याय तक स्व-परस्थानो मे कहने चाहिए।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा ७, पृ ४४४
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ९९५

२ (क) वही, भा ५, पृ ९९९ से १००१
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष भा ७, पृ ४४४

विविध-समुद्घात-समवहत-असमवहत जीवादि के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२१२५ एतेसि णं भंते ! जीवाणं वेयणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतियसमुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं तेयगसमुग्घाएणं आहारगसमुग्घाएणं केवलिसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसमुग्घाएणं समोहया, केवलिसमुग्घाएणं समोहया, संखेज्जगुणा, तेयगसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया अणंतगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२५ प्र] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से, वैक्रियसमुद्घात से, तैजससमुद्घात से, आहारकसमुद्घात से और केवलिसमुद्घात से समवहत एवं असमवहत (अर्थात् जो किसी भी समुद्घात से युक्त नहीं है—समुद्घात से रहित) जीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२१२५ उ] गौतम ! सबसे कम आहारकसमुद्घात से समवहत जीव हैं, (उनसे) केवलिसमुद्घात से समवहत जीव संख्यातगुणा हैं, (उनसे) तैजससमुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणा हैं (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत जीव अनन्तगुणा हैं, (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं और (इन सबसे) असमवहत जीव असंख्यातगुणा हैं ।

२१२६ एतेसि णं भंते ! णेरइयाणं वेदणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतियसमुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा णेरइया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया संखेज्जगुणा ?

[२१२६ प्र] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से एवं वैक्रियसमुद्घात से समवहत और असमवहत नैरयिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२१२६ उ] गौतम ! सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत नैरयिक ... वैक्रियसमुद्घात से समवहत नैरयिक असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) कषायसमुद्घात से संख्यातगुणा हैं, (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत नारक संख्यातगुणा हैं ... असमवहत नारक संख्यातगुणा हैं ।

२१२७ [१] एतेसि णं भंते ! असुरकुमाराणं वेदणासमुग्घाएणं ... मारणंतियसमुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं तेयगसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य ... अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा असुरकुमारा तेयगसमुग्घाएण समोहया, मारणंतियसमुग्घाएण समोहया असंखेज्जगुणा, वेयणासमुग्घाएण समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएण समोहया संखेज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएण समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२७-१ प्र] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से, वैक्रियसमुद्घात से तथा तैजससमुद्घात से समवहत एवं असमवहत असुरकुमारों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२१२७-१ उ] गौतम ! सबसे कम तैजससमुद्घात से समवहत असुरकुमार हैं, (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं, (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं और (इन सबसे) असंख्यातगुणा अधिक हैं— असमवहत असुरकुमार ।

[२] एवं जाव थणियकुमारा ।

[२१२७-२] इसी प्रकार (का कथन नागकुमार से लेकर) स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए ।

२१२८ [१] एतेसि णं भंते ! पुढविक्काइयाणं वेदणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविक्काइया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२८-१ प्र] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से एवं मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत तथा असमवहत पृथ्वीकायिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१२८-१ उ] गौतम ! सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक हैं, उनसे कषायसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक संख्यातगुणा हैं, उनसे वेदनासमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं और इन सबसे असमवहत पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणा हैं ।

[२] एवं जाव वणस्सइकाइया । णवरं सव्वत्थोवा वाउक्काइया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२८-२] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) वनस्पतिकायिक तक पृथ्वीकायिकवत् समझना चाहिए । विशेष यह है कि वायुकायिक जीवों में सबसे कम वैक्रियसमुद्घात से समवहत वायुकायिक हैं, उनसे मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत वायुकायिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे कषाय-

विविध-समुद्घात-समवहत-असमवहत जीवादि के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२१२५ एतेसि ण भंते ! जीवाण वेयणासमुग्घाएण कसायसमुग्घाएण मारणतियसमुग्घाएण वेउव्वियसमुग्घाएण तेयगसमुग्घाएण आहारगसमुग्घाएण केवलिसमुग्घाएण समोहयाण असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसमुग्घाएण समोहया, केवलिसमुग्घाएण समोहया, सखेज्जगुणा, तेयगसमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा, मारणतियसमुग्घाएण समोहया अणतगुणा, कसायसमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा, वेवणासमुग्घाएण समोहया विसेसाहिया, असमोहया असखेज्जगुणा ।

[२१२५ प्र] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से, वैक्रियसमुद्घात से, तैजससमुद्घात से, आहारकसमुद्घात से और केवलिसमुद्घात से समवहत एव असमवहत (अर्थात् जो किसी भी समुद्घात से युक्त नही है—सबसमुद्घात से रहित) जीवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१२५ उ] गौतम ! सबसे कम आहारकसमुद्घात से समवहत जीव हैं, (उनसे) केवलि-समुद्घात से समवहत जीव सख्यातगुणा है, (उनसे) तजससमुद्घात से समवहत जीव असख्यातगुणा हैं, (उनसे) वक्रियसमुद्घात से समवहत जीव असख्यातगुणा हैं, (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत जीव अनन्तगुणा हैं, (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत जीव असख्यातगुणा है, (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक है और (इन सबसे) असमवहत जीव असख्यातगुणा हैं।

२१२६ एतेसि ण भंते ! णेरइयाण वेदणासमुग्घाएण कसायसमुग्घाएण मारणतियसमुग्घाएण वेउव्वियसमुग्घाएण समोहयाण असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा णेरइया मारणतियसमुग्घाएण समोहया, वेउव्वियसमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएण समोहया सखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएण समोहया सखेज्जगुणा, असमोहया सखेज्जगुणा ?

[२१२६ प्र] भगवन् ! इन वदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से एव वक्रियसमुद्घात से समवहत और असमवहत नरयिको मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१२६ उ] गौतम ! सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत नरयिक हैं, (उनसे) वक्रियसमुद्घात से समवहत नैरयिक असख्यातगुणा हैं, (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत नरयिक सख्यातगुणा हैं, (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत नारक सख्यातगुणा हैं और (इन सबसे) असमवहत नारक सख्यातगुणा हैं ।

२१२७ [१] एतेसि ण भंते ! असुरकुमाराण वेदणासमुग्घाएण कसायसमुग्घाएण मारणतियसमुग्घाएण वेउव्वियसमुग्घाएण तेयगसमुग्घाएण समोहयाण असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा असुरकुमारा तेयगसमुग्घाएणं समोहया, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, वेयणासमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२७-१ प्र.] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से, वैक्रियसमुद्घात से तथा तैजससमुद्घात से समवहत एवं असमवहत असुरकुमारों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२१२७-१ उ.] गौतम ! सबसे कम तैजससमुद्घात से समवहत असुरकुमार हैं, (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं, (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं, (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं और (इन सबसे) असंख्यातगुणा अधिक हैं— असमवहत असुरकुमार ।

[२] एवं जाव थणियकुमारा ।

[२१२७-२] इसी प्रकार (का कथन नागकुमार से लेकर) स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए ।

२१२८. [१] एतेसि णं भंते ! पुढविक्काइयाणं वेदणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविक्काइया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२८-१ प्र.] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से एवं मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत तथा असमवहत पृथ्वीकायिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१२८-१ उ.] गौतम ! सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक हैं, उनसे कषायसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक संख्यातगुणा हैं, उनसे वेदनासमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं और इन सबसे असमवहत पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणा हैं ।

[२] एवं जाव वणस्सइकाइया । णवरं सव्वत्थोवा वाउक्काइया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखेज्जगुणा ।

[२१२८-२] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) वनस्पतिकायिक तक पृथ्वीकायिकवत् समझना चाहिए । विशेष यह है कि वायुकायिक जीवों में सबसे कम वैक्रियसमुद्घात से समवहत वायुकायिक हैं, उनसे मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत वायुकायिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे कषाय-

समुद्घात से समवहत वायुकायिक असख्यातगुणा हैं और उनसे वेदनासमुद्घात से समवहत वायुकायिक विशेषाधिक हैं तथा (इन सबसे) असख्यातगुणा अधिक है असमवहत वायुकायिक जीव।

२१२९ [१] बेइंदियाण भंते ! वेयणासमुग्घाएण कसायसमुग्घाएण मारणतियसमुग्घाएण समोहयाण असमोहयाण य कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बेइंदिया मारणंतियसमुग्घाएण समोहया, वेदणासमुग्घाएण समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएण समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया संखेज्जगुणा।

[२१२९-१ प्र] भगवन् ! इन वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से तथा मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत एव असमवहत द्वीन्द्रिय जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१२९-१ उ] गौतम ! सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत द्वीन्द्रिय जीव हैं। उनसे वेदनासमुद्घात से समवहत द्वीन्द्रिय असख्यातगुणा हैं, उनसे कषायसमुद्घात से समवहत द्वीन्द्रिय सख्यातगुणा और इन सबसे असमवहत द्वीन्द्रिय सख्यातगुणा अधिक हैं।

[२] एव जाव चउरिंदिया।

[२१२९-२] इसी प्रकार (त्रीन्द्रिय और) यावत् चतुरिन्द्रिय तक (का अल्पबहुत्व जानना चाहिए)।

२१३० पचेंदियतिरिक्खजोणियाण भंते ! वेदणासमुग्घाएण कसायसमुग्घाएण मारणंतियसमुग्घाएण वेउव्वियसमुग्घाएण तेयासमुग्घाएण समोहयाण असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पचेंदियतिरिक्खजोणिया तेयासमुग्घाएण समोहया, वेउव्वियसमुग्घाएण समोहया असंखेज्जगुणा, मारणंतियसमुग्घाएण समोहया असंखेज्जगुणा, वेदणासमुग्घाएण समोहया असंखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएण समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया संखेज्जगुणा।

[२१३० प्र] भगवन् ! वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से, वैक्रियसमुद्घात से तथा तैजससमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्चों मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[२१३० उ] गौतम ! सबसे कम तैजससमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च हैं, उनसे वैक्रियसमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च असख्यातगुणा हैं, उनसे मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च असख्यातगुणा हैं, उनसे वेदनासमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च असख्यातगुणा हैं तथा उनसे कषायसमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च सख्यातगुणा हैं और इन सबसे सख्यातगुणा अधिक हैं, असमवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च।

२१३१ मणूसाण भंते ! वेदणासमुग्घाएण कसायसमुग्घाएण मारणंतियसमुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएण तेयगसमुग्घाएण आहारगसमुग्घाएण केवलिसमुग्घाएण समोहयाण असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणूसा आहारगसमुग्घाएण समोहया, केवलिसमुग्घाएण समोहया सखेज्जगुणा, तेयगसमुग्घाएण समोहया सखेज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएण समोहया सखेज्जगुणा, मारणंतियसमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा, वेयणासमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा, कसायसमुग्घाएव समोहया सखेज्जगुणा, असमोहया असखेज्जगुणा ।

[२१३१ प्र] भगवन् ! वेदनासमुद्घात से, कषायसमुद्घात से, मारणान्तिकसमुद्घात से, वैक्रियसमुद्घात से, तजससमुद्घात से, आहारकसमुद्घात से तथा केवलिसमुद्घात से समवहत एव असमवहत मनुष्यो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१३१ उ] गौतम ! सबसे कम आहारकसमुद्घात से समवहत मनुष्य ह, उनसे केवलिसमुद्घात से समवहत मनुष्य सख्यातगुणा हैं, उनसे तैजससमुद्घात से समवहत मनुष्य सख्यातगुणा हैं, उनसे वक्रियसमुद्घात से समवहत मनुष्य सख्यातगुणा हैं, उनसे मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत मनुष्य असख्यातगुणा हैं, उनसे वेदनासमुद्घात से समवहत मनुष्य असख्यातगुणा ह तथा उनसे कषायसमुद्घात से समवहत मनुष्य सख्यातगुणा हैं और इन सबसे असमवहत मनुष्य असख्यातगुणा हैं ।

२१३२ वाणव्यन्तर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा ।

[२१३२] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के (समुद्घात विषयक अल्पबहुत्व की वक्तव्यता) असुरकुमारो के समान (समझनी चाहिए ।)

विवेचन—समवहत जीवो की न्यूनाधिकता का कारण—आहारकसमुद्घात किए हुए जीव सबसे कम इसलिए हैं कि लोक मे आहारकशरीरधारकों का विरहकाल छह मास का बताया गया है। अतएव किसी समय नही भी होते हैं । जब होते हैं, तब भी जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार तक) ही होते हैं । फिर आहारकसमुद्घात आहारकशरीर के प्रारम्भकाल मे ही होता है, अन्य समय मे नही, इस कारण आहारकसमुद्घात से समवहत जीव भी थोडे ही कहे गए हैं ।

आहारकसमुद्घातवालो की अपेक्षा केवलिसमुद्घात से समवहत जीव सख्यातगुणा अधिक हैं, क्योंकि वे एक साथ शतपृथक्त्व की सख्या मे उपलब्ध होते हैं ।

उनकी अपेक्षा तैजससमुदघातयुक्त जीव असख्यातगुणा होते हैं, क्योंकि पचेन्द्रियतिर्यञ्चों, मनुष्यो और चारो जाति के देवो मे तैजससमुद्घात पाया जाता है ।

उनकी अपेक्षा वक्रियसमुद्घात समवहत जीव असख्यातगुणा होते हैं, क्योंकि वक्रियसमुद्घात नारकों, वायुकायिको, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो और देवों मे भी पाया जाता है । वक्रियलब्धि से युक्त वायुकायिकजीव देवो से भी असख्यातगुणा हैं और बादरपर्याप्त वायुकायिक स्थलचर पचेन्द्रियों की अपेक्षा भी असख्यातगुणा हैं, स्थलचरपचेन्द्रिय, देवों से भी असख्यात गुणा हैं । इस कारण तजससमुद्घात समवहत जीवो की अपेक्षा वैक्रियसमुद्घात से समवहत जीव असख्यातगुणे अधिक समझने चाहिए ।

वैक्रियसमुद्घात से समवहत जीवों की अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात वाले जीव अनन्तगुणा हैं, क्योंकि निगोद के अनन्त जीवों का असंख्यातवाँ भाग सदा विग्रहगति की अवस्था में रहता है और वे प्रायः मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत होते हैं।

इससे कषायसमुद्घात समवहत जीव असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि विग्रहगति को प्राप्त अनन्त निगोदजीवों की अपेक्षा भी असंख्यातगुणा अधिक निगोदिया जीव सदैव कषायसमुद्घात से युक्त उपलब्ध होते हैं। इनसे वेदनासमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि कषायसमुद्घात-समवहत उन अनन्त निगोदजीवों से वेदनासमुद्घात-समवहत जीव कुछ अधिक ही होते हैं।

वेदनासमुद्घात-समवहत जीवों की अपेक्षा असमवहत (अर्थात् जो किसी भी समुद्घात से युक्त नहीं हों, ऐसे समुद्घात रहित) जीव असंख्यातगुणा होते हैं, क्योंकि वेदना, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात से समवहत जीवों की अपेक्षा समुद्घातरहित अकेले निगोदजीव ही असंख्यातगुणा अधिक पाए जाते हैं।[1]

नारकों मे समुद्घातजनित अल्पबहुत्व—सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत नारक हैं, क्योंकि मारणान्तिकसमुद्घात मरण के समय ही होता है और मरने वाले नारकों की संख्या, जीवित नारकों की अपेक्षा अल्प ही होती है। मरने वालों में भी मारणान्तिकसमुद्घात वाले नारक अत्यल्प ही होते है, सब नहीं होते। अतः मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत जीव सबसे कम होते हैं।

उनसे वैक्रियसमुद्घात से समवहत नारक असंख्यातगुणा अधिक हैं, क्योंकि रत्नप्रभा आदि सातों नरकपृथ्वियों में से प्रत्येक में बहुत-से नारक परस्पर वेदना उत्पन्न करने के लिए निरन्तर उत्तर-वैक्रिय करते रहते है। वैक्रियसमुद्घात समवहत नारकों की अपेक्षा कषायसमुद्घात वाले नारक असंख्यातगुणा अधिक होते हैं, क्योंकि वे परस्पर क्रोधादि से सदैव ग्रस्त रहते हैं। कषायसमुद्घात से समवहत नारकों की अपेक्षा वेदनासमुद्घात से समवहत नारक संख्यातगुणा अधिक होते हैं, क्योंकि यथासम्भव क्षेत्रजन्य वेदना, परमाधार्मिकों द्वारा उत्पन्न की हुई और परस्पर उत्पन्न की हुई वेदना के कारण प्रायः बहुत से नारक सदा वेदनासमुद्घात से समवहत रहते हैं। इनकी अपेक्षा भी असमवहत नारक संख्यातगुणा अधिक हैं, क्योंकि बहुत-से नारक वेदनासमुद्घात के बिना भी वेदना का वेदन करते रहते हैं। इस अपेक्षा से असमवहत नारक सर्वाधिक हैं।[2]

असुरकुमारादि भवनवासियों मे समुद्घात की अपेक्षा अल्पबहुत्व—सबसे कम तैजससमुद्घात वाले हैं, क्योंकि अत्यन्त तीव्र क्रोध उत्पन्न होने पर ही कदाचित् कोई असुरकुमार तैजससमुद्घात करते हैं। उनकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात वाले असुरकुमारादि असंख्यातगुणा अधिक हैं, क्योंकि मारणान्तिकसमुद्घात मरणकाल में होता है। उनकी अपेक्षा वेदनासमुद्घातसमवहत असुरकुमारादि असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि पारस्परिक संग्राम आदि किसी न किसी कारण से बहुत से असुरकुमार वेदनासमुद्घात करते हैं। उनकी अपेक्षा कषायसमुद्घात और वैक्रियसमुद्घात से समवहत असुर-

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा. ५, पृ. १०१४ से १०१६ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष, भाग ७, पृ. ४४६

२ (क) वही, मलयवृत्ति अ. रा. कोष, भाग ७, पृ. ४४६
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ. १०१७ से १०१९ तक

कुमारादि क्रमश उत्तरोत्तर सख्यातगुणा अधिक होते हैं। उनसे भी असमवहत असुरकुमारादि असख्यातगुणा हैं। असुरकुमारो के समान ही नागकुमार आदि स्तनितकुमार पर्यन्त भवनवासी देवो का कथन समझना चाहिए।[1]

पृथ्वीकायिकादि चार एकेन्द्रियो का समुद्घात की अपेक्षा अल्पबहुत्व—सबसे कम मारणान्तिक समुद्घात-समवहत पृथ्वीकायादि (वायुकाय को छोडकर) चार ह, क्योकि यह समुद्घात मरण के समय ही होता है और वह भी किसी को होता है किसी को नही। उनकी अपेक्षा कपायसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक पूर्वोक्त युक्तिवश पूववत् ही समझ लेना चाहिए। उनकी अपेक्षा वेदनासमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं और उनको अपेक्षा असमवहत पृथ्वीकायिकादि असख्यातगुणा अधिक हैं।

वायुकायिको मे समुद्घात की अपेक्षा अल्पबहुत्व—सबसे कम वैक्रियसमुद्घात से समवहत वायुकायिक हैं। क्योकि वैक्रियलब्धि वाले वायुकायिक अत्यल्प ही होते हैं। उनसे मारणान्तिक-समुद्घात समवहत वायुकायिक असख्यात गुणा है, क्योकि मारणान्तिकसमुद्घात पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर एव सूक्ष्म सभी वायुकायिको मे हो सकता है। उनकी अपेक्षा कपायसमुद्घात से समवहत वायुकायिक असख्यातगुणा होते हैं, उनसे वेदनासमुद्घात-समवहत वायुकायिक विशेषाधिक होते हैं, इन सबसे असमवहत वायुकायिक असख्यात गुणा अधिक होते हैं, क्योकि सकलसमुद्घातो वाले वायुकायिको की अपेक्षा स्वभावस्थ वायुकायिक स्वभावत असख्यातगुणा पाये जाते हैं।[2]

द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रियो मे सामुद्घातिक अल्पबहुत्व—सबसे कम मारणान्तिकसमुद्घात-समवहत द्वीन्द्रिय हैं, क्योकि पृच्छासमय मे प्रतिनियत द्वीन्द्रिय ही मारणान्तिकसमुद्घात-समवहत पाए जाते हैं। उनसे वेदनासमुद्घात-समवहत द्वीन्द्रिय असख्यातगुणे हैं। क्योकि सर्दी गर्मी आदि के सम्पर्क से अत्यधिक द्वीन्द्रियो मे वेदनासमुद्घात होता है। उनकी अपेक्षा कपायसमुद्घात से समवहत द्वीन्द्रिय सख्यातगुणे हैं, क्योकि अत्यधिक द्वीन्द्रिय मे लोभादि कपाय के कारण कपाय-समुद्घात होता है। इन सबसे भी असमवहत द्वीन्द्रिय पूर्वोक्तयुक्ति से सख्यातगुणा हैं। द्वीन्द्रिय के समान त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय समवहत-असमवहत का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।[3]

पचेन्द्रियतिर्यञ्चों मे सामुद्घातिक अल्पबहुत्व—सबसे कम तैजससमुद्घात से समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च हैं, क्योकि तेजोलब्धि बहुत थोडो मे होती है। उनकी अपेक्षा वैक्रियसमुद्घात-समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च असख्यातगुणा हैं, क्योकि वैक्रियलब्धि अपेक्षाकृत बहुतों में होती है। उनसे मारणान्तिकसमुद्घात समवहत असख्यातगुणे हैं, क्योकि वैक्रियलब्धि से रहित सम्मूर्च्छिम जलचर, स्थलचर और खेचर, प्रत्येक मे पूर्वोक्त वैक्रियसमुद्घातिको की अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अ रा कोष भा ७, पृ ४४६

२ (क) वही, मलयवृत्ति अ रा कोष भा ७, पृ ४४६

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५ पृ १९२१ से १९२३ तक

३ (क) वही भा ५ पृ १९२३-१९२४

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा ७, पृ ४४७

समवहत असख्यातगुणे होते हैं। किन्ही-किन्ही वैक्रियलब्धि से रहित या सहित गर्भज तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय मे भी मारणान्तिकसमुद्घात पाया जाता है। उनकी अपेक्षा भी वेदनासमुद्घात से समवहत तिर्यच पचेन्द्रिय असख्यातगुणे हैं, क्योकि मरते हुए जीवो की अपेक्षा न मरते हुए असख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा भी कषायसमुद्घात-समवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च सख्यातगुणा हैं और इन सबकी अपेक्षा असमवहत पचेन्द्रियतिर्यञ्च पूर्वोक्तयुक्ति से सख्यातगुणे हैं।[1]

मनुष्यो मे वेदनादि-समुद्घात सम्बन्धी अल्पबहुत्व—सबसे कम आहारकसमुद्घात-समवहत मानव हैं, क्योकि आहारकशरीर का प्रारम्भ करने वाले मनुष्य अत्यल्प ही होते है। केवलिसमुद्घात समवहत मनुष्य उनसे सख्यातगुणे अधिक है क्योकि वे शतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ तक) की सख्या मे पाये जाते है। उनकी अपेक्षा तैजससमुद्घात-समवहत, वैक्रियसमुद्घात-समवहत एव मारणान्तिक-समुद्घात-समवहत मनुष्य उत्तरोत्तर क्रमश सख्यातगुणा, सख्यातगुणा और असख्यातगुणा अधिक होते हैं, क्योकि पूर्वोक्त दोनो की अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात समवहत मनुष्य इसलिये अधिक है कि वह सम्मूर्च्छिम-मनुष्यो मे भी पाया जाता है। उनसे वेदनासमुद्घात समवहत मनुष्य असख्यातगुणे हैं, क्योकि म्रियमाण मनुष्यो की अपेक्षा अम्रियमाण सख्यातगुणा अधिक होते हैं और वेदनासमुद्घात अम्रियमाण मनुष्यो मे भी होता है। उनकी अपेक्षा कषायसमुद्घात समवहत मनुष्य सख्यातगुणा अधिक होते हैं और इन सबसे असमवहत (समुद्घातो से रहित) मनुष्य असख्यातगुणा अधिक होते हैं, क्योकि अल्पकषायवाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य, उत्कट कषायवालो से सदा असख्यातगुणा होते हैं। वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिको मे सामुद्घातिक अल्पबहुत्व की वक्तव्यता असुरकुमारों के समान समझनी चाहिए।[2]

२१३३ कति ण भंते! कसायसमुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसायसमुग्घाया पण्णत्ता। त जहा—कोहसमुग्घाए १ माणसमुग्घाए, २ मायासमुग्घाए ३ लोभसमुग्घाए ४।

[२१३३ प्र] भगवन्! कषायसमुद्घात कितने कहे हैं?

[२१३३ उ] गौतम! कषायसमुद्घात चार कहे हैं, यथा—(१) क्रोधसमुद्घात, (२) मानसमुद्घात, (३) मायासमुद्घात और (४) लोभसमुद्घात।

२१३४ [१] णेरइयाण भंते! कति कसायसमुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसायसमुग्घाया पण्णत्ता?

[२१३४-१ प्र] भगवन्! नारकों के कितने कषायसमुद्घात कहे हैं?

[२१३४-१ उ] गौतम! उनमे चारो कषायसमुद्घात कहे हैं।

---

१ (क) अभि रा कोष, भा ७, पृ ४४७
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भाग ५, पृ ११२४७ से ११२७ तक

२ (क) वही, भा ५, पृ ११२७-११२८
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा ७, पृ ४४७

[२] एव जाव वेमाणियाण ।

[२१३४-२] इसी प्रकार (असुरकुमारो से लेकर) वैमानिको तक (प्रत्येक दण्डक मे चार चार कषायसमुद्घात कहे गये हैं) ।

२१३५ [१] एगमेगस्स ण भते ! णेरइयस्स केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा अणता वा ।

[२१३५-१ प्र] भगवन् ! एक एक नारक के कितने क्रोधसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१३५-१ उ] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं ।

[प्र] भगवन् ! (उसके) भावी (क्रोधसमुद्घात) कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! (भावी क्रोधसमुद्घात) किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते हैं । जिसके होते हैं, उसके जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होते हैं ।

[२] एव जाव वेमाणियस्स ।

[२१३५-२] इसी प्रकार (एक-एक असुरकुमार से लेकर एक-एक) वैमानिक तक (समझना चाहिए ।)

२१३६ एव जाव लोभसमुग्घाए । एते चत्तारि दडगा ।

[२१३६] इसी प्रकार (क्रोधसमुद्घात के समान) लोभसमुद्घात तक (नारक से लेकर वैमानिक तक प्रत्येक के अतीत और अनागत का कथन करना चाहिए ।) इस प्रकार ये चार दण्डक हुए ।

२१३७ [१] णेरइयाण भते ! केवतिया कोहसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा ! अणता ।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा ! अणता ।

[२१३७-१ प्र] भगवन् ! (बहुत) नैरयिको के कितने क्रोधसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१३७-१ उ] गौतम ! वे अनन्त हुए हैं ।

[प्र] भगवन् ! उनके भावी क्रोधसमुद्घात कितने होते हैं ?

[उ] गौतम ! वे भी अनन्त होते हैं ।

[२] एव जाव वेमाणियाण ।

[२१३७-२] इसी प्रकार वैमानिको तक की वक्तव्यता जाननी चाहिए ।

२१३८ एव जाव लोभसमुग्घाए। एए वि चत्तारि दडगा।

[२१३८] इसी प्रकार (क्रोधसमुद्घात के समान) लोभसमुद्घात तक समझना चाहिए। इस प्रकार य चार दडक हुए।

२१३९ एगमेगस्स ण भते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवतिया कोहसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा! अणता, एव जहा वेदणासमुग्घाओ भणिओ (सु २१०१—४) तहा कोहसमुग्घाओ वि भाणियव्वा णिरवसेस जाव वेमाणियत्ते। माणसमुग्घाओ मायासमुग्घाओ य णिरवसेस जहा मारणतियसमुग्घाओ (सु २११६)। लोभसमुग्घाओ जहा कसायसमुग्घाओ (सु २१०५—१५)। णवर सव्वजीवा असुरादी णेरइएसु लोभकसाएण एगुत्तरिया णेयव्वा।

[२१३९ प्र] भगवन्! एक-एक नरयिक के नारकपर्याय म कितने क्रोधसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१३९ उ] गौतम! वे अनन्त हुए हैं। जिस प्रकार (सू २१०१-४ मे) वेदनासमुद्घात का कथन किया है, उसी प्रकार यहा क्रोधसमुद्घात का भी समग्र रूप से यावत वैमानिकपर्याय तक कथन करना चाहिए। इसी प्रकार मानसमुद्घात एव मायासमुद्घात के विषय मे समग्र कथन (सू २११६ में उक्त) मारणान्तिकसमुद्घात के समान कहना चाहिए। लोभसमुद्घात का कथन (सू २१०५-१५ मे उक्त) कषायसमुद्घात के समान करना चाहिए। विशेष यह है कि असुरकुमार आदि सभी जीवो का नारकपर्याय मे लोभकषायसमुद्घात की प्ररूपणा एक से लेकर करनी चाहिए।

२१४० [१] णेरइयाण भते! णेरइयत्ते केवतिया कोहसमुग्घाया अतीया ?

गोयमा! अणता।

केवतिया पुरेक्खडा ?

गोयमा! अणता।

[२१४०-१ प्र] भगवन्! नारको के नारकपर्याय मे कितने क्रोधसमुद्घात अतीत हुए हैं ?

[२१४०-१ उ] गौतम! वे अनन्त हुए हैं।

[प्र] भगवन्! भावी (क्रोधसमुद्घात) कितने होते हैं ?

[उ] गौतम! वे अनन्त होते हैं।

[२] एव जाव वेमाणियत्ते।

[२१४०-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्याय तक कहना चाहिए।

२१४१ एव सट्ठाण परट्ठाणेसु सव्वत्थ वि भाणियव्वा सव्वजीवाण चत्तारि समुग्घाया जाव लोभसमुग्घाओ जाव वेमाणियाण वेमाणियत्ते।

[२१४१] इसी प्रकार स्वस्थान परस्थानों मे सर्वत्र (क्रोधसमुद्घात से लेकर) लोभसमुद्घात तक यावत् वैमानिको के वैमानिकपर्याय म रहते हुए सभी जीवों के चारों समुद्घात कहने चाहिए।

२१४२ एतेसि णं भंते ! जीवाणं कोहसमुग्घाएणं माणसमुग्घाएणं मायासमुग्घाएणं लोभसमुग्घाएणं य समोहयाणं अकसायसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अकसायसमुग्घाएणं समोहया, माणसमुग्घाएणं समोहया, अणतगुणा, कोहसमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, मायासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, लोभसमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया संखेज्जगुणा।

[२१४२ प्र.] भगवन् ! क्रोधसमुद्घात से, मानसमुद्घात से, मायासमुद्घात से और लोभ-समुद्घात से तथा अकषायसमुद्घात (अर्थात्—कषायसमुद्घात से भिन्न छह समुद्घातों में से किसी भी समुद्घात) से समवहत और असमवहत जीवों से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१४२ उ.] गौतम ! सबसे कम अकषायसमुद्घात से समवहत जीव हैं, (उनसे) मानकषाय से समवहत जीव अनन्तगुणे हैं, (उनसे) क्रोधसमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं, (उनसे) मायासमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं, (उनसे) लोभसमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं और (इन सबसे) असमवहत जीव संख्यातगुणा हैं।

२१४३ एतेसि णं भंते ! णेरइयाणं कोहसमुग्घाएणं माणसमुग्घाएणं मायासमुग्घाएणं लोभसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा ४ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा णेरइया लोभसमुग्घाएणं समोहया, मायासमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, माणसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, कोहसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया संखेज्जगुणा।

[२१४३ प्र.] भगवन् ! इन क्रोधसमुद्घात से, मानसमुद्घात से, मायासमुद्घात से और लोभसमुद्घात से समवहत और असमवहत नारकों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१४३ उ.] गौतम ! सबसे कम लोभसमुद्घात से समवहत नारक हैं, उनसे संख्यातगुणा मायासमुद्घात से समवहत नारक हैं, उनसे संख्यातगुणा मानसमुद्घात से समवहत नारक हैं, उनसे संख्यातगुणा क्रोधसमुद्घात से समवहत नारक हैं और इन सबसे संख्यातगुणा असमवहत नारक हैं।

२१४४ [१] असुरकुमाराणं पुच्छा।

गोयमा ! सव्वत्थोवा असुरकुमारा कोहसमुग्घाएणं समोहया, माणसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, मायासमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा लोभसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा, असमोहया संखेज्जगुणा।

[२१४४-१ प्र.] भगवन् ! क्रोधादिसमुद्घात से समवहत और असमवहत असुरकुमारों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१४४-१ उ] गौतम ! सबसे थोडे क्रोधसमुद्घात से समवहत असुरकुमार ह, उनस मानसमुद्घात से समवहत असुरकुमार सख्यातगुणा ह, उनसे मायासमुद्घात से समवहत असुरकुमार सख्यातगुणा हैं और उनसे लोभसमुद्घात से समवहत असुरकुमार सख्यातगुणा हैं तथा इन सबसे असमवहत असुरकुमार सख्यातगुणा ह ।

[२] एव सव्वदेवा जाव वेमाणिया ।

[२१४४-२] इसी प्रकार वैमानिको तक सवदेवो के क्रोधादिसमुद्घात के अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए ।

२१४५ [१] पुढविक्काइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वत्योवा पुढविक्काइया माणसमुग्घाएण समोहया, कोहसमुग्घाएण समोहया विसेसाहिया, मायासमुग्घाएण समोहया विसेसाहिया, लोभसमुग्घाएण समोहया विसेसाहिया, असमोहया सखेज्जगुणा ।

[२१४५ १ प्र] भगवन् ! क्रोधादिसमुद्घात से समवहत और असमवहत पृथ्वीकायिकों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२१४५-१ उ] गौतम ! सबसे कम मानसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक ह, उनसे क्रोध-समुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक ह, उनसे मायासमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक ह और उनसे लोभसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक ह तथा इन सबसे असमवहत पृथ्वीकायिक सख्यातगुणा हैं ।

[२] एव जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[२१४५-२] इसी प्रकार पचेन्द्रियतियञ्च तक के अल्पबहुत्व के विषय म समझना चाहिए ।

२१४६ मणूसा जहा जीवा (सु २१४२) । णवर माणसमुग्घाएण समोहया असखेज्जगुणा ।

[२१४६] मनुष्यो की (अल्पबहुत्व-सम्बन्धी वक्तव्यता सू २१४२ मे उक्त) समुच्चय जीवो के समान है । *विशेष यह है कि मानसमुद्घात से समवहत मनुष्य असख्यातगुणा ह ।*

विवेचन—निष्कर्ष—सर्वप्रथम कपायसमुद्घात के चार प्रकार तथा नैरयिक से लेकर वैमानिक पयन्त चौवीस दण्डको मे चारो प्रकार के कपायो के अस्तित्व की प्ररूपणा की गई है। तदनन्तर चौवीस दण्डको मे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा क्रोधादि चारो समुद्घाता के अतीत अनागत की प्ररूपणा की गई है । नारक से लेकर वमानिक तक प्रत्येक मे अनन्त अतीत क्रोधादि समुद्घात है तथा प्रत्येक में भावी क्रोधादि समुद्घात किसी के होते ह, किसी के नही होते हैं । जो नारक आदि नारकादि भव के अन्तिम समय मे वतमान है और जो स्वभाव से ही मन्दकपायी है, वह कपायसमुद्घात किये विना ही मृत्यु को प्राप्त होकर नरक से निकल कर मनुष्यभव में उत्पन्न होने वाला है और कपाय-समुद्घात किये विना ही सिद्ध हो जाएगा, उसके भावी कपायसमुद्घात नही होता । उससे भिन्न

प्रकार का जो नारक है, उसके भावी कषायसमुद्घात जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात और अनन्त होते हैं। सख्यातकाल तक ससार मे रहने वाले के सख्यात, असख्यात-काल तक ससार मे रहने वाले के असख्यात और अनन्तकाल तक ससार मे रहने वाले के अनन्त भावी कषायसमुद्घात होते हैं। बहुत्व की अपेक्षा से नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के अतीत और अनागत क्रोधादि समुद्घात अनन्त हैं। अनागत अनन्त इसलिए है कि पृच्छा के समय बहुत-से नारकादि ऐसे होते हैं, जो अनन्तकाल तक ससार मे रहेगे। इस प्रकार एकवचन और बहुवचन से सम्बन्धित चौवीस दण्डको के प्रत्येक के चार-चार आलापक होते है। यो कुल मिलाकर २४×४=९६ आलापक होते हैं।

इसके पश्चात् चौवीस दण्डको सबधी नैरयिक आदि स्व-परपर्यायो मे एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से अतीत अनागत क्रोधादि कषायसमुद्घात की प्ररूपणा की गई है।

विशेष—अत्यन्त तीव्र पीडा मे निरन्तर उद्विग्न रहने वाले, नारको मे प्राय लोभसमुद्घात होता नही है। होते हैं तो भी वे अल्प होते हैं।

इसके पश्चात् क्रोध, मान, माया और लोभ समुद्घात से समवहत और असमवहत समुच्चय जीव एव चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

अल्पबहुत्व की चर्चा और स्पष्टीकरण—(१) समुच्चयजीव—सबसे कम अकषायसमुद्घात से समवहत जीव हैं। अकषायसमुद्घात का अर्थ है—कषायसमुद्घात से भिन्न या रहित छह समुद्घातो मे से किसी भी एक समुद्घात से समवहत। अकषायसमुद्घात से समवहत जीव कदाचित् कोई-कोई ही पाए जाते हैं। वे यदि उत्कृष्ट सख्या मे हो तो भी कषायसमुद्घात से समवहत जीवो के अनन्तवें भाग ही होते हैं। उनकी अपेक्षा मानसमुद्घातो से समवहत जीव अनन्तगुणा अधिक हैं। क्योकि अनन्त वनस्पतिकायिक जीव पूर्वभव के सस्कारो के कारण मानसमुद्घात मे वर्तमान रहते हैं। उनकी अपेक्षा क्रोधसमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि मानी जीवो की अपेक्षा क्रोधी जीव विशेषाधिक होते हैं। उनसे मायासमुद्घात-समवहत जीव विशेषाधिक होते हैं। उनसे भी लोभसमुद्घात-समवहत जीव विशेषाधिक होते है, क्योकि मायी जीवो की अपेक्षा लोभी जीव बहुत अधिक होते हैं। उनसे भी असमवहत जीव सख्यातगुणा हैं। क्योकि चारो गतियो मे समुद्घातयुक्त जीवो की अपेक्षा समुद्घातरहित जीव सख्यातगुणा अधिक पाये जाते हैं। सिद्ध जीव एकेन्द्रियों के अनन्तवें भाग हैं, किन्तु यहाँ उनकी विवक्षा नही की गई है।

(२) नारकों मे कषायसमुद्घातो का अल्पबहुत्व—नारको मे लोभसमुद्घात सबसे कम है, क्योकि नारको को प्रिय वस्तुओ का सयोग नही मिलता। अत उनमे लोभसमुद्घात, होता भी है तो भी अन्य क्रोधादि समुद्घातो से बहुत ही कम होता है। उनकी अपेक्षा मायासमुद्घात, मानसमुद्घात, क्रोधसमुद्घात क्रमश उत्तरोत्तर सख्यातगुणा अधिक हैं। असमवहत नारक इन सबसे सख्यातगुणा हैं।

(३) असुरकुमारादि मे कषायसमुद्घातों का अल्पबहुत्व—देवो मे स्वभावत लोभ की प्रचुरता होती है। उससे मानकषाय, क्रोधकषाय एव मायाकषाय की उत्तरोत्तर अल्पता होती है। इसलिए असुरकुमारादि भवनवासी देवो मे सबसे कम क्रोध समुद्घातो, उनसे उत्तरोत्तर मान, माया और लोभ से समवहत अधिक बताए हैं और सबसे अधिक—सख्यातगुणे अधिक असमवहत असुरकुमार हैं।

पृथ्वीकायिकों में अल्पबहुत्व—मान, क्रोध, माया और लोभ समुद्घात उत्तरोत्तर अधिक हैं। असमवहत पृथ्वीकायिक संख्यातगुण अधिक हैं।

पृथ्वीकायिकों के समान अन्य एकेन्द्रिय के तथा विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रियतिर्यञ्च की भी वक्तव्यता समझ लेना चाहिए।

मनुष्यों में कषायसमुद्घात समवहत संबंधी अल्पबहुत्व—समुच्चयजीवों में समान समझना चाहिए। परन्तु एक बात विशेष है कि अकषायसमुद्घात से समवहत मनुष्यों की अपेक्षा मानसमुद्घात से समवहत मनुष्य असंख्यातगुणा हैं। क्योंकि मनुष्यों में मान की प्रचुरता पाई जाती है।[1]

चौवीस दण्डकों में छाद्मस्थिकसमुद्घात प्ररूपणा

२१४७ कति णं भंते ! छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! छाउमत्थिया छ समुग्घाया पण्णत्ता। तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयगसमुग्घाए ५ आहारगसमुग्घाए ६।

[२१४७ प्र.] भगवन् ! छाद्मस्थिकसमुद्घात कितने कहे गए हैं ?

[२१४७ उ.] गौतम ! छाद्मस्थिकसमुद्घात छह कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) वेदना-समुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात, (५) तैजस-समुद्घात और (६) आहारकसमुद्घात।

२१४८ णेरइयाणं भंते ! कति छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसाय-समुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४।

[२१४८ प्र.] भगवन् ! नारकों में कितने छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे हैं ?

[२१४८ उ.] गौतम ! नारकों में चार छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे गए हैं, यथा—(१) वेदना समुद्घात (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात और (४) वैक्रियसमुद्घात।

२१४९ असुरकुमाराणं पुच्छा।

गोयमा ! पंच छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयगसमुग्घाए ५।

[२१४९ प्र.] असुरकुमारों में छाद्मस्थिकसमुद्घातों की पूर्ववत् पृच्छा है।

[२१४९ उ.] गौतम ! असुरकुमारों में पांच छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे हैं यथा—(१) वेदना-समुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात और (५) तैजस-समुद्घात।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. १०५४ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. ७, पृ. ४५२

२१५० एगिंदिय-विगलिंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! तिण्णि छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता । तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ । णवरं वाउक्काइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता । तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ ।

[२१५० प्र.] भगवन् ! एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में कितने छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे हैं ?

[२१५० उ.] गौतम ! इनमें तीन समुद्घात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात । किन्तु वायुकायिक जीवों में चार छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात और (४) वैक्रियसमुद्घात ।

२१५१ पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता । तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयगसमुग्घाए ५ ।

[२१५१ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों में कितने छाद्मस्थिकसमुद्घात होते हैं ?

[२१५१ उ.] गौतम ! इनमें पांच छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात और (५) तैजससमुद्घात ।

२१५२ मणूसाणं भंते ! कति छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता । तं जहा—वेदणासमुग्घाए १ कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयगसमुग्घाए ५ आहारगसमुग्घाए ६ ।

[२१५२ प्र.] भगवन् ! मनुष्यों में कितने छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे हैं ?

[२१५२ उ.] गौतम ! इनमें छह छाद्मस्थिकसमुद्घात कहे गए हैं, यथा—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) मारणान्तिकसमुद्घात (४) वैक्रियसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात और (६) आहारकसमुद्घात ।

विवेचन—चौवीस दण्डकों में छाद्मस्थिकसमुद्घात—छद्मस्थ को होने वाले या छद्मस्थ (जिसे केवलज्ञान न हुआ हो) से सम्बन्धित समुद्घात छाद्मस्थिकसमुद्घात कहलाते हैं। केवलीसमुद्घात को छोड़कर शेष छहों छाद्मस्थिकसमुद्घात हैं। नारकों में तेजोलब्धि और आहारकलब्धि न होने से तैजस और आहारकसमुद्घात के सिवाय शेष ४ छाद्मस्थिकसमुद्घात पाये जाते हैं। असुरकुमारादि भवनपतियों तथा शेष तीन प्रकार के देवों में पांच-पांच छाद्मस्थिकसमुद्घात पाये जाते हैं क्योंकि देव चौदह पूर्वों के ज्ञान तथा आहारकलब्धि से रहित होते हैं अतएव उनमें आहारकसमुद्घात नहीं पाया जाता। पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों में भी ये ही पांच समुद्घात पाये जाते हैं। वायुकायिकों के सिवाय शेष ४ एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में वैक्रिय, तैजस और आहारक को छोड़कर

शेष ३ समुद्घात पाये जाते हैं। वायुकायिकों में वैक्रियसमुद्घात अधिक होता है। मनुष्यों में ६ ही छाद्मस्थिकसमुद्घात पाए जाते हैं।[1]

वेदना एवं कषाय-समुद्घात से समवहत जीवादि के क्षेत्र, काल एवं क्रिया की प्ररूपणा

२१५३ [१] जीवे णं भंते ! वेदणासमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिए खेत्ते अफुण्णे ? केवतिए खेत्ते फुडे ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं णियमा छद्दिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे एवइए खेत्ते फुडे।

[२१५३-१ प्र.] भगवन् ! वेदनासमुद्घात से समवहत हुआ जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है, भंते ! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है ?

[२१५३-१ उ.] गौतम ! विस्तार (विष्कम्भ) और स्थूलता (बाहल्य) की अपेक्षा शरीर-प्रमाण क्षेत्र को नियम से छहों दिशाओं में व्याप्त (परिपूर्ण) करता है। इतना क्षेत्र आपूर्ण (परिपूर्ण) और इतना ही क्षेत्र स्पृष्ट होता है।

[२] से णं भंते ! खेत्ते केवइकालस्स अफुण्णे केवइकालस्स फुडे ?

गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण वा एवइकालस्स अफुण्णे एवइकालस्स फुडे।

[२१५३-१ प्र.] भगवन् ! वह क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण और कितने काल में स्पृष्ट हुआ ?

[२१५३-२ उ.] गौतम ! एक समय, दो समय अथवा तीन समय के विग्रह में (जितना काल होता है) इतने काल में आपूर्ण हुआ और इतने ही काल में स्पृष्ट होता है।

[३] ते णं भंते ! पोग्गला केवइकालस्स णिच्छुभति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तस्स।

[२१५३-३ प्र.] भगवन् ! (जीव) उन पुद्गलों को कितने काल में (आत्मप्रदेशों से बाहर निकालता है ?

[२१५३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त में (वह उन पुद्गलों को बाहर निकालता है।)

[४] ते णं भंते ! पोग्गला णिच्छूढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणंति वत्तेंति लेसेंति संघाएंति संघट्टेंति परियावेंति किलामेंति उद्दवेंति तेहिंतो णं भंते ! से जीवे कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए।

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५, पृ १०५७ से १०६१

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा. कोष भा ३, पृ १३५४

[२१५३-४ प्र] भगवन् ! वे बाहर निकले हुए पुद्गल वहाँ (स्थित) जिन प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का अभिघात करते हैं, आवर्त्तपतित करते (चक्कर खिलाते) हैं, थोडा-सा छूते हैं, संघात (एक जगह इकट्ठा) करते हैं, संघट्टित करते हैं, परिताप पहुँचाते हैं, मूर्च्छित करते हैं और घात करते हैं, हे भगवन् ! इनसे वह जीव कितनी क्रिया वाला होता है ?

[२१५३-४ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाच क्रिया वाला होता है।

[५] ते ण भंते ! जीवा ताओ जीवाओ कतिकिरिया ?

गोयमा ! सिय तिकिरिया सिय चउकिरिया सिय पचकिरिया।

[२१५३-५ प्र] भगवन् ! वे जीव उस जीव (के निमित्त) से कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२१५३-५ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाच क्रिया वाले होते हैं।

[६[से ण भंते ! जीवे ते य जीवा अण्णेसिं जीवाण परंपराघाएण कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पचकिरिया वि।

[२१५३-६ प्र] भगवन् ! वह जीव और वे जीव अन्य जीवों का परम्परा से घात करने से कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२१५३-६ उ] गौतम ! वे तीन क्रिया वाले भी होते हैं, चार क्रिया वाले भी होते हैं और पाच क्रिया वाले भी होते हैं।

२१५४ [१] णेरइए ण भंते ! वेदणासमुग्घाएण समोहए० ?

एव जहेव जीवे (सु २१५३)। णवर णेरइयाभिलावो।

[२१५४-१ प्र] भगवन् ! वेदनासमुद्घात से समवहत हुआ नारक समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है, उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है ? इत्यादि पूर्ववत् समग्र (छहों) प्रश्न ?

[२१५४-१ उ] गौतम ! जैसा (सू २१५३/१-२-३-४-५-६ में) समुच्चय जीव के विषय में कहा था, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ 'जीव' के स्थान में 'नारक' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

[२] एव णिरवसेसं जाव वेमाणिए।

[२१५४-२] समुच्चय जीव सम्बन्धी वक्तव्यता के समान ही वैमानिक पर्यन्त (चौवीस दण्डकों सम्बन्धी) सामग्र वक्तव्यता कहनी चाहिए।

२१५५ एव कसायसमुग्घातो वि भाणियव्वो।

[२१५५] इसी प्रकार (वेदनासमुद्घात के समान) कषायसमुद्घात का भी (समग्र) कथन करना चाहिए।

विवेचन—वेदना एवं कषाय समुद्घात से सम्बन्धित क्षेत्र काल क्रियादि की प्ररूपणा—प्रस्तुत प्रकरण में वेदनासमुद्घात से सम्बन्धित ६ बातों की चर्चा की गई है—(१) शरीर से बाहर निकाले जाने वाले पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण और स्पृष्ट (व्याप्त) होता है ? (२) वह क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण और स्पृष्ट होता है ? (३) उन पुद्गलों को कितने काल में जीव आत्मप्रदेशों से बाहर निकालता है ? (४) बाहर निकाले हुए वे पुद्गल उस क्षेत्र में रहे हुए प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का अभिघातादि करते हैं, इससे वेदनासमुद्घातकर्त्ता जीव को कितनी क्रियाएं लगती हैं ? (५) वे जीव उस जीव के निमित्त से कितनी क्रिया वाले होते हैं ? तथा (६) वह जीव और वे जीव अन्य जीवों का परम्परा से घात करने से कितनी क्रिया वाले होते हैं।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—णिच्छुभति—(शरीर से बाहर) निकालता है। अफुण्णे—आपूर्ण—परिपूर्ण हुआ। फुडे—स्पृष्ट हुआ। विक्खंभ-बाहल्लेण—विस्तार और स्थूलता (मोटाई) की अपेक्षा से। अभिहणंति—अभिहनन करते हैं—सामने से आते हुए का घात करते हैं, चोट पहुँचाते हैं। वत्तेंति—आवर्त—पतित करते हैं—चक्कर खिलाते हैं। लेसेंति—किंचित् स्पर्श करते हैं, संघाएंति—परस्पर संघात (समूहरूप से इकट्ठे) कर देते हैं। संघट्टेंति—परस्पर मर्दन कर देते हैं। परियावेंति—परितप्त करते हैं। किलावेंति—थका देते हैं, या मूर्च्छित कर देते हैं। उद्दवेंति—भयभीत कर देते या निष्प्राण कर देते हैं।[2]

छह प्रश्नों का समाधान—(१) वेदनासमुद्घात से समवहत हुआ जीव जिन वेदनायोग्य पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है, वे पुद्गल विस्तार और स्थूलता की अपेक्षा शरीरप्रमाण होते हैं, वे नियम से छहों दिशाओं को व्याप्त करते हैं। अर्थात्—शरीर का जितना विस्तार और जितनी मोटाई होती है, उतना ही क्षेत्र उन पुद्गलों से परिपूर्ण और स्पृष्ट होता है। (२) अपने शरीर प्रमाणमात्र विस्तार और मोटाई वाला क्षेत्र सतत एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से, जितना क्षेत्र व्याप्त किया जाता है उतनी दूर तक वेदना उत्पादक पुद्गलों से आपूर्ण और स्पृष्ट होता है। आशय यह है कि अधिक से अधिक तीन समय के विग्रह द्वारा जितना क्षेत्र व्याप्त किया जाता है, उतना क्षेत्र आत्मप्रदेशों से बाहर निकाले हुए वेदना उत्पन्न करने योग्य पुद्गलों द्वारा परिपूर्ण होता है। इतने ही काल में पूर्वोक्त क्षेत्र आपूर्ण और स्पृष्ट होता है। (३) जीव उन वेदनाजनक पुद्गलों को जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त में कुछ अधिक काल में बाहर निकालता है। अभिप्राय यह है कि जैसे तीव्रतर दाहज्वर से पीडित व्यक्ति सूक्ष्म पुद्गलों को शरीर से बाहर निकालता है, इसी प्रकार वेदनासमुद्घात-समवहत जीव भी जघन्य और उत्कृष्ट रूप से अन्तर्मुहूर्त काल में वेदना से पीडित होकर वेदना उत्पन्न करने योग्य शरीरवर्ती पुद्गलों को आत्मप्रदेशों से बाहर निकालता है। (४) बाहर निकाले हुए वे पुद्गल प्राण अर्थात्—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव, जैसे जलौक, चींटी, मक्खी आदि जीव, भूत अर्थात्—वनस्पतिकायिक जीव, जीव—अर्थात्—पञ्चेन्द्रिय प्राणी, जैसे—छिपकली, सर्प आदि तथा सत्त्व अर्थात्—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक प्राणी को आहत आदि करने में कारण वेदना-

---

१ (क) पण्णवणासुत्तं, भा. १ (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) पृ. ४३९-४४०

(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, १०६८ से १०७४ तक

२ वही, भाग ५, पृ. १०७१

समुद्घातकर्त्ता जीव को कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच क्रियाएँ लगती हैं। आशय यह है कि जब वह किसी जीव को परिताप नहीं पहुँचाता, न ही जान से मारता है, तब तीन क्रिया वाला होता है। जब किन्हीं जीवों का परितापन करता है, या मारता है, तब भी जिन्हें आबाधा नहीं पहुँचाता, उनकी अपेक्षा से तीन क्रिया वाला होता है। जब किसी को परिताप पहुँचाता है, तब चार क्रियाओं वाला होता है और जब किन्हीं जीवों का घात करता है, तो उनकी अपेक्षा से पाँच क्रियाओं वाला होता है। (५) वेदनासमुद्घात करने वाले जीव के पुद्गलों से स्पृष्ट जीव वेदना-समुद्घातकर्त्ता जीव की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाले, कदाचित् चार क्रियाओं वाले और कदाचित् पाँच क्रियाओं वाले होते हैं। जब वे समुद्घातकर्त्ता जीव को कोई बाधा उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते, तब तीन क्रियाओं वाले होते हैं। जब स्पृष्ट होकर वे उस वेदना-समवहत जीव को परिताप पहुँचाते हैं, तब चार क्रियाओं वाले होते हैं। शरीर से स्पृष्ट होने वाले बिच्छू आदि परितापजनक होते हैं, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। किन्तु वे स्पृष्ट होने वाले जीव जब उस प्राणी से रहित कर देते हैं, तब पाँच क्रियाओं वाले होते हैं। शरीर से स्पृष्ट होने वाले सर्प आदि अपने दंश द्वारा प्राणघातक होते हैं, यह भी प्रत्यक्षसिद्ध है। वे पाँच क्रियाएँ ये हैं—(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५) प्राणातिपातिकी। (६) वेदनासमुद्घात करने वाले जीव के द्वारा मारे जाने वाले जीवों के द्वारा जो अन्य जीव मारे जाते हैं और अन्य जीवों द्वारा मारे जाने वाले वेदनासमुद्घात प्राप्त जीव के द्वारा मारे जाते हैं उन जीवों की अपेक्षा से संक्षेप में—वेदनासमुद्घात को प्राप्त वह जीव और वेदनासमुद्घात को प्राप्त जीव सम्बन्धी पुद्गलों से स्पृष्ट वे जीव, अन्य जीवों के परम्परागत आघात से, पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार कदाचित् तीन, कदाचित् चार एवं कदाचित् पाँच क्रियाओं वाले होते हैं।[1]

वेदनासमुद्घातसम्बन्धी इन्हीं छह तथ्यों का समग्र कथन नैरयिक से लेकर वैमानिकपर्यन्त चौवीस दण्डकों में करना चाहिए।

कषायसमुद्घातसम्बन्धी कथन भी वेदनासमुद्घात के पूर्वोक्त कथन के समान जानना चाहिए।[2]

मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत जीवादि के क्षेत्र, काल एवं क्रिया की प्ररूपणा

२१५६ [१] जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिए खेत्ते अफुण्णे केवतिए खेत्ते फुडे ?

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे एवतिए खेत्ते फुडे।

[२१५६-१ प्र] भगवन् ! मारणान्तिकसमुद्घात के द्वारा समवहत हुआ जीव, समवहत

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५ पृ. १०६८ से १०७६ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष भा. ७ पृ. ४११

२ पण्णवणासुत्तं भा. १ (मू. पा. टि.) पृ. ४४०

होकर जिन पुद्गलों को आत्मप्रदेशों से पृथक् करता (बाहर निकालता) है, उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट (निरन्तर व्याप्त) होता है ?

[२१५६-१ उ] गौतम ! विस्तार और बाहल्य (मोटाई) की अपेक्षा से शरीरप्रमाण क्षेत्र तथा लम्बाई (आयाम) में जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग क्षेत्र तथा उत्कृष्ट असंख्यात योजन तक का क्षेत्र एक दिशा में) आपूर्ण और व्याप्त (स्पृष्ट) होता है।) इतना क्षेत्र आपूर्ण होता है तथा इतना क्षेत्र (व्याप्त) होता है।

[२] से णं भंते ! खेत्ते केवतिकालस्स अफुण्णे केवतिकालस्स फुडे ?

गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेण एवतिकालस्स अफुण्णे एवतिकालस्स फुडे । सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया ।

[२१५६-२ प्र] भगवन् ! वह क्षेत्र कितने काल में पुद्गलों से आपूर्ण होता है तथा कितने काल में स्पृष्ट होता है ?

[२१५६-२] गौतम ! वह (उत्कृष्ट असंख्यातयोजन लम्बा क्षेत्र) एक समय, दो समय, तीन समय और चार समय के विग्रह से इतने काल में (उन पुद्गलों से) आपूर्ण और स्पृष्ट हो जाता है।

तत्पश्चात् शेष वही (पूर्वोक्त पाँच तथ्यों से युक्त) कथन (कदाचित् तीन, कदाचित् चार और) कदाचित् पांच क्रियाएँ लगती हैं, (यहाँ तक करना चाहिए।)

२१५७ एवं णेरइए वि । णवरं आयामेणं जहण्णेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवतिए खेत्ते अफुण्णे एवतिए खेत्ते फुडे, विग्गहेणं एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा, णवरं चउसमइएण ण भण्णति । सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया वि ।

[२१५७] समुच्चय जीव के समान नैरयिक की भी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए। विशेष यह है कि लम्बाई में जघन्य कुछ अधिक हजार योजन और उत्कृष्ट असंख्यात योजन एक ही दिशा में उक्त पुद्गलों से आपूर्ण होता है तथा इतना ही क्षेत्र स्पृष्ट होता है तथा एक समय, दो समय या तीन समय के विग्रह से (उस क्षेत्र का आपूर्ण और व्याप्त होना) कहना चाहिए, चार समय के विग्रह से नहीं कहना चाहिए।

तत्पश्चात् शेष वही सब पूर्वोक्त पांच तथ्यों वाला कथन (कदाचित् तीन, कदाचित् चार और) कदाचित् पांच क्रियाएँ होती हैं यहाँ तक करना चाहिए।

२१५८ [१] असुरकुमारस्स जहा जीवपए (सु. २१५६)। णवरं विग्गहो तिसमइओ जहा णेरइयस्स (सु. २१५७)। सेसं तं चेव ।

[२१५८-१] असुरकुमार की वक्तव्यता भी (सू. २१५६ में समुच्चय) जीवपद के मारणान्तिकसमुद्घातसम्बन्धी वक्तव्यता के अनुसार समझनी चाहिए। विशेष यह है कि असुरकुमार का विग्रह (सू. २१५७ में उक्त) नारक के विग्रह के समान तीन समय का समझ लेना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् है।

[२] जहा असुरकुमारे एव जाव वेमाणिए । णवर एगिंदिए जहा जीवे णिरवसेस ।

[२१५८-२] जिस प्रकार असुरकुमार के विषय मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ (आगे की सब वक्तव्यता) वैमानिक देव तक (कहनी चाहिए ।) विशेष यह है कि एकेन्द्रिय का (मारणान्तिक-समुद्घातसम्बन्धी) समग्र कथन समुच्चय जीव के समान (कहना चाहिए ।)

विवेचन—निष्कर्ष—मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत होकर जीव तजसशरीर आदि के अ तगत जो पुद्गल अपने आत्मप्रदेशो से पृथक् करता है (शरीर से निकालता है), उन पुद्गलो से शरीर का जितना विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) होता है, उतना क्षत्र तथा लम्बाई मे जघ य अपने शरीर से अगुल का असख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट असख्यात योजन तक का क्षेत्र एक दिशा मे परिपूर्ण और व्याप्त होता है । यहा यह समझ लेना चाहिए कि उक्त क्षेत्र एक ही दिशा मे आपूर्ण और व्याप्त होता है, विदिशा मे नही, क्याकि जीव के प्रदेश स्वभावत दिशा मे ही गमन करते हैं । जघन्य और उत्कृष्ट आत्मप्रदेशो द्वारा भी इतने ही क्षेत्र का परिपूरित होना सम्भव है । उत्कृष्टत लम्बाई मे असख्यात योजन जितना क्षेत्र विग्रहगति की अपक्षा उत्कृष्ट चार समया म आपूर्ण और स्पृष्ट होता है ।

इसके पश्चात् मारणान्तिकसमुद्घात से सम्बन्धित शेष सभी तथ्यो का कथन वेदना-समुदघातगत कथन के समान करना चाहिए ।[1]

नारक से लेकर वमानिक तक सभी कथन यावत् 'पाच क्रियाए लगती हैं', यहाँ तक कहना चाहिए । इसमे विशेष अन्तर यह है—लम्बाई मे जघन्य कुछ अधिक हजार योजन और उत्कृष्ट असख्यात योजन जितना क्षत्र एक दिशा मे आपूर्ण और व्याप्त होता है तथा चार समयो मे नही, किन्तु अधिक से अधिक तीन समयो मे विग्रहगति की अपेक्षा वह क्षेत्र आपूर्ण और स्पृष्ट होता है । असुरकुमार से लेकर वैमानिक तक समुच्चय जोवो के समान वक्तव्यता है, किन्तु विग्रहगति की अपेक्षा अधिक से अधिक तीन समयो मे यह क्षेत्र आपूर्ण और व्याप्त हो जाता है, यह कहना चाहिए । नारकादि का विग्रह अधिक से अधिक तीन समय का ही होता है । जैसे कोई नारक वायव्यदिशा मे और भरतक्षेत्र मे वतमान हो तथा पूवदिशा मे पचेन्द्रियतिर्यञ्च अथवा मनुष्य के रूप में उत्पन्न होने वाला हो तो वह प्रथम समय मे ऊपर जाता है, दूसरे समय मे वायव्यदिशा से पश्चिमदिशा मे जाता है और फिर पश्चिमदिशा से पूवदिशा मे जाता है । इस तरह तीन समय का ही विग्रह होता है, जिसे वमानिक तक समझ लेना चाहिए ।[2]

असुरकुमारो से लेकर ईशानदेवलोक तक के देव पृथ्वीकायिक, अप्कायिक या वनस्पतिकायिक के रूप मे भी उत्पन्न होते हैं । जब कोई सक्लिष्ट अध्यवसाय वाला असुरकुमार अपने ही कुण्डलादि के एकदेश म पृथ्वाकायिक के रूप मे उत्पन्न होने वाला हो और वह मारणान्तिकसमुद्घात करे तो

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ १०७८ स १०७९ तक
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा ७, पृ ४५४

२ (क) वही, भा ७, पृ ४५५
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ १०८१-८२

लम्बाई की अपेक्षा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र को ही व्याप्त करता है। एकेन्द्रिय की सारी वक्तव्यता समुच्चय जीव के समान समझनी चाहिए।[1]

वैक्रियसमुद्घात से समवहत जीवादि के क्षेत्र, काल एवं क्रिया की प्ररूपणा

२१५९ [१] जीवे णं भंते ! वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिए खेत्ते अफुण्णे केवतिए खेत्ते फुडे ?

गोयमा ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं संखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं विदिसिं वा एवतिए खेत्ते अफुण्णे एवतिए खेत्ते फुडे।

[२१५९-१ प्र.] भगवन् ! वैक्रियसमुद्घात से समवहत हुआ जीव, समवहत होकर (वैक्रिययोग्य शरीर के अन्दर रहे हुए) जिन पुद्गलों को बाहर निकालता है (आत्मप्रदेशों से पृथक् करता है), उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण होता है, कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है ?

[२१५९-१ उ.] गौतम ! जितना शरीर का विस्तार और बाहल्य (स्थूलत्व) है, उतना तथा लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट संख्यात योजन जितना क्षेत्र एक दिशा या विदिशा में आपूर्ण होता है और उतना ही क्षेत्र व्याप्त होता है।

[२] से णं भंते ! खेत्ते केवतिकालस्स अफुण्णे केवतिकालस्स फुडे ?

गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण एवतिकालस्स अफुण्णे एवतिकालस्स फुडे। सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया वि।

[२१५९-२ प्र.] भगवन् ! वह (पूर्वोक्त) क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण होता है और कितने काल में स्पृष्ट होता है ?

[२१५९-२ उ.] गौतम ! एक समय, दो समय या तीन समय के विग्रह से, अर्थात् इतने काल से (वह क्षेत्र) आपूर्ण और स्पृष्ट हो जाता है। शेष सब कथन पूर्ववत् 'पाँच क्रियाएँ लगती हैं', यहाँ तक कहना चाहिए।

२१६० एवं णेरइए वि। णवरं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवतिए खेत्ते०। केवतिकालस्स० तं चेव जहा जीवपए (सु. २१५९)।

[२१६०] इसी प्रकार नैरयिक की (वैक्रियसमुद्घात सम्बन्धी वक्तव्यता) भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट संख्यातयोजन जितना क्षेत्र एक दिशा में आपूर्ण और स्पृष्ट होता है। वह क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है ?, इसके उत्तर में (सू. २१५९ में उक्त समुच्चय) जीवपद के समान कथन किया गया है ?

२१६१ एवं जहा णेरइयस्स (सु. २१६०) तहा असुरकुमारस्स। णवरं एगदिसिं विदिसिं वा। एवं जाव थणियकुमारस्स।

[२१६१] जैसे नारक का वैक्रियसमुद्घातसम्बन्धी कथन किया है, वैसे ही असुरकुमार

---

1. प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. १०८३-८४

का समझना चाहिए। विशेष यह है कि एक दिशा या विदिशा मे (उतना क्षेत्र आपूर्ण एव स्पृष्ट होता है।) इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त ऐसा ही कथन समझना चाहिए।

२१६२ वाउक्काइयस्स जहा जीवपदे (सु २१५९)। णवर एगदिसिं।

[२१६२] वायुकायिक का (वैक्रियसमुद्घात सम्बन्धी) कथन समुच्चय जीवपद के समान (सू २१५९ के अनुसार) समझना चाहिए। विशेष यह है कि एक ही दिशा म (उक्त क्षेत्र आपूर्ण एव स्पृष्ट होता है।)

२१६३ पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स णिरवसेसं जहा णेरइयस्स (सु २१६०)।

[२१६३] जिस प्रकार (सू २१६० मे) नैरयिक का (वैक्रियसमुद्घात सम्बन्धी कथन) किया गया है, वसे ही पचेन्द्रियतिर्यञ्च का समग्र कथन करना चाहिए।

२१६४ मणूस-वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणियस्स णिरवसेसं जहा असुरकुमारस्स (सु २१६१)।

[२१६४] मनुष्य, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क एव वैमानिक का (वक्रियसमुद्घात सम्बन्धी) सम्पूर्ण कथन (सू २१६१ मे उक्त) असुरकुमार के समान कहना चाहिए।

विवेचन—वैक्रियसमुद्घात की क्षेत्रस्पर्शना, कालपरिमाण और क्रिया प्ररूपणा—(१) वैक्रियसमुद्घात से समवहत जीव वैक्रिययोग्य शरीर के अन्दर रहे हुए पुद्गलो को बाहर निकालता है (अपने से पृथक् करता है), तब उन पुद्गलो से, शरीर का जितना विस्तार तथा स्थूलत्व है, उतना तथा लम्बाई मे जघन्य अगुल का असख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट सख्यात योजन क्षेत्र एक दिशा मे अथवा विदिशा मे आपूर्ण एव व्याप्त (स्पृष्ट) होता है।

यहाँ लम्बाई मे जो उत्कृष्ट सख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र का व्याप्त होना कहा गया है, वह वायुकायिको को छोड कर नारक आदि की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि नारक आदि जब वक्रियसमुद्घात करते हैं, तब तथाविध प्रयत्न विशेष से सख्यात योजन-प्रमाण आत्मप्रदेशो के दण्ड की रचना करते हैं, असख्यात योजन-प्रमाण दण्ड की रचना नही करते। किन्तु वायुकायिक जीव वक्रियसमुद्घात के समय जघन्य और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवें भाग का ही दण्ड रचते हैं। इतने प्रमाण वाले दण्ड की रचना करते हुए नारक आदि उतने प्रदेश मे तैजसशरीर आदि के पुद्गलों को आत्मप्रदेशों से बाहर निकालते हैं, ऐसी स्थिति मे उन पुद्गलो से आपूर्ण और व्याप्त वह क्षेत्र लम्बाई मे उत्कृष्ट रूप स सख्यात योजन ही होता है। क्षेत्र का यह प्रमाण केवल वक्रियसमुद्घात म उत्पन्न प्रयत्न की अपेक्षा से कहा गया है।[1]

जब वक्रियसमुद्घात प्राप्त कोई जीव मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त होता है और फिर तीव्रतर प्रयत्न के बल से उत्कृष्ट देश मे तीन समय के विग्रह से उत्पत्तिस्थान म आता है, उस समय असख्यात योजन लम्बा क्षेत्र समझना चाहिए। यह असख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र को आपूर्ण करना मारणान्तिकसमुद्घात-जन्य होने से यहाँ विवक्षित नही है। इसी कारण वक्रियसमुद्घात-जन्य क्षेत्र

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि रा कोष, भा ७, पृ ४५६

को संख्यात योजन ही कहा गया है। इसी प्रकार नारक, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च एवं वायुकायिक की अपेक्षा से पूर्वोक्त प्रमाणयुक्त लम्बे क्षेत्र का आपूर्ण होना नियमतः एक दिशा में ही समझना चाहिए। नारक जीव पराधीन और अल्पऋद्धिमान् होते हैं। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च भी अल्पऋद्धिमान् होते हैं और वायुकायिक जीव विशिष्ट चेतना से विकल होते हैं। ऐसी स्थिति में जब वे वैक्रियसमुद्घात का प्रारम्भ करते हैं, तब स्वभावतः ही आत्मप्रदेशों का दण्ड निकलता है और आत्मप्रदेशों से पृथक् होकर स्वभावतः पुद्गलों का गमन श्रेणी के अनुसार होता है, विश्रेणी में गमन नहीं होता। इस कारण नारकों, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों और वायुकायिकों का पूर्वोक्त आयाम क्षेत्र एक दिशा में ही समझना चाहिए, विदिशा में नहीं, किन्तु भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव तथा मनुष्य स्वेच्छापूर्वक विहार करने वाले हैं—स्वच्छन्द हैं और विशिष्टलब्धि से सम्पन्न भी होते हैं, अतः वे विशिष्ट प्रयत्न द्वारा विदिशा में भी आत्मप्रदेशों का दण्ड निकालते हैं। इसी दृष्टि से कहा गया है—'णवरं एगदिसिं विदिसिं वा' अर्थात्—असुरकुमारादि भवनवासी आदि चारों निकायों के देव और मनुष्य एक दिशा में भी पूर्वोक्त क्षेत्र को आपूर्ण और व्याप्त करते हैं।[1]

(२) पूर्वोक्त प्रमाण वाला क्षेत्र, विग्रहगति से उत्पत्तिदेश पर्यन्त एक समय, दो समय अथवा तीन समय में विग्रहगति से आपूर्ण एवं व्याप्त होता है। इस प्रकार विग्रहगति की अपेक्षा से मरण समय से लेकर उत्पत्तिदेश पर्यन्त पूर्वोक्त प्रमाण क्षेत्र का आपूरण से अधिक से अधिक तीन समय में हो जाता है, उसमें चौथा समय नहीं लगता। वैक्रियसमुद्घातगत वायुकायिक भी प्रायः त्रसनाडी में उत्पन्न होता है और त्रसनाडी की विग्रहगति अधिक से अधिक तीन समय की होती है। इसलिए यहाँ कहा गया है, कि इतने (एक, दो या तीन) समय में पूर्वोक्त प्रमाण वाला क्षेत्र आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है।[2]

(३-४-५-६) इसके पश्चात् क्रियासम्बन्धी चार तथ्यों का प्ररूपण वेदनासमुद्घात सम्बन्धी कथन के समान ही समझना चाहिए।

तैजससमुद्घात-समवहत जीवादि के क्षेत्र, काल एवं क्रिया की प्ररूपणा

२१६५. जीवे णं भंते ! तेयगसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिए खेत्ते अफुण्णे० ? एवं जहेव वेउव्वियसमुग्घाए (सु० २१५९-६४) तहेव। णवरं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, सेसं तं चेव। एवं जाव वेमाणियस्स, णवरं पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स एगदिसिं एवतिए खेत्ते अफुण्णे० ?

[२१६५ प्र.] भगवन् ! तैजससमुद्घात से समवहत जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है, भगवन् ! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण और कितना क्षेत्र स्पृष्ट (व्याप्त) होता है ?

[२१६५ उ.] गौतम ! जैसे (सू. २१५९-६४ में) वैक्रियसमुद्घात के विषय में कहा है, उसी प्रकार तैजससमुद्घात के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि तैजससमुद्घातगत

१ [क] प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अ. रा. कोष भा. ७, पृ. ४५२
[ख] प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भाग ५, पृ. १०९३-१०७४
२ पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ. ४४१

पुद्गलो से लम्बाई मे जघन्य अगुल का असख्यातवाँ भाग क्षेत्र आपूर्ण एव स्पृष्ट होता है। (तैजस-समुद्घातसम्बन्धी) शेष वक्तव्यता वैक्रियसमुद्घात की वक्तव्यता के समान है।

इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च एक ही दिशा मे पूर्वोक्त क्षेत्र को आपूर्ण एव व्याप्त करते हैं।

विवेचन—तैजससमुद्घात—तैजससमुद्घात चारो प्रकार के देवनिकायो, पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो मे ही होता है। इसके अतिरिक्त नारक तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय मे नही होता। देवनिकाय आदि तीनो अतीव प्रयत्नशील होते हैं। अत जब वे तैजससमुद्घात प्रारम्भ करते हैं, तब जघन्य लम्बाई मे अगुल का असख्यातवाँ भाग क्षेत्र आपूर्ण एव व्याप्त होता है, सख्यातवाँ भाग नही। पूर्वोक्त प्रमाण क्षेत्र पचेन्द्रियतिर्यञ्चो को छोडकर दिशा या विदिशा मे आपूर्ण होता है। पचेन्द्रियतिर्यञ्च द्वारा केवल एक दिशा मे पूर्वोक्त क्षेत्र आपूर्ण एव स्पृष्ट होता है। शेष सब कथन वैक्रियसमुद्घात के कथन के समान समझना चाहिए।[1]

आहारकसमुद्घात-समवहत जीवादि के क्षेत्र, काल एव क्रिया की प्ररूपणा

२१६६ [१] जीवे ण भते ! आहारगसमुग्घाएण समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइति तेहि ण भते ! पोग्गलेहिं केवतिए खेत्ते अफुण्णे केवतिए खेत्ते फुडे।

गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते विक्खभ बाहल्लेण, आयामेण, जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जतिभाग उक्कोसेण सखेज्जाइ जोयणाइ एगदिसि एयइए खेत्ते०।[2]

एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण एवतिकालस्स अफुण्णे एवतिकालस्स फुडे।

[२१६६-१ प्र] भगवन् ! आहारकसमुद्घात से समवहत जीव समवहत होकर जिन (आहारकयोग्य) पुद्गलो को (अपने शरीर से) बाहर निकालता है, भगवन् ! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट (व्याप्त) होता है ?

[२१६६-१ उ] गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य से शरीरप्रमाण मात्र (क्षेत्र) तथा लम्बाई मे जघन्य अगुल का असख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट सख्यात योजन क्षेत्र एक दिशा मे (उन पुद्गलों से) आपूर्ण और स्पृष्ट होता है।

[२] ते ण भते ! पोग्गला केवतिकालस्स णिच्छुभति ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तस्स।

[२१६६-२ प्र] भगवन् ! (आहारकसमुद्घातो जीव) उन पुद्गलो को कितने समय मे बाहर निकालता है ?

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५, पृ ११००-११०१

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभिधान रा कोष भा ७, पृ ४५६

२ पूरक पाठ— अफुण्णे एवइए खेत्ते फुडे।

[प्र] से ण भते ! केवइकालस्स अफुण्णे केवइकालस्स फुडे ?

[उ] गोयमा ! — '

[२१६६-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त में (वह उन पुद्गलों को) बाहर निकालता है।

[३] ते णं भंते ! पोग्गला णिच्छूढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणंति जाव उद्दवेंति तम्रो णं भंते ! जीवे कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए।

ते णं भंते ! जीवा तातो जीवाम्रो कतिकिरिया ?

गोयमा ! एवं चेव।

[२१६६-३ प्र] भगवन् ! बाहर निकाले हुए वे पुद्गल वहाँ जिन प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का अभिघात करते हैं, यावत् उन्हें प्राणरहित कर देते हैं, भगवन् ! उनसे (समुद्घातकर्त्ता) जीव को कितनी क्रियाएँ लगती हैं ?

[२१६६-३ उ] (ऐसी स्थिति में) वह कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है।

[प्र] भगवन् ! वे आहारकसमुद्घात द्वारा बाहर निकाले हुए पुद्गलों से स्पृष्ट हुए जीव आहारकसमुद्घात करने वाले जीव के निमित्त से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं ?

[उ] गौतम ! इसी प्रकार समझना चाहिए।

[४] से णं भंते ! जीवे ते य जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघाएणं कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पंचकिरिया वि।

[२१६६-४ प्र] (आहारकसमुद्घातकर्त्ता) वह जीव तथा (आहारकसमुद्घातगत पुद्गलों से स्पृष्ट) वे जीव, अन्य जीवों का परम्परा से घात करने के कारण कितनी क्रियाओं वाले होते हैं ?

[२१६६-४ उ] गौतम ! (पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार) वे तीन क्रिया वाले, चार क्रिया वाले अथवा पांच क्रिया वाले भी होते हैं।

२१६७. एवं मणूसे वि।

[२१६७] इसी प्रकार मनुष्य के आहारकसमुद्घात की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

विवेचन—आहारकसमुद्घात सम्बन्धी वक्तव्यता—शरीर के विस्तार और स्थौल्य जितना क्षेत्र विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा आपूर्ण और स्पृष्ट होता है। लम्बाई में जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट संख्यात योजन क्षेत्र उन पुद्गलों से एक दिशा में आपूर्ण स्पृष्ट होता है। वे पुद्गल विदिशा में क्षेत्र को आपूर्ण या व्याप्त नहीं करते।

विग्रह की अपेक्षा से पूर्वोक्त क्षेत्र एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है।

आहारकसमुद्घात मनुष्यों में ही हो सकता है। मनुष्यों में भी उन्हीं का होता है जो चौदह पूर्वों का अध्ययन कर चुके हों। चौदह पूर्वों के अध्येताओं में भी उन्हीं मुनियों को होता है, जो

आहारकलब्धि के धारक हो। अतएव चौदह पूर्वों के पाठक और आहारकलब्धि के धारक मुनिवर जब आहारकसमुद्घात करते हैं, तब जघन्य और उत्कृष्ट रूप से पूर्वोक्त क्षेत्र को आत्मप्रदेशों से पृथक् किये पुद्गलों से एक दिशा में आपूर्ण और स्पृष्ट करते हैं, विदिशा में नहीं। विदिशा में जो आपूर्ण स्पृष्ट होता है, उसके लिए दूसरे प्रयत्न की आवश्यकता होती है, किन्तु आहारकलब्धि के धारक तथा आहारकसमुद्घात करने वाले मुनि इतने गम्भीर होते हैं कि उन्हें वैसा कोई प्रयोजन नहीं होता। अतः वे दूसरा प्रयत्न नहीं करते।

इसी प्रकार आहारकसमुद्घातगत कोई जीव मृत्यु को प्राप्त होता है और विग्रहगति से उत्पन्न होता है, और वह विग्रह अधिक से अधिक तीन समय का होता है।

अन्य सब आहारकसमुद्घातविषयक कथन वेदनासमुद्घात के समान जानना चाहिए।[1]

दण्डकक्रम से आहारकसमुद्घात की वक्तव्यता क्यों?—यद्यपि आहारकसमुद्घात मनुष्यों को ही होता है, अतएव समुच्चय जीवपद में जो आहारकसमुद्घात की प्ररूपणा की गई है, उसमें मनुष्य का अन्तर्भाव हो ही जाता है, तथापि दण्डकक्रम से विशेषरूप से प्राप्त मनुष्य के आहारकसमुद्घात का भी उल्लेख किया गया है। इस कारण यहाँ पुनरुक्तिदोष की कल्पना नहीं करनी चाहिए।[2]

केवलिसमुद्घात-समवहत अनगार के निर्जीर्ण अन्तिम पुद्गलों की लोकव्यापिता

२१६८. अणगारस्स णं भंते! भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो! सव्वलोगं पि य णं ते फुसित्ता णं चिट्ठंति?

हंता गोयमा! अणगारस्स भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो! सव्वलोगं पि य णं ते फुसित्ता णं चिट्ठंति।

[२१६८ प्र.] भगवन्! केवलिसमुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम (अन्तिम) निर्जरा-पुद्गल हैं, हे आयुष्मन् श्रमणप्रवर! क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं? क्या वे समस्त लोक को स्पर्श करके रहते हैं?

[२१६८ उ.] हाँ, गौतम! केवलिसमुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम निर्जरा-पुद्गल होते हैं, हे आयुष्मन् श्रमण! वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं तथा वे समस्त लोक को स्पर्श करके रहते हैं।

२१६९. छउमत्थे णं भंते! मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं वा फासं जाणति पासति?

---

१ (क) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अभि. रा. कोष, भा. ७, पृ. ४४९
(ख) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ११०२-११०३

२ (क) वही, भा. ७, पृ. ११०७
(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति अभि. रा. कोष भा. ७, पृ. ४४९

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणटठेणं भंते ! एवं वुच्चति छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणति पासति ?

गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूय संठाणसंठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते वट्टे पडिपुण्णचंद संठाणसंठिए एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते । देवे णं महिड्ढीए जाव महासोक्खे एगं महं सविलेवणं गंधसमुग्गयं गहाय तं अवदालेति, तं महं एगं सविलेवणं गंधसमुग्गयं अवदालेत्ता इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवातेहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा से णूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?

हंता फुडे ।

छउमत्थे णं गोतमा ! मणूसे तेसिं घाणपोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणति पासति ?

भगवं ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

से तेणटठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणति पासति,, एसुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वलोगं पि य णं फुसित्ता णं चिट्ठंति ।

[२१६९ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलों के चक्षु-इन्द्रिय (वर्ण) से किंचित् वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय (गन्ध) को रसनेन्द्रिय (रस) से रस को अथवा स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श को जानता-देखता है ?

[२१६९ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) शक्य (समर्थ) नहीं है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण ऐसा कहते हैं कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलों के चक्षुइन्द्रिय से वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से गन्ध को, रसनेन्द्रिय से रस को तथा स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श को किंचित् भी नहीं जानता-देखता ?

[उ] गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप समस्त द्वीप-समुद्रों के बीच में है सबसे छोटा है, वृत्ताकार (गोल) है, तेल के पूए के आकार का है, रथ के पहिये (चक्र) के आकार-सा गोल है, कमल की कर्णिका के आकार-सा गोल है, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार सा गोल है । लम्बाई और चौड़ाई (आयाम एवं विष्कम्भ) में एक लाख योजन है । तीन लाख, सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक-सौ अट्ठाईस धनुष, साढ़े तेरह अंगुल से कुछ विशेषाधिक परिधि से युक्त कहा है । एक महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव विलेपन सहित सुगन्ध की एक बड़ी डिबिया को (हाथ में लेकर) उसे खोलता है । फिर विलेपनयुक्त सुगन्ध की खुली हुई उस बड़ी डिबिया को, इस प्रकार

हाथ मे ले करके सम्पूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप को तीन चुटकियो मे इक्कीस बार घूम कर वापस शीघ्र आ जाय, तो हे गौतम ! (यह बताओ कि) क्या वास्तव मे उन गन्ध के पुद्गलो से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हो जाता है ?

[उ] हा, भते ! स्पृष्ट (व्याप्त) हो जाता है ।

[प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य (समग्र जम्बूद्वीप मे व्याप्त) उन घ्राण-पुद्गलों के वर्ण को चक्षु से, गन्ध को नासिका से, रस को रसेन्द्रिय से और स्पर्श को स्पर्शेन्द्रिय से किंचित् जान-देख पाता है ?

[उ] हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है । (भगवान्—) इसी कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलो के वर्ण को नेत्र से, गन्ध को नाक से, रस को जिह्वा से और स्पर्श को स्पर्शेन्द्रिय से किंचित् भी नही जान-देख पाता । हे आयुष्मन् श्रमण ! वे (निर्जरा-) पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं तथा वे समग्र लोक को स्पर्श करके रहे हुए हैं ।

विवेचन—केवलिसमुद्घात-समवहत भावितात्मा अनगार के चरम-निर्जरा-पुद्गल—प्रस्तुत केवलिसमुद्घात प्रकरण मे दो बातो को स्पष्ट किया गया है—(१) यह बात यथार्थ है कि केवलि-समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के चरम (चतुर्थ) समयवर्ती निर्जरा-पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म हैं तथा वे समग्र लोक को व्याप्त करके रहते हैं । (२) छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलो के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का किंचित् भी नही जान-देख सकते, क्योकि एक तो वे पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म हैं, दूसरे वे पुद्गल समग्र लोक मे व्याप्त हैं, कही भी कोई ऐसी जगह नही है, जहाँ वे न हो और समग्र लोक तो बहुत ही बडा है । लोक का एक भाग जम्बूद्वीप है, जो समस्त द्वीप-समुद्रो के बीच मे है, और सबसे छोटा है, क्योकि जम्बूद्वीप से लेकर सभी द्वीप-समुद्रो का विस्तार दुगुना-दुगुना है । अर्थात् जम्बूद्वीप से आगे के लवणसमुद्र और धातकीखण्ड आदि द्वीप, अपने से पहले वाले द्वीप-समुद्रो से लम्बाई-चौडाई मे दुगुने और परिधि मे बहुत बडे हैं । तेल मे पकाये हुए पूए के समान या रथ के चक्र के समान अथवा कमलकर्णिका के समान आकार का या पूर्ण चन्द्रमा के समान गोल जम्बूद्वीप भी लम्बाई चौडाई मे एक लाख योजन का है । तीन लाख, सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष तथा १३½ अगुल से कुछ अधिक की उसकी परिधि है । कोई महर्द्धिक एव यावत् महासुखी, महाबली देव विलेपन द्रव्यो से आच्छादित एव गन्धद्रव्यो से परिपूर्ण एक डिबिया को लेकर उसे खोले और फिर उसे लेकर सारे जम्बूद्वीप के, तीन चुटकियाँ बजाने जितने समय में इक्कीस बार चक्कर लगा कर आ जाए, इतने समय मे ही सारा जम्बूद्वीप उन गन्ध-द्रव्यो (पुद्गलो) से व्याप्त हो जाता है । सारे लोक मे व्याप्त को तो दूर रहा, लोक के एक प्रदेश—जम्बूद्वीप मे व्याप्त गन्धपुद्गलो को भी जैसे छद्मस्थ मनुष्य पाचो इन्द्रियो से जान-देख नहीं सकता, इसी प्रकार छद्मस्थ मनुष्य केवलिसमुद्घात-समवहत केवली भगवान् द्वारा निर्जीर्ण अन्तिम पुद्गलों को नहीं जान-देख सकता, क्योकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं तथा सर्वत्र फैले हुए हैं ।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—चरमा णिज्जरापोग्गला—केवलिसमुद्घात के चौथे समय के निर्जीर्ण पुद्गल । वण्णेण—वर्णग्राहक नेत्रेन्द्रिय से । घाणेण—गन्धग्राहक नासिका—घ्राणेन्द्रिय—से

---

1 प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका), भा ५ पृ १११३ से १११६

रसेण—रसग्राहक रसनेन्द्रिय से। फासेण—स्पर्शग्राहक स्पर्शेन्द्रिय से। सव्वब्भंतराए—सब के बीच में। सव्वखुड्डाए—सबसे छोटे। तेलापूयसंठाणसंठिए—तेल के मालपूए के समान आकार का। रहचक्कवालसंठाणसंठिए—रथ के चक्र के समान गोलाकार। परिक्खेवेण—परिधि से युक्त। केवल-कप्प—सम्पूर्ण। अच्छरा णिवातेहिं—चुटकियाँ बजा कर। अणुपरियट्टित्ता—चक्कर लगाकर या घूमकर। फुडे—स्पृष्ट है—व्याप्त है।[1]

आशय—इस प्रकरण को इस प्रकार से प्रारम्भ करने का आशय यह है कि केवलिसमुद्‌घात से समवहत मुनि के केवलिसमुद्‌घात के समय शरीर से बाहर निकाले हुए चरमनिर्जरा पुद्‌गलों के द्वारा समग्र लोक व्याप्त है। जिसे केवलि ही जान-देख सकता है, छद्मस्थ मनुष्य नहीं। छद्मस्थ मनुष्य सामान्य या विशेष किसी भी रूप में उन्हें जान देख नहीं सकता।[2]

केवलिसमुद्‌घात का प्रयोजन

२१७० [१] कम्हा णं भंते! केवली समुग्घायं गच्छति?

गोयमा! केवलिस्स चत्तारि कम्मंसा अक्खीणा अवेदिया अणिज्जिण्णा भवंति। तं जहा—वेदणिज्जे १ आउए २ णामे ३ गोए ४। सव्वबहुप्पएसे से वेदणिज्जे कम्मे भवति, सव्वत्थोवे से आउए कम्मे भवति।

> विसमं समं करेति बंधणेहिं ठितीहि य।
> विसमसमीकरणयाए बंधणेहिं ठितीहि य॥ २२८॥

एवं खलु केवली समोहण्णति, एवं खलु समुग्घायं गच्छति।

[२१७०-१ प्र.] भगवन्! किस प्रयोजन से केवली समुद्‌घात करते हैं?

[२१७०-१ उ.] गौतम! केवली के चार कर्मांश क्षीण नहीं हुए हैं, वेदन नहीं किए (भोगे नहीं गए) हैं, निर्जरा को प्राप्त नहीं हुए हैं, (चार कर्म) इस प्रकार हैं—(१) वेदनीय, (२) आयु, (३) नाम और (४) गोत्र। उनका वेदनीयकर्म सबसे अधिक प्रदेशों वाला होता है। उनका सबसे कम (प्रदेशों वाला) आयुकर्म होता है।

[गाथार्थ—] वे बन्धनों और स्थितियों से विषम (कर्म) को सम करते हैं। (वस्तुतः) बन्धनों और स्थितियों के विषम कर्मों का समीकरण करने के लिए केवली केवलिसमुद्‌घात करते हैं तथा इसी प्रकार केवलिसमुद्‌घात को प्राप्त होते हैं।

[२] सव्वे वि णं भंते! केवली समोहण्णंति? सव्वे वि णं भंते! केवली समुग्घायं गच्छंति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे,

> जस्साऽऽउएण तुल्लाइं बंधणेहिं ठितीहि य।
> भवोवग्गहकम्माइं समुग्घायं से ण गच्छति॥ २२९॥

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. १११४ से १११६ तक

२ पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. ४४३

अगतूण समुग्घाय अणता केवली जिणा।
जर-मरणविप्पमुक्का सिद्धि वरगति गता ॥ २३० ॥

[२१७०-२ प्र] भगवन् ! क्या सभी केवली भगवान् समुदघात करते हैं ? तथा क्या सब केवली समुद्घात को प्राप्त होते हैं ?

[२१७०-२ उ] गौतम ! यह अर्थ समथ नहीं है।

[गाथाथ—] जिसके भवोपग्राही कम ब धन एव स्थिति से आयुष्यकम के तुल्य होते हैं, वह कवली केवलिसमुद्घात नहीं करता।

समुद्घात किये बिना ही अन त केवलज्ञानी जिनेन्द्र जरा और मरण से सवथा रहित हुए हैं तथा श्रेष्ठ सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं।

विवेचन—केवली द्वारा केवलिसमुदघात क्यो और क्यो नहीं ?—प्रश्न का आशय यह है कि केवली तो कृतकृत्य तथा अनन्तज्ञानादि से परिपूर्ण होते हैं, उनका प्रयोजन शेष नहीं रहता, फिर उन्हें केवलिसमुद्घात करने की क्या आवश्यकता ?

इसका समाधान स्वय शास्त्रकार करते हैं कि केवली अभी पूर्ण रूप से कृतकृत्य, आठो कर्मों से रहित, सिद्ध-बुद्ध मुक्त नहीं हुए, उनके भी चार अघातीकम शेष हैं, जो कि भवोपग्राही कम होते हैं। अतएव केवली के चार प्रकार के कम क्षीण नहीं हुए, क्योंकि उनका पूर्णत वेदन नहीं हुआ। कहा भी है—'नाभुक्त क्षीयते कम।' कर्मों का क्षय तो नियम से तभी होना है, जब उनका प्रदेशो से या विपाक से वेदन कर लिया जाए, भोग लिया जाए। कहा भी है—"सव्व च पएसतया भुज्जइ कम्ममणुभावओ भइय" अर्थात् सभी कम प्रदेशो से भोगे जाते हैं, विपाक से भोगने की भजना है। केवली के ४ कम, जिन्हें भोगना बाकी है, ये हैं—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। चूकि इन चारो कर्मों का वेदन नहीं हुआ, इसलिए उनकी निर्जरा नहीं हुई। अर्थात् वे आत्मप्रदेशो से पृथक् नहीं हुए। इन चारो मे वेदनीयकम सर्वाधिक प्रदेशो वाला होता है। नाम और गोत्र भी अधिक प्रदेशो वाला है, परन्तु आयुष्यकम के बराबर नहीं। आयुष्यकर्म सबसे कम प्रदेशो वाला होता है। केवली के आयुष्यकम के बराबर शेष तीन कम न हो तो वे उन विषम स्थिति एव बन्ध वाले कर्मों को आयुकम के बराबर करके सम करते हैं। ऐसे सम करने वाले केवली केवलिसमुदघात करते हैं। वे विषम कर्मों को, जो कि बन्ध से और स्थिति से सम नहीं हैं, उन्हें सम करते हैं, ताकि चारो कर्मों का एक साथ क्षय हो सके। योग (मन, वचन, काया का व्यापार) के निमित्त से जो कम बधते हैं, अर्थात् आत्मप्रदेशो के साथ एकमेक होते हैं, उन्हें बन्धन कहते हैं और कर्मों के वेदन के काल को स्थिति कहते हैं। बन्धन और स्थिति, इन दोनो से केवली वेदनीयादि कर्मों का आयुष्यकम के बराबर करते हैं। कम द्रव्यबन्धन कहलाते हैं, जबकि वेदनकाल को स्थिति कहते हैं। यही केवलिसमुद्घात का प्रयोजन है। जिन केवलियो का आयुष्यकम बन्धन और स्थिति से भवोपग्राही अन्य कर्मों के तुल्य होता है, वे केवलिसमुद्घात नहीं करते, वे केवलिसमुद्घात किये बिना ही सब कम मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध एव सवजरा मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे अनन्त सिद्ध हुए हैं। समुद्घात वे ही केवली करते हैं, जिनकी आयु कम होती है और वेदनीयादि तीन कर्मों की स्थिति एव प्रदेश अधिक होते हैं तब उन सबको समान करने हेतु समुद्घात किया जाता है।

समुद्घात करने से उक्त चारों कर्मों के प्रदेश और स्थितिकाल में समानता आ जाती है। यदि वे समुद्घात न करें तो आयुकर्म पहले ही समाप्त हो जाए और उक्त तीन कर्म शेष रह जाएँ। ऐसी स्थिति में या तो तीन कर्मों के साथ वे मोक्षगति में जाएँ या नवीन आयुकर्म का बन्ध करें, किन्तु ये दोनों ही बातें असम्भव हैं। मुक्तदशा में कर्म शेष नहीं रह सकते और न ही मुक्त जीव नये आयुकर्म का बन्ध कर सकते हैं। इसी कारण केवलिसमुद्घात के द्वारा वेदनीयादि तीन कर्मों के प्रदेशों की विशिष्ट निर्जरा करके तथा उनकी लम्बी स्थिति का घात करके उन्हें आयुष्यकर्म के बराबर कर लेते हैं, जिससे चारों का क्षय एक साथ हो सके।

गौतम स्वामी विशेष परिज्ञान के लिए पुनः प्रश्न करते हैं—भगवन्! क्या सभी केवली समुद्घात में प्रवृत्त होते हैं? समाधान—न सभी केवली समुद्घात के लिए प्रवृत्त होते हैं और न ही सभी समुद्घात करते हैं। कारण ऊपर बताया जा चुका है। समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा का अपने शुद्ध स्वभाव में स्थित होना सिद्धि है। जिसके चारों कर्म स्वभावतः समान होते हैं, वह एक साथ उनका क्षय करके समुद्घात किये बिना ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।[1]

केवलिसमुद्घात के पश्चात् योगनिरोध आदि की प्रक्रिया

२१७१. कतिसमइए णं भंते! आउज्जीकरणे पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आउज्जीकरणे पण्णत्ते।

[२१७१ प्र.] भगवन्! आवर्जीकरण कितने समय का कहा गया है?

[२१७१ उ.] गौतम! आवर्जीकरण असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त का कहा गया है।

२१७२. कतिसमइए णं भंते! केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठसमइए पण्णत्ते। तं जहा—पढमे समए दंडं करेति, बिइए समए कवाडं करेति, ततिए समए मंथं करेति, चउत्थे समए लोगं पूरेइ, पंचमे समये लोयं पडिसाहरति, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरति, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति, दंडं पडिसाहरित्ता ततो पच्छा सरीरत्थे भवति।

[२१७२ प्र.] भगवन्! केवलिसमुद्घात कितने समय का कहा गया है?

[२१७२ उ.] गौतम! वह आठ समय का कहा गया है, वह इस प्रकार है—प्रथम समय में दण्ड (की रचना) करता है, [illegible] समय में [illegible] करता है, तृतीय समय में मन्थान करता है, चौथे समय में लोक को व्याप्त कर[illegible] लोक पूरण को सिकोड़ता है, छठे समय में मन्थान को सिकोड़ता [illegible] है और आठवें समय में दण्ड को सिकोड़ता है और दण्ड का [illegible] जाता है।

[illegible]

1. [illegible]

गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ णो वइजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ ।

[२१७३-१ प्र] भगवन् ! तथारूप से समुद्घात प्राप्त केवली क्या मनोयोग का प्रयोग करता है, वचनयोग का प्रयोग करता है, अथवा काययोग का प्रयोग करता है ?

[२१७३-१ उ] गौतम ! वह मनोयोग का प्रयोग नहीं करता, वचनयोग का प्रयोग नहीं करता, किन्तु काययोग का प्रयोग करता है ।

[२] कायजोगण्णं भंते ! जुंजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ ओरालियमीससरीरकायजोगं जुंजइ ? किं वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ वेउव्वियमीससरीरकायजोगं जुंजइ ? आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ आहारगमीससरीरकायजोगं जुंजइ ? किं कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ ?

गोयमा ! ओरालियसरीरकायजोगं पि जुंजइ ओरालियमीससरीरकायजोगं पि जुंजइ, णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ णो वेउव्वियमीससरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ णो आहारगमीससरीरकायजोगं जुंजइ, कम्मगसरीरकायजोगं पि जुंजइ, पढमऽट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, बितिय-छट्ठ-सत्तमेसु समएसु ओरालियमीसगसरीरकायजोगं जुंजइ, ततिय-चउत्थ-पंचमेसु समएसु कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ ।

[२१७३-२ प्र] भगवन् ! काययोग का प्रयोग करता हुआ केवली क्या औदारिकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, औदारिकमिश्रशरीरकाय योग का प्रयोग करता है, वैक्रियशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, आहारकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, आहारकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है अथवा कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है ?

[२१७३-२ उ] गौतम ! (काययोग का प्रयोग करता हुआ केवली) औदारिकशरीरकाययोग का भी प्रयोग करता है, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग का भी प्रयोग करता है, किन्तु न तो वैक्रियशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, न वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, न आहारकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है और न ही आहारकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, वह कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है । प्रथम और अष्टम समय में औदारिकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है तथा तीसरे, चौथे और पाचवें समय में कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है ।

२१७४ [१] से णं भंते ! तहासमुग्घायगते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, से णं तओ पडिनियत्तति, ततो पडिनियत्तित्ता ततो पच्छा मणजोगं पि जुंजइ वइजोगं पि जुंजइ कायजोगं पि जुंजइ ।

[२१७४-१ प्र] भगवन् ! तथारूप समुद्घात को प्राप्त केवली क्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं, क्या वह सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं ?

समुद्घात करने से उक्त चारों कर्मों में प्रदेश और स्थितिकाल में समानता आ जाती है। यदि वे समुद्घात न करें तो आयुकर्म पहले ही समाप्त हो जाए और उक्त तीन कर्म शेष रह जाएँ। ऐसी स्थिति में या तो तीन कर्मों के साथ वे मोक्षगति में जाएँ या नवीन आयुकर्म का बन्ध करें, किन्तु ये दोनों ही बातें असम्भव हैं। मुक्तदशा में कर्म शेष नहीं रह सकते और न ही मुक्त जीव नये आयुकर्म का बन्ध कर सकते हैं। इसी कारण केवलिसमुद्घात के द्वारा वेदनीयादि तीन कर्मों के प्रदेशों की विशिष्ट निर्जरा करके तथा उनकी लम्बी स्थिति का घात करके उन्हें आयुष्यकर्म के बराबर कर लेते हैं, जिससे चारों का क्षय एक साथ हो सके।

गौतम स्वामी विशेष परिज्ञान के लिए पुनः प्रश्न करते हैं—भगवन्! क्या सभी केवली समुद्घात में प्रवृत्त होते हैं? समाधान—न सभी केवली समुद्घात के लिए प्रवृत्त होते हैं और न ही सभी समुद्घात करते हैं। कारण ऊपर बताया जा चुका है। समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा का अपने शुद्ध स्वभाव में स्थित होना सिद्धि है। जिसके चारों कर्म स्वभावतः समान होते हैं, वह एक साथ उनका क्षय करके समुद्घात किये बिना ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।[1]

केवलिसमुद्घात के पश्चात् योगनिरोध आदि की प्रक्रिया

२१७१ कतिसमइए णं भंते! आउज्जीकरणे पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आउज्जीकरणे पण्णत्ते।

[२१७१ प्र.] भगवन्! आवर्जीकरण कितने समय का कहा गया है?

[२१७१ उ.] गौतम! आवर्जीकरण असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त का कहा गया है।

२१७२ कतिसमइए णं भंते! केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठसमइए पण्णत्ते। तं जहा—पढमे समए दंडं करेति, बिइए समए कवाडं करेति, ततिए समए मंथं करेति, चउत्थे समए लोगं पूरेइ, पंचमे समये लोयं पडिसाहरति, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरति, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति, दंडं पडिसाहरित्ता ततो पच्छा सरीरत्थे भवति।

[२१७२ प्र.] भगवन्! केवलिसमुद्घात कितने समय का कहा गया है?

[२१७२ उ.] गौतम! वह आठ समय का कहा गया है, वह इस प्रकार है—प्रथम समय में *दण्ड (की रचना)* करता है, *द्वितीय समय में कपाट करता है, तृतीय समय में मन्थान करता है,* चौथे समय में लोक को व्याप्त करता है, पंचम समय में लोकपूरण को सिकोड़ता है, छठे समय में मन्थान को सिकोड़ता है, सातवें समय में कपाट को सिकोड़ता है और आठवें समय में दण्ड को सिकोड़ता है और दण्ड का संकोच करते ही (पूर्ववत्) शरीरस्थ हो जाता है।

२१७३ [१] से णं भंते! तहासमुग्घायगते किं मणजोगं जुंजइ वइजोगं जुंजइ कायजोगं जुंजइ?

---

१ (क) प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ११२५ से ११२८

(ख) प्रज्ञापना मलयवृत्ति, अ. रा. कोष, भा. ७ पृ. ८२१

गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ णो वइजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ ।

[२१७३-१ प्र] भगवन् ! तथारूप से समुद्घात प्राप्त केवली क्या मनोयोग का प्रयोग करता है, वचनयोग का प्रयोग करता है, अथवा काययोग का प्रयोग करता है ?

[२१७३-१ उ] गौतम ! वह मनोयोग का प्रयोग नहीं करता, वचनयोग का प्रयोग नहीं करता, किन्तु काययोग का प्रयोग करता है ।

[२] कायजोगण्णं भंते ! जुंजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ ओरालियमीसासरीरकायजोगं जुंजइ ? किं वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ वेउव्वियमीसासरीरकायजोगं जुंजइ ? आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ आहारगमीसासरीरकायजोगं जुंजइ ? किं कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ ?

गोयमा ! ओरालियसरीरकायजोगं पि जुंजइ ओरालियमीसासरीरकायजोगं पि जुंजइ, णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ णो वेउव्वियमीसासरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ णो आहारगमीससरीरकायजोगं जुंजइ, कम्मगसरीरकायजोगं पि जुंजइ, पढमऽट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, बितिय-छट्ठ-सत्तमेसु समएसु ओरालियमीसगसरीरकायजोगं जुंजइ, ततिय-चउत्थ पंचमेसु समएसु कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ ।

[२१७३-२ प्र] भगवन् ! काययोग का प्रयोग करता हुआ केवली क्या औदारिकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, औदारिकमिश्रशरीरकाय योग का प्रयोग करता है, वैक्रियशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, आहारकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, आहारकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है अथवा कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है ?

[२१७३-२ उ] गौतम ! (काययोग का प्रयोग करता हुआ केवली) औदारिकशरीरकाययोग का भी प्रयोग करता है, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग का भी प्रयोग करता है, किन्तु न तो वक्रियशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, न वक्रियमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है,न आहारकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है और न ही आहारकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, वह कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है । प्रथम और अष्टम समय में औदारिकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है, दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है तथा तीसरे, चौथे और पाचवें समय में कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है ।

२१७४ [१] से णं भंते ! तहासमुग्घायगते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, से णं तओ पडिनियत्तति, ततो पडिनियत्तित्ता ततो पच्छा मणजोगं पि जुंजइ वइजोगं पि जुंजइ कायजोगं पि जुंजइ ।

[२१७४-१ प्र] भगवन् ! तथारूप समुद्घात को प्राप्त केवली क्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं, क्या वह सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं ?

[२१७४-१ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नहीं है। पहले वे उससे (केवलिसमुद्घात से) प्रतिनिवृत्त होते हैं। तत्पश्चात् वे मनोयोग का उपयोग करते हैं, वचनयोग और काययोग का भी उपयोग करते हैं।

[२] मणजोगण्णं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजइ मोसमणजोगं जुंजइ सच्चामोसमणजोगं जुंजइ असच्चामोसमणजोगं जुंजइ ?

गोयमा ! सच्चमणजोगं जुंजइ, णो मोसमणजोगं जुंजइ णो सच्चामोसमणजोगं जुंजइ, असच्चामोसमणजोगं पि जुंजइ।

[२१७४-२ प्र] भगवन् ! मनोयोग का उपयोग करता हुआ केवलिसमुद्घात करने वाला केवली क्या सत्यमनोयोग का उपयोग करता है, मृषामनोयोग का उपयोग करता है, सत्यामृषामनोयोग का उपयोग करता है, अथवा असत्यामृषामनोयोग का उपयोग करता है ?

[२१७४-२ उ] गौतम ! वह सत्यमनोयोग का उपयोग करता है और असत्यामृषामनोयोग का भी उपयोग करता है, किन्तु न तो मृषामनोयोग का उपयोग करता है और न सत्यामृषामनोयोग का उपयोग करता है।

[३] वयजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजइ मोसवइजोगं जुंजइ सच्चामोसवइजोगं जुंजइ असच्चामोसवइजोगं जुंजइ ?

गोयमा ! सच्चवइजोगं जुंजइ, णो मोसवइजोगं जुंजइ णो सच्चामोसवइजोगं जुंजइ असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ।

[२१७४-३ प्र] भगवन् ! वचनयोग का उपयोग करता हुआ केवली क्या सत्यवचनयोग का उपयोग करता है, मृषावचनयोग का उपयोग करता है सत्यमृषावचनयोग का उपयोग करता है, अथवा असत्यामृषावचनयोग का उपयोग करता है ?

[२१७४-३ उ] गौतम ! वह सत्यवचनयोग का उपयोग करता है और असत्यामृषावचनयोग का भी उपयोग करता है, किन्तु न तो मृषावचनयोग का उपयोग करता है और न ही सत्यमृषावचनयोग का उपयोग करता है।

[४] कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा गच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लंघेज्ज वा पलंघेज्ज वा पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणेज्जा।

[२१७४-४] काययोग का उपयोग करता हुआ (केवलिसमुद्घातकर्ता केवली) आता है, जाता है, ठहरता है बैठता है, करवट बदलता है (या लेटता है), लांघता है, अथवा विशेष रूप से लांघता (छलांग मारता) है, या वापस लौटाये जाने वाले पीठ (चौकी), पट्टा, शय्या (वसति-स्थान), तथा संस्तारक (आदि सामान) वापस लौटाता है।

२१७५. से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झति जाव अंतं करेति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचेंदियस्स पज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ, तओ अणंतरं च णं बेइंदियस्स

पज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असखेज्जगुणपरिहीण बोच्च वइजोग णिरु भति, तस्रो अणतर च ण सुहुमस्स पणगजीयस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असखेज्जगुणपरिहीण तच्च कायजोग णिरु भति। से ण एतेण उवाएण पढम मणजोग णिरु भति, मणजोग णिरु भित्ता वइजोग णिरु भति, वइजोग णिरु भित्ता कायजोग णिरु भति, कायजोग णिरु भित्ता जोगणिरोह करेति, जोगणिरोह करेत्ता अजोगय पाउणति, अजोगय पाउणित्ता ईसीहस्सपचक्खरुच्चारणद्धाए असखेज्जसमइय अतोमुहुत्तिय सेलेसि पडिवज्जइ, पुव्वरइतगुणसेढीय च ण कम्म तीसे सेलेसिमद्धाए असखेज्जाहि गुणसेढीहि असखेज्जे कम्मखधे खवयति, खवइत्ता वेदणिज्जाऽऽउय णाम-गोत्ते इच्चेते चत्तारि कम्मसे जुगव खवेति, जुगव खवेत्ता ओरालियतेया कम्मगाइ सव्वाहि विप्पजहणाहि विप्पजहति, विप्पजहित्ता उजुसेढीपडिवण्णे अफुसमाणगतीए एगसमएण अविग्गहेण उड्ढ गता सागारोवउत्ते सिज्झति बुज्झति०।[1]

[२१७५ प्र] भगवन्! वह तथारूप सयोगी (केवलिसमुद्घातप्रवृत्त केवली) सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, यावत् सर्वदुःखों का अन्त कर देते हैं?

[२१७५ उ] गौतम! वह वैसा करने मे समर्थ नही होते। वह सर्वप्रथम सज्ञीपचेन्द्रिय-पर्याप्तक जघन्ययोग वाले के (मनोयोग से) भी नीचे (कम) असख्यातगुणहीन मनोयोग का पहले निरोध करते हैं, तदनन्तर द्वीन्द्रियपर्याप्तक जघन्ययोग वाले के (वचनयोग से) भी नीचे (कम) असख्यातगुणहीन वचनयोग का निरोध करते हैं। तत्पश्चात् अपर्याप्तक सूक्ष्मपनकजीव, जो जघन्ययोग वाला हो, उसके (काययोग से) भी नीचे (कम) असख्यातगुणहीन तीसरे काययोग का निरोध करते हैं। (इस प्रकार) वह (केवली) इस उपाय से सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करते है, मनोयोग को रोक कर वचनयोग का निरोध करते हैं, वचनयोगनिरोध के पश्चात् काययोग का भी निरोध कर देते हैं। काययोगनिरोध करके व (सर्वथा) योगनिरोध कर देते हैं। योगनिरोध करके वे अयोगत्व प्राप्त कर लेते हैं। अयोगत्वप्राप्ति के अनन्तर ही धीरे-से पाच ह्रस्व अक्षरों (अ इ उ ऋ ऌ) के उच्चारण जितने काल मे असख्यातसामयिक अन्तर्मुहूर्त तक होने वाले शैलेशीकरण को अगीकार करते हैं। पूर्वरचित गुणश्रेणियों वाले कर्म को उस शैलेशीकाल मे असख्यात कर्मस्कन्धो का क्षय कर डालते हैं। क्षय करके वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, इन चार (प्रकार के अघाती) कर्मों का एक साथ क्षय कर देते हैं। इन चार कर्मों को युगपत् क्षय करते ही औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर का पूर्णतया सदा के लिए त्याग कर देते हैं। इन शरीरत्रय का पूर्णत त्याग करके ऋजुश्रेणी को प्राप्त होकर अस्पृशत् गति से एक समय मे अविग्रह (बिना मोड की गति) से ऊर्ध्वगमन कर साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) से उपयुक्त होकर वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत्त हो जाते हैं तथा सर्वदुःखों का अन्त कर देते हैं।

विवेचन—केवलिसमुद्घात से पूर्व और पश्चात् केवली की प्रवृत्ति—इस प्रकरण म सर्वप्रथम आवर्जीकरण, तत्पश्चात् आठ समय का केवलिसमुद्घात, तदनन्तर समुद्घातगत केवली के द्वारा

---

१ अधिक पाठ—'तत्थ सिद्धो भवति' अर्थात्—वह वहाँ (सिद्धशिला मे पहुच कर) सिद्ध (मुक्त) हो जाता है।

[२१७४-१ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नहीं है। पहले वे उससे (केवलिसमुद्घात से) प्रतिनिवृत्त होते हैं। तत्पश्चात् वे मनोयोग का उपयोग करते हैं, वचनयोग और काययोग का भी उपयोग करते हैं।

[२] मणजोगण्ण जुजमाणे किं सच्चमणजोगं जुजइ मोसमणजोगं जुजइ सच्चामोसमणजोगं जुजइ असच्चामोसमणजोगं जुजइ ?

गोयमा ! सच्चमणजोगं जुजइ, णो मोसमणजोगं जुजइ णो सच्चामोसमणजोगं जुजइ, असच्चामोसमणजोगं पि जुजइ।

[२१७४-२ प्र] भगवन् ! मनोयोग का उपयोग करता हुआ केवलिसमुद्घात करने वाला केवली क्या सत्यमनोयोग का उपयोग करता है, मृषामनोयोग का उपयोग करता है, सत्यामृषामनोयोग का उपयोग करता है, अथवा असत्यामृषामनोयोग का उपयोग करता है ?

[२१७४-२ उ] गौतम ! वह सत्यमनोयोग का उपयोग करता है और असत्यामृषामनोयोग का भी उपयोग करता है, किन्तु न तो मृषामनोयोग का उपयोग करता है और न सत्यामृषामनोयोग का उपयोग करता है।

[३] वयजोगं जुजमाणे किं सच्चवइजोगं जुजइ मोसवइजोगं जुजइ सच्चामोसवइजोगं जुजइ असच्चामोसवइजोगं जुजइ ?

गोयमा ! सच्चवइजोगं जुजइ, णो मोसवइजोगं जुजइ णो सच्चामोसवइजोगं जुजइ असच्चामोसवइजोगं पि जुजइ।

[२१७४-३ प्र] भगवन् ! वचनयोग का उपयोग करता हुआ केवली क्या सत्यवचनयोग का उपयोग करता है, मृषावचनयोग का उपयोग करता है सत्यमृषावचनयोग का उपयोग करता है अथवा असत्यामृषावचनयोग का उपयोग करता है ?

[२१७४-३ उ] गौतम ! वह सत्यवचनयोग का उपयोग करता है और असत्यामृषावचनयोग का भी उपयोग करता है किन्तु न तो मृषावचनयोग का उपयोग करता है और न ही सत्यमृषावचनयोग का उपयोग करता है।

[४] कायजोगं जुजमाणे आगच्छेज्ज वा गच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लंघेज्ज वा पलंघेज्ज वा पाडिहारियं पीढ फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणेज्जा।

[२१७४-४] काययोग का उपयोग करता हुआ (केवलिसमुद्घातकर्ता केवली) आता है, जाता है, ठहरता है, बैठता है, करवट बदलता है (या लेटता है), लांघता है, अथवा विशेष रूप से लांघता (छलांग मारता) है, या वापस लौटाये जाने वाले पीठ (चौकी), पट्टा, शय्या (वसति-स्थान), तथा संस्तारक (आदि सामान) वापस लौटाता है।

२१७५ से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झति जाव अंतं करेति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचेंदियस्स पज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ, तओ अणंतरं च णं बेइंदियस्स

पज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असखेज्जगुणपरिहीण वोच्च वइजोग णिरु भति, तम्रो अणतर च ण सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असखेज्जगुणपरिहीण तच्च कायजोग णिरु भति । से ण एतेण उवाएण पढम मणजोग णिरु भति, मणजोग णिरु भित्ता वइजोग णिरु भति, वइजोग णिरु भित्ता कायजोग णिरु भति, कायजोग णिरु भित्ता जोगणिरोह करेति, जोगणिरोह करेत्ता अजोगय पाउणति, अजोगय पाउणित्ता ईसीहस्सपचक्खरुच्चारणद्धाए असखेज्जसमइय अतोमुहुत्तिय सेलेसि पडिवज्जइ, पुव्वरइतगुणसेढीय च ण कम्म तीसे सेलेसिमद्धाए असखेज्जाहि गुणसेढीहि असखेज्जे कम्मखधे खवयति, खवइत्ता वेदणिज्जाऽऽउय-णाम-गोत्ते इच्चेते चत्तारि कम्मसे जुगव खवेति, जुगव खवेत्ता ओरालियतेया कम्मगाइ सव्वाहि विप्पजहणाहि विप्पजहति, विप्पजहित्ता उजुसेढीपडिवण्णे अफुसमाणगतीए एगसमएण अविग्गहेण उड्ढ गता सागारोवउत्ते सिज्झति बुज्झति० ।[1]

[२१७५ प्र] भगवन् ! वह तथारूप सयोगी (केवलिसमुद्घातप्रवृत्त केवली) सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, यावत् सर्वदु खो का अन्त कर देते हैं ?

[२१७५ उ] गौतम ! वह वैसा करने मे समर्थ नही होते । वह सर्वप्रथम सज्ञीपचेन्द्रिय-पर्याप्तक जघन्ययोग वाले के (मनोयोग से) भी नीचे (कम) असख्यातगुणहीन मनोयोग का पहले निरोध करते हैं, तदनन्तर द्वीन्द्रियपर्याप्तक जघन्ययोग वाले के (वचनयोग से) भी नीचे (कम) असख्यातगुणहीन वचनयोग का निरोध करते हैं । तत्पश्चात् अपर्याप्तक सूक्ष्मपनकजीव, जो जघन्ययोग वाला हो, उसके (काययोग से) भी नीचे (कम) असख्यातगुणहीन तीसरे काययोग का निरोध करते हैं । (इस प्रकार) वह (केवली) इस उपाय से सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं, मनोयोग को रोक कर वचनयोग का निरोध करते हैं, वचनयोगनिरोध के पश्चात् काययोग का भी निरोध कर देते हैं । काययोगनिरोध करके वे (सर्वथा) योगनिरोध कर देते हैं । योगनिरोध करके वे अयोगत्व प्राप्त कर लेते है । अयोगत्वप्राप्ति के अनन्तर ही धीरे-से पाच ह्रस्व अक्षरो (अ इ उ ऋ लृ) के उच्चारण जितने काल मे असख्यातसामयिक अन्तर्मुहूर्त तक होने वाले शलेशीकरण को अगीकार करते हैं । पूर्वरचित गुणश्रेणियो वाले कर्म को उस शलेशीकाल मे असख्यात कर्मस्कन्धो का क्षय कर डालते हैं । क्षय करके वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, इन चार (प्रकार के अघाती) कर्मो का एक साथ क्षय कर देते हैं । इन चार कर्मों को युगपत् क्षय करते ही औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर का पूर्णतया सदा के लिए त्याग कर देते हैं । इन शरीरत्रय का पूर्णत त्याग करके ऋजुश्रेणी को प्राप्त होकर अस्पृशत् गति से एक समय मे अविग्रह (बिना मोड की गति) से ऊर्ध्वगमन कर साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) से उपयुक्त होकर वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत्त हो जाते हैं तथा सर्वदु खो का अन्त कर देते है ।

विवेचन—केवलिसमुद्घात से पूर्व और पश्चात् केवली की प्रवृत्ति—इस प्रकरण मे सर्वप्रथम आवर्जीकरण, तत्पश्चात् आठ समय का केवलिसमुद्घात, तदनन्तर समुद्घातगत केवली के द्वारा

---

१ अधिक पाठ—'तत्थ सिद्धो भवति' अर्थात्—वह वहाँ (सिद्धशिला मे पहुच कर) सिद्ध (मुक्त) हो जाता है ।

योगत्रय में से काययोगप्रवृत्ति का उल्लेख और उसका क्रम भी बताया गया है। आवर्जीकरण के चार अर्थ यहाँ अभिप्रेत हैं—(१) आत्मा को मोक्ष के अभिमुख करना, (२) मन, वचन, काया के शुभ प्रयोग द्वारा मोक्ष को आवर्जित—अभिमुख करना और (३) आवर्जित अर्थात्—भव्यत्व के कारण मोक्षगमन के प्रति शुभ योगों को व्यापृत-प्रवृत्त करना आवर्जनकरण है तथा (४) आ—मर्यादा में केवली की दृष्टि से शुभयोगों का प्रयोग करना। केवलिसमुद्घात करने से पूर्व आवर्जीकरण किया जाता है, जिसमें असंख्यात समय का अन्तर्मुहूर्त लगता है। आवर्जीकरण के पश्चात् बिना व्यवधान के केवलिसमुद्घात प्रारम्भ कर दिया जाता है, जो आठ समय का होता है। मूलपाठ में उसका क्रम दिया गया है। इस प्रक्रिया में प्रारम्भ के चार समयों में आत्मप्रदेशों को फैलाया जाता है, जब कि पिछले चार समयों में उन्हें सिकोड़ा जाता है। कहा भी है—केवली प्रथम समय में ऊपर और नीचे लोकान्त तक तथा विस्तार में अपने देहप्रमाण दण्ड करते हैं, दूसरे में कपाट, तीसरे में मन्थान और चौथे समय में लोकपूरण करते हैं फिर प्रतिलोम रूप से संहरण अर्थात् विपरीत क्रम से संकोच करके स्वदेहस्थ हो जाते हैं।[1]

(२) *समुद्घातकर्ता केवली के द्वारा योगनिरोध आदि की प्रक्रिया से सिद्ध होने का क्रम*—सिद्ध होने से पूर्व तक की केवली की चर्चा—दण्ड, कपाट आदि के क्रम से समुद्घात को प्राप्त केवली समुद्घात अवस्था में सिद्ध (निष्ठितार्थ), बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त (कर्मसंताप से रहित हो जाने के कारण शीतीभूत) और सर्वदुःखरहित नहीं होते। क्योंकि उस समय तक उनके योगों का निरोध नहीं होता और सयोगी को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। सिद्धि प्राप्त होने से पूर्व तक वे क्या करते हैं? इस विषय में कहते हैं—समुद्घातगत केवली केवलिसमुद्घात से निवृत्त होते हैं, फिर मनोयोग, वचनयोग और काययोग का प्रयोग करते हैं।[2]

(३) *केवलिसमुद्घातगत केवली द्वारा काययोग का प्रयोग*—समुद्घातगत केवली औदारिकशरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग तथा कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग क्रमशः प्रथम और अष्टम, द्वितीय, षष्ठ और सप्तम, तथा तृतीय, चतुर्थ और पंचम समय में करते हैं। शेष वैक्रिय-वैक्रियमिश्र आहारक-आहारकमिश्र काययोग का प्रयोग वे नहीं करते।[3]

(४) केवलिसमुद्घात से निवृत्त होने के पश्चात् तीनों योगों का प्रयोग—निवृत्त होने के पश्चात् मनोयोग और उसमें भी सत्यमनोयोग, असत्यामृषामनोयोग का ही प्रयोग करते हैं, मृषामनोयोग और सत्यमृषामनोयोग का नहीं। तात्पर्य यह है कि जब केवली भगवान् वचनागोचर महिमा से युक्त केवलिसमुद्घात के द्वारा विषमस्थिति वाले नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म को आयुकर्म के बराबर स्थिति वाला बना कर केवलिसमुद्घात से निवृत्त हो जाते हैं, तब अन्तर्मुहूर्त में ही उन्हें परमपद की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु उस अवधि में अनुत्तरौपपातिक देवों द्वारा मन से पूछे हुए प्रश्न का समाधान करने हेतु मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मनोयोग का प्रयोग करते हैं। यह मनोयोग सत्यमनोयोग या असत्यामृषामनोयोग होता है। समुद्घात से निवृत्त केवली सत्यवचन-

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५

२ वही, भा. ५ पृ. ११३०

३ वही, भा. ५, ११३१-३२

योग या असत्यामृषावचनयोग का प्रयोग करते हैं, किन्तु मृषावचनयोग या सत्यमृषावचनयोग का नहीं। इसी प्रकार समुद्घातनिवृत्त केवली गमनागमनादि क्रियाएँ यतनापूर्वक करते हैं। यहाँ उल्लंघन और प्रलंघन क्रिया का अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—स्वाभाविक चाल से जो डग भरी जाती है, उससे कुछ लम्बी डग भरना उल्लंघन है और अतिविकट चरणन्यास प्रलंघन है। किसी जगह उड़ते-फिरते जीव-जन्तु हों और भूमि उनसे व्याप्त हो, तब उनकी रक्षा के लिए केवली को उल्लंघन और प्रलंघन क्रिया करनी पड़ती है।[1]

(५) समग्र योगनिरोध के बिना केवली को भी सिद्धि नहीं—दण्ड, कपाट आदि के क्रम से समुद्घात को प्राप्त केवली समुद्घात से निवृत्त होने पर जब तक सयोगी-अवस्था है, तब तक वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं हो सकते। शास्त्रकार के अनुसार अन्तर्मुहूर्तकाल में वे अयोग अवस्था को प्राप्त करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाते हैं, किन्तु अन्तर्मुहूर्तकाल तक तो केवली यथायोग्य तीनों योगों के प्रयोग से युक्त होते हैं। सयोगी-अवस्था में केवली सिद्ध-मुक्त नहीं हो सकते, इसके दो कारण हैं—(१) योगत्रय कर्मबन्ध के कारण है तथा (२) सयोगी परमनिर्जरा के कारणभूत शुक्लध्यान का प्रारम्भ नहीं कर सकते।[2]

(६) केवली द्वारा योगनिरोध का क्रम—योगनिरोध के क्रम में केवली भगवान् सर्वप्रथम मनोयोगनिरोध करते हैं। पर्याप्तक संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के प्रथम समय में जितने मनोद्रव्य होते हैं और जितना उसका मनोयोग-व्यापार होता है, उससे भी असंख्यातगुणहीन मनोयोग का प्रति समय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में मनोयोग का पूर्णतया निरोध कर देते हैं।

मनोयोग का निरोध करने के तुरंत बाद ही वे पर्याप्तक एवं जघन्ययोग वाले द्वीन्द्रिय के वचनयोग से कम असंख्यातगुणहीन वचनयोग का प्रतिसमय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में पूर्णतया द्वितीय वचनयोग का निरोध करते हैं।

जब वचनयोग का भी निरोध हो जाता है, तब अपर्याप्तक सूक्ष्म पनकजीव, जो प्रथम समय में उत्पन्न हो तथा जघन्य योग वाला एवं सबकी अपेक्षा अल्पवीर्य वाला हो, उसके काययोग से भी कम असंख्यातगुणहीन काययोग का प्रतिसमय निरोध करते हुए असंख्यात समयों में पूर्णरूप से तृतीय काययोग का भी निरोध कर देते हैं।

इस प्रकार काययोग का भी निरोध करके केवली भगवान समुच्छिन्न, सूक्ष्मक्रिय, अविनश्वर तथा अप्रतिपाती ध्यान में आरूढ होते हैं। इस परमशुक्लध्यान के द्वारा वे वदन और उदर आदि के छिद्रों को पूरित करके अपने देह के तृतीय भाग—न्यून आत्मप्रदेशों को संकुचित कर लेते हैं। काययोग की इस निरोधप्रक्रिया से स्वशरीर के तृतीय भाग का भी त्याग कर देते हैं।[3]

सर्वथा योगनिरोध करने के पश्चात्—वे अयोगिदशा प्राप्त कर लेते हैं। उसके प्राप्त होते ही शैलेशीकरण करते हैं। न अतिशीघ्र और न अतिमन्द, अर्थात् मध्यमरूप से पांच ह्रस्व (अ, इ, उ,

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ११३३-११३५

२ वही, भा. ५, पृ. ११३८ से ११४०

३ वही, भा. ५, पृ. ११४१

ऋ, लृ) अक्षरों का उच्चारण करने में जितना काल लगता है, उतने काल तक शलेशीकरण-अवस्था में रहते हैं। शील का अर्थ है—सर्वरूप चारित्र, उसका ईश—स्वामी शीलेश और शीलेश की अवस्था 'शैलेशी' है। उस समय केवली सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती तथा समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान में लीन रहते हैं। उस समय केवली केवल शलेशीकरण को ही प्राप्त नहीं करते, अपितु शलेशीकरणकाल में पूर्वरचित गुणश्रेणी के अनुसार असंख्यातगुण श्रेणियों द्वारा असंख्यात वेदनीयादि कर्मस्कन्धों का विपाक और प्रदेशरूप से क्षय भी करते हैं तथा अंतिम समय में वेदनीयादि चार अघातिकर्मों का एक साथ सर्वथा क्षय होते ही औदारिक, तजस और कार्मण इन तीनों शरीरों का पूर्णतया त्याग कर देते हैं। फिर ऋजुश्रेणी को प्राप्त हो कर, एक ही समय में विना विग्रह (मोड) के लोकान्त में जाकर ज्ञानोपयोग से उपयुक्त होकर सिद्ध हो जाते हैं। जितनी भी लब्धियाँ हैं, वे सब साकारोपयोग से उपयुक्त को ही प्राप्त होती हैं, अनाकारोपयोगयुक्तसमय में नहीं।[1]

सिद्धों के स्वरूप का निरूपण

२१७६ ते णं तत्थ सिद्धा भवंति, असरीरा जीवघणा दंसण णाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसण-णाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा *विसुद्धा सासतमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ?*

गोयमा! से जहाणामए बीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती न हवइ एवमेव सिद्धाण वि कम्मबीएसु दड्ढेसु पुणरवि जम्मुप्पत्ती न हवति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसण णाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति त्ति।

णिच्छिण्णसव्वदुक्खा जाति-जरा-मरण-बंधणविमुक्का।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ २३१ ॥

[२१७६] वे सिद्ध वहाँ अशरीरी (शरीररहित) सघनआत्मप्रदेशों वाले दर्शन और ज्ञान में उपयुक्त, कृतार्थ (निष्ठितार्थ), नीरज (कर्मरज से रहित), निष्कम्प, अज्ञानतिमिर से रहित और पूर्ण शुद्ध होते हैं तथा शाश्वत भविष्यकाल में रहते हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि वे सिद्ध वहाँ अशरीरी सघनआत्मप्रदेश-युक्त, कृतार्थ, दर्शनज्ञानोपयुक्त, नीरज, निष्कम्प, वितिमिर एवं विशुद्ध होते हैं, तथा शाश्वत अनागतकाल तक रहते हैं ?

---

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा. ५, पृ. ११४७-११४९

[उ] गौतम ! जैसे अग्नि मे जले हुए बीजो से फिर अकुर की उत्पत्ति नही होती, इसी प्रकार सिद्धो के भी कर्मबीजो के जल जाने पर पुन जन्म से उत्पत्ति नही होती। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सिद्ध अशरीरी सघन आत्मप्रदेशोवाले, दर्शन और ज्ञान से उपयुक्त, निष्ठितार्थ, नीरज, निष्कप अज्ञानान्धकार से रहित, पूर्ण विशुद्ध होकर शाश्वत भविष्यकाल तक रहते हैं।

[गाथार्थ—] सिद्ध भगवान् सब दु खो से पार हो चुके हैं, वे जन्म, जरा, मृत्यु और बन्धन से विमुक्त हो चुके हैं। सुख को प्राप्त अत्यन्त सुखी वे सिद्ध शाश्वत और बाधारहित होकर रहते है ॥ २३१ ॥

॥ पण्णवणाए भगवतीए छत्तीसइम समुग्घायपद समत्त ॥

॥ पण्णवणा समत्ता ॥

विवेचन—सिद्धो का स्वरूप—सिद्ध वहाँ लोक के अग्रभाग मे स्थित रहते हैं। वे अशरीर, अर्थात्—औदारिक आदि शरीरो से रहित होते हैं, क्योकि सिद्धत्व के प्रथम समय मे ही वे औदारिक आदि शरीरो का त्याग कर देते हैं। वे जीवघन होते हैं, अर्थात्—उनके आत्मप्रदेश सघन हो जाते हैं। बीच मे कोई छिद्र नही रहता, क्योकि सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाती ध्यान के समय मे ही उक्त ध्यान के प्रभाव से मुख, उदर आदि छिद्रो (विवरो) को पूरित कर देते हैं। वे दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग मे उपयुक्त होते हैं, क्योकि उपयोग जीव का स्वभाव है। सिद्ध कृतार्थ (कृतकृत्य) होते हैं, नीरज (बध्यमान कर्मरज से रहित) एव निष्कम्प होते हैं, क्योकि कम्पनक्रिया का वहा कोई कारण नही रहता। वे वितिमिर अर्थात्—कर्मरूपी या अज्ञानरूपी तिमिर से रहित होते हैं। विशुद्ध अर्थात्—विजातीय द्रव्यो के सयोग से रहित—पूर्ण विशुद्ध होते हैं और सदा सर्वथा सिद्धशिला पर विराजमान रहते हैं।[1]

सिद्धों के इन विशेषणों के कारण पर विश्लेषण—सिद्धो को अशरीर, नीरज, कृतार्थ, निष्कम्प, वितिमिर एव विशुद्ध आदि कहा गया है। उसका कारण यह है कि अग्नि मे जले हुए बीजो से जसे अकुर की उत्पत्ति नही होती, क्योकि आग उनके अकुरोत्पत्ति के सामर्थ्य को नष्ट कर देती है। इसी प्रकार सिद्धो के कर्मरूपी बीज जब केवलज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा भस्म हो चुकते हैं, तब उनकी फिर से उत्पत्ति नही होती, क्योकि जन्म का कारण कर्म है और सिद्धो के कर्मों का समूल नाश हो जाता है। कारण के अभाव मे कार्य की उत्पत्ति नही होती, कर्मबीज के कारण रागद्वेष हैं। सिद्धो के रागद्वेष आदि समस्त विकारो का सर्वथा अभाव हो जाने से पुन कर्म का बन्ध भी सम्भव नहीं है। रागादि ही आयु आदि कर्मों के कारण हैं उनका तो पहले ही क्षय किया जा चुका है। क्षीण-रागादि की पुन उत्पत्ति नही हो सकती, क्योकि निमित्तकारण का अभाव है। रागादि की उत्पत्ति मे उपादान कारण स्वय आत्मा है। उसके विद्यमान होने पर भी सहकारी कारण वेदनीय-कर्म आदि विद्यमान न होने से कार्य की उत्पत्ति नही हो सकती, क्योकि दोनों कारणो से उत्पन्न होने वाला कार्य किसी एक कारण से नही हो सकता।

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा ५, ११५५-११५६

सिद्धो मे रागादि वेदनीयकर्मों का अभाव होता है, क्योंकि वे उन्हे शुक्लध्यानरूपी अग्नि से पहले ही भस्म कर चुकते हैं और उनके कारण सक्लेश भी सिद्धो मे सभव नही है। रागादि वेदनीयकर्मों का अभाव होने से पुन रागादि की उत्पत्ति की सभावना नही है। कर्मबन्ध के अभाव मे पुनर्जन्म न होने के कारण सिद्ध सदैव सिद्धदशा में रहते हैं, क्योंकि रागादि का अभाव हो जाने से आयु आदि कर्मों की पुन उत्पत्ति नही होती, इस कारण सिद्धो का पुनर्जन्म नही होता।[1]

अन्तिम मगलाचरण—शिष्टाचारपरम्परानुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ, मध्य और अन्त मे मगलाचरण करना चाहिए। अतएव यहाँ ग्रन्थ की समाप्ति पर परम मगलमय सिद्ध भगवान् का स्वरूप बताया गया है, तथा शिष्य प्रशिष्यादि की शिक्षा के लिए भी कहा गया है—

'णिच्छिण्ण-सव्वदुक्खा सुही सुह पत्ता।'[2]

॥ प्रज्ञापना भगवती का छत्तीसवाँ समुद्घातपद समाप्त ॥

॥ प्रज्ञापनासूत्र समाप्त ॥

१ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग ५, पृ ११५७

२ प्रज्ञापना (प्रमेयबोधिनी टीका) भा ५ पृ ११५९-६०

प्रज्ञापना-परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

गाथानुक्रम

गाथांश	सूत्राङ्क
अगतूण समुग्घाय	२१७० [२]
अच्छिपव्व वलिमोडओ	५४ [८]
अज्जोरुह वोडाणे	४९
अज्झयणमिण चित्त	१
अड्डुत्तर च तीस	१७४
अणभिग्गहियकुदिट्ठी	११०
अणभिग्गहिया भासा	८६६
अणतराय आहारे	२०३२
अत्थिय तिंदु कविट्ठे	४१
अद्दाय असी य मणी	९७२
अद्धतिवण्ण महस्सा	१७४
अप्फोया अइमुत्तय	४५
अयसी कुसु भ कोद्दव	५०
अलोए पडिहया सिद्धा	२११
अवए पणए सेवाले	५४ [१]
असरीरा जीवघणा	२११
असुरा नाग सुवण्णा	१७७
असुरेसु होंति रत्ता	१८७
अस्सण्णी खलु पढम	६४७
अधिय णत्तिय मच्छिय	५८ (१)
अमट्ठा य कलिंदा	१०३
आणय-पाणयकप्पे	२०६ (२)
आभरण-वत्थ-गधे	१००३
आमतणि याऽऽणमणी	८६६
आयपइट्ठिय खेत्त	९७१
आसीत वत्तीस	१७४

गाथा	सूत्राङ्क
आहार भविय मण्णी	१८६५
आहार सम सरीरा	११२३
आहारे उवओगे	२
इक्खू य इक्खुवाडो	४६
इय सव्वकालतित्ता	२११
इय सिद्धाण सोक्ख	२११
इदियउवचय णिव्वत्तणा य	१००६
उत्तत्तकणगवण्णा	१८७
एएहि सरीरेहिं	२६
एक्कस्स उ ज गहण	५४
एक्कारसुत्तर हेट्ठिमेसु	२०९
एगपएऽणेगाइ	११०
एगस्स दोण्ह तिण्ह व	५४
एगा य होइ रयणी	२११
एगिदियसरीरादी	१७९३
एते चेव उ भावे	११०
एरडे कुरुविंदे	४७
ओगाहणसठाणे	२
ओगाहणा अवाए	१००६
ओगाहणाए सिद्धा	२११
कण्हे कदे वज्जे	५४
कति पगडी कह बधति	१६६४
कहिं पडिहता सिद्धा	२११
कगूया कद्दुइया	४५
कदा य कदमूला य	५५
कबू य कण्हकडबू	५४

विशिष्टशब्दसूची

परिशिष्ट—३

वनस्पति-नामानुक्रम

❖❖

अनध्यायकाल

[स्व० आचायप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतिया मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वणन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्था का भी अनध्याय माना जाता है। जनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सभाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक २

उपयु क्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बधित, दस औदारिक शरीर से सम्बधित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१ उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पयन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३ गर्जित—बादलो के गजन पर दो प्रहर पयन्त स्वाध्याय न करे।

४ विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पयन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गजन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५ निर्घात—बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलों सहित आकाश मे कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक—शुक्लपक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७ यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८ धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१० रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिकशरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी, मांस और रुधिर—पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४ अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७ सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८ पतन--किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शन शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९ राजव्युद्ग्रह--समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होन पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करें।

२० औदारिक शरीर--उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिकशरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा--आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२ प्रात, साय, मध्याह्न और अर्धरात्रि--प्रात सूय उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस. किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खींवराजजी चोरडिया मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचंदजी, सागरमलजी संचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५ श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटंगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४ श्री श० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७ श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९ श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) जाड़न
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोंडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, वेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सा० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जवरचन्दजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री मोकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं०) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७ श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९ श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४ श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९ श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मांगीलालजी प्रकाशचंदजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा पीपलिया कलां
६२ श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा, राजनांदगाँव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८ श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बैंगलोर
९५ श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी संचेती राजनांदगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३ सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निमलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरू दा
१११ श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मडतासिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बैंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धमपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क , बैंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड